TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178934
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 M17S Accession No. G.11 32

Author मदनलाल, 'मधु' अनु.

Title श्रेष्ठतम रूसी कहानियाँ.

This book should be returned on or before the date st marked below.

"समाजवादी यथार्थवाद अस्तित्व की एक रचनात्मक कार्य के रूप में अवधारणा करता है। इस रचनात्मक कार्य का लक्ष्य है – मानव की अमूल्य वैयक्तिक योग्यताओं का निरंतर विकास – प्रकृति की शक्तियों पर क़ाबू पाने की ख़ातिर, मानव के स्वस्थ्य और चिरंजीवीता की ख़ातिर, पृथ्वी पर जीने के महान सौभाग्य की ख़ातिर। इस पृथ्वी पर, जिसे वह अपने नित नए आवश्यकताओं के अनुरूप एक परिवार में सूत्रबद्ध मानवजाति के लिए सुन्दर आवास-स्थान में बदलना चाहता है।"

मक्सिम गोर्की

АНТОЛОГИЯ РУССКОГО РАССКАЗА

СОВЕТСКИЕ ПИСАТЕЛИ

ИЗДАТЕЛЬСТВО «ПРОГРЕСС»
МОСКВА

श्रेष्ठतम रूसी कहानियां

सर्वोत्तम सोवियत साहित्य पुस्तकमाला

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक – मदन लाल 'मधु'

चित्रकार – ब० दोमागात्स्की

АНТОЛОГИЯ РУССКОГО РАССКАЗА
СОВЕТСКИЕ ПИСАТЕЛИ

на языке хинди

विषय-सूची

पृष्ठ

मक्सिम गोर्की, तूफ़ानी पितरेल पक्षी का गीत . . . ६

मकर छुद्रा १२

मिख़ाईल शोलोख़ोव, हरामी ४६

बोरीस लव्रेन्योव, इकतालीसवां ११५

कोन्स्तानतीन फ़ेदिन, लेनिन का चित्र २२६

वेरा ईन्बेर, नूर-बीबी का जुर्म २५७

बोरीस गर्बातोव, खीरे के देश में ३११

कोन्स्तानतीन पौस्तोवस्की, सितारों का खोजी ३४७

अलेक्सेइ तोलस्तोय, ऐसे होते हैं रूसी लोग ३६३

मक्सिम गोर्की (१८६८–१९३६) सर्वहारा के महान लेखक, क्रान्ति के अग्रदूत, सोवियत साहित्य के श्रीगणेशकर्त्ता और नींव रखनेवाले। १९०१ में जब पहली रूसी क्रान्ति का वातावरण तैयार हो रहा था तभी उनकी लेखनी से 'तूफ़ानी पितरेल पक्षी का गीत' का जन्म हुआ।

१८९२ में लिखी गयी 'मकर छुद्रा' कहानी, गोर्की के प्रारम्भिक रोमांटिक साहित्य काल का प्रतिनिधित्व करती है।

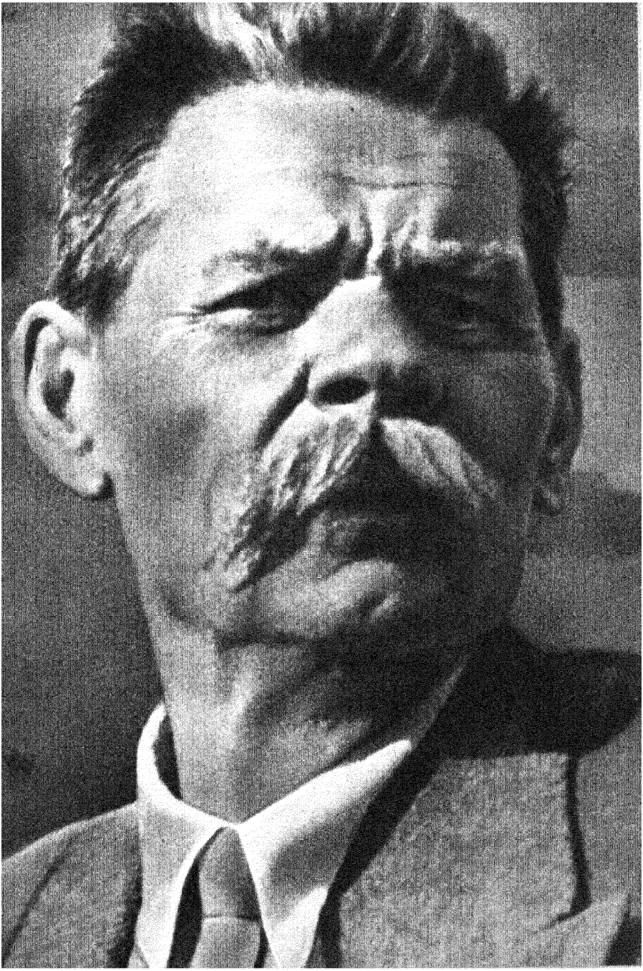

मक्सीम गोर्की

तूफ़ानी पितरेल पंछी का गीत

समुद्र की रुपहली सतह के ऊपर हवा के झोंकों से तूफ़ान के बादल जमा हो रहे हैं और बादलों तथा समुद्र के बीच तूफ़ानी पितरेल चक्कर लगा रहा है—गौरव और गरिमा के साथ, अन्धकार को चीरकर कौंध जानेवाली विद्युत-रेखा की भांति।

कभी वह इतना नीचे उतर आता है कि लहरें उसके पंखों को दुलराती हैं, तो कभी तीर की भांति बादलों को

चीरता और अपना भयानक चीत्कार करता हुआ ऊंचे उठ जाता है; और बादल उसके साहसपूर्ण चीत्कार में आनन्दातिरेक की झलक देख रहे हैं।

उसके चीत्कार में तूफ़ान से टकराने की एक हूक ध्वनित होती है! उसमें ध्वनित हैं उसका आवेग, प्रज्वलित क्षोभ और विजय में उसका अडिग विश्वास।

गंगाचिल्लियां भय से बिलख रही हैं पानी की सतह पर तीर की तरह उड़ते हुए, जैसे अपने भय को छिपाने के लिए समुद्र की स्याह गहराइयों में ख़ुशी से समा जाएंगी।

ग्रेब पक्षी भी बिलख रहे हैं। संघर्ष के संज्ञाहीन चरम आह्लाद को वे क्या जानें? बिजली की तड़प उनकी जान सोख लेती है।

बुद्धू पेंगुइन चट्टानों की दरारों में दुबक रहे हैं, जब कि अकेला तूफ़ानी पितरेल ही समुद्र के ऊपर, रुपहले झाग उगलती फनफनाती लहरों के ऊपर, गर्व से मंडरा रहा है!

तूफ़ान के बादल समुद्र की सतह पर घिरते आ रहे हैं—अधिकाधिक नीचे, अधिकाधिक काले, और गाती हुई लहरें लालसा की उमंग से मतवाली होकर बिजली की ओर लपक रही हैं।

बिजली कड़कती है। अब समुद्र की लहरें हवा के झोंकों के विरुद्ध भयानक युद्ध करती हैं, हवा के झोंके

अपनी सनक में उन्हें लौह-आलिंगन में जकड़, उस समूची मरकत-राशि को चट्टानों पर दे मारते हैं और वह चूर चूर हो जाती है।

तूफ़ानी पितरेल पक्षी चक्कर काट रहा है, चीत्कार कर रहा है, अंधकार-चीरती विद्युत-रेखा की भांति, तीर की तरह तूफ़ान के बादलों को चीरता हुआ तेज़ धार की भांति पानी को काटता हुआ।

दानव की भांति, तूफ़ान के काले दानव की तरह, निरन्तर हंसता, निरन्तर सुबकता, वह बढ़ा जा रहा है—वह हंसता है तूफ़ानी बादलों पर और सुबकता है अपने आनन्दातिरेक से!

बिजली की तड़क में चतुर दानव पस्ती के मन्दस्वर सुनता है। उसका विश्वास है कि बादल सूरज की सत्ता को मिटा नहीं सकते, कि तूफ़ान के बादल सूरज की सत्ता को कदापि, कदापि नहीं मिटा सकेंगे।

समुद्र गरजता . . . बिजली तड़कती है . . .

समुद्र के व्यापक विस्तार के ऊपर तूफ़ान के बादलों में काली-नीली बिजली कौंधती है, लहरें उछलकर विद्युत अग्नि-बाणों को दबोचती और उन्हें ठंडा कर देती हैं और उनके सर्पिल प्रतिबिम्ब, हांफते और बुझते, समुद्र की गहराइयों में समा जाते हैं।

तूफ़ान! शीघ्र ही तूफ़ान टूट पड़ेगा!

फिर भी तूफ़ानी पितरेल पक्षी गर्व के साथ बिजली की कौंधों के बीच गरजते-चिंघाड़ते समुद्र के ऊपर मंडरा रहा है और उसके चीत्कार में चरम आह्लाद की प्रतिध्वनि है – विजय की भविष्यवाणी की भांति...

आए तूफ़ान, अपनी पूरी सनक के साथ आए!

मकर छुद्रा

तट से टकराकर टूटती हुई तरंगों की उदास स्वर-लहरी और सूखे झुरमुटों की सरसराहट, घास के सुविस्तृत मैदानों पर बहती हुई, ठंडी और सीली समुद्री हवा चल रही थी। रह-रहकर हवा का झोंका आता और हमारे पड़ाव की अग्नि में चुरमुर हुए पीले पत्तों की आहुति डाल देता, जिससे लपटें लपलपा उठतीं, और तब शरद्-रात्रि का अंधेरा कांपकर भय से पीछे हट जाता, बाईं ओर सीमाहीन स्तेपी और दाहिनी ओर सीमाहीन समुद्र की एक झलक दिखाई देती और सामने की दिशा में एक वृद्ध जिप्सी मकर छुद्रा का आकार उभर आता, जो लगभग पचास क़दम की दूरी पर पड़े अपने कैम्प के घोड़ों की निगरानी कर रहा था।

ठंडी हवा के झोंके उसके कौकशी कोट के पल्लों को उघारकर उसकी बालदार नंगी छाती पर बेरहमी से थपेड़े मार रहे थे, लेकिन वह इससे बेख़बर मेरी ग्रोर मुंह किए सौम्य ग्रौर सशक्त मुद्रा में लेटा हुग्रा, ग्रपने भीमाकार पाइप से बराबर कश खींचता हुग्रा, ग्रपनी नाक ग्रौर मुंह से धुएं के बादल छोड़ रहा था। उसकी एकटक दृष्टि मेरे सिर पर से होती हुई सुविस्तृत स्तेपी के निस्तब्ध ग्रंधकार पर जमी थी, ग्रौर वह हवा के कुत्सित थपेड़ों से ग्रपने ग्रापको बचाने का ज़रा भी प्रयत्न न करते हुए बिना रुके बतिया रहा था –

"सो तुम दुनिया की धूल छानते घूमते हो, क्यों? बहुत ख़ूब! बहुत ग्रच्छा रास्ता पकड़ा है तुमने, मेरे नन्हे बाज़! एकमात्र सही तरीक़ा। दुनिया में घूम-घूमकर चीज़ें देखो, जब ख़ूब मन भर जाए तो पड़ रहो ग्रौर सदा के लिए ग्रांखें मूंद लो!"

उसकी "एकमात्र सही तरीक़ा" वाली बात मुझे जंची नहीं। मेरी ग्रापत्ति सुनकर वह सवालिया ग्रन्दाज में बोला –

"जीवन? साथी मानव? इस सबके लिए दुबला होने की क्या ज़रूरत है? क्या तुम्हारा ग्रपना जीवन नहीं है? ग्रौर जहां तक तुम्हारे साथी मानवों का सम्बंध है, तुम्हारे बिना भी उन्होंने सदा मौज से गुज़ारी है ग्रौर सदा मौज

से गुज़ार देंगे। क्या तुम सचमुच यह समझते हो कि तुम्हारी किसी को ज़रूरत है? न तो तुम रोटी हो और न लाठी, फिर भला तुम्हें कोई क्यों चाहेगा?

"सीखो और दूसरों को सिखाओ। यह तुम्हारा कहना है। लेकिन लोगों को खुशहाल बनाना क्या तुम कभी जान सकते हो? नहीं, कभी नहीं। दूसरों को सिखाने से पहले ज़रा अपने बाल तो पक जाने दो। फिर तुम उन्हें सिखाओगे भी क्या? हर आदमी अपनी ज़रूरत को समझता है। जो चतुर हैं, वे जीवन से अपना देना-पावना वसूल कर लेते हैं, जो बुद्धू हैं, वे टापते रह जाते हैं। लेकिन यह सब हर कोई अपने आप ही सीखता है।

"जनता भी अजीब चीज़ है, उसका सारा रेवड़ एक ही जगह जमा हो जाता है, घिचपिच, एक दूसरे को कुचलते हुए, जब कि इतनी जगह यहां मौजूद है," हाथ के सपाटे से मैदान की ओर इशारा करते हुए वह कहता गया, "और सबके सब काम में जुते रहते हैं। किसलिए? यह कोई नहीं जानता। जब कभी मैं किसी आदमी को खेत जोतते देखता हूं तो मन ही मन सोचता हूं–यह देखो, वह अपनी शक्ति और अपना पसीना बूंद-बूंद करके धरती में खपाए दे रहा है, केवल इसीलिए न कि अन्त में इसी धरती में उसे सोना और गल-सड़कर ख़त्म हो जाना है। जैसा निपट मूर्ख वह पैदा हुआ था, वैसा ही वह मर जाएगा। कुछ भी

वह अपने पीछे नहीं छोड़ जाएगा। अपने खेतों के सिवा और कुछ भी तो वह नहीं देख पाता।

"क्या इसीलिए उसने जन्म लिया था कि धरती को खोदता रहे और ख़ुद अपने लिए एक क़ब्र तक खोदने का प्रबंध किए बिना इस दुनिया से कूच कर जाए? क्या उसने कभी आज़ादी का स्वाद चखा कि वह कैसी होती है? क्या उसने कभी इन मैदानी विस्तारों की ओर नज़र उठाकर देखा? समुद्र के मर्मर-संगीत को सुनकर उसके हृदय का कमल क्या कभी खिला? वह गुलाम है—जन्म के दिन से लेकर मृत्यु के दिन तक गुलाम। इसके लिए क्या वह कुछ कर सकता है? नहीं, कुछ नहीं, सिवा इसके कि अपने गले में फंदा डालकर लटक जाए—अगर उसमें इतनी समझ हो तो!

"अब रही मेरी बात, अठावन साल की उम्र में मैंने इतना कुछ देखा है कि अगर उसे काग़ज़ पर उतारा जाए तो, जैसा थैला तुम लिए हो, वैसे हज़ार थैलों में भी वह सारा नहीं आयेगा। भला तुम नाम तो लो किसी ऐसी जगह का, जो मैंने न देखी हो। नहीं, तुम ऐसी एक भी जगह का नाम नहीं ले सकते। नाम लेना तो दूर, मैं ऐसी-ऐसी जगह गया हूं जिनके बारे में तुमने कभी सुना तक न होगा। केवल यही तरीक़ा है जीवन बिताने का—आज यहां तो कल वहां। बस, घूमते रहो। किसी भी जगह

ज़्यादा दिनों तक नहीं टिको – और कोई टिके भी क्यों? देखो न, दिन और रात किस प्रकार सदा चलते और एक दूसरे का पीछा करते हुए धरती का चक्कर लगाते रहते हैं। ठीक वैसे ही, अगर तुम जीने की अपनी उमंग गंवाना नहीं चाहते तो, तुम्हें अपने विचारों को खदेड़ते रहना है। यह निश्चित समझो कि जीवन का उल्लास वहीं समाप्त हो जाता है जहां आदमी जीवन के बारे में अत्यधिक सोचने लगता है। मैं भी कभी ऐसा ही करता था। सच, मेरे नन्हे बाज़, मैं भी इस मर्ज़ का शिकार रह चुका हूं।

"यह उन दिनों की बात है, जब मैं गालीसिया की जेल में था। 'आख़िर मैं ज़िंदा ही क्यों हूं इस दुनिया में?' अपनी मुसीबत में मैं सोचता। जेल में बन्द होना बहुत बड़ी मुसीबत है – उफ़, कितनी बड़ी मुसीबत! हर बार, जब भी मैं खिड़की से बाहर खेतों की ओर देखता, तो ऐसा मालूम होता, जैसे कोई शैतान मेरे हृदय को नोच रहा हो। कौन कह सकता है कि वह क्यों ज़िंदा है? कोई नहीं! और अपने आपसे ऐसा सवाल कभी करना भी नहीं चाहिए। जियो और जीवित रहने के लिए अपने भाग्य को सराहो। धरती पर घूमो और जो कुछ देखा जा सकता है वह सब देखो। तब दुःख तुमपर कभी हावी नहीं होगा। मगर उस बार तो हाय, अपनी पेटी का फंदा गले में डालकर मैं प्रायः झूल ही गया था!

"एक बार एक आदमी से मेरी ख़ूब झड़प हुई। वह कड़ा आदमी था और रूसी था, तुम्हारी ही भांति। कहने लगा–'आदमी को मनमाने ढंग से नहीं रहना चाहिये, बल्कि ख़ुदा की किताब में जैसे लिखा है वैसे चलना चाहिये। अगर आदमी ख़ुदा का कहना मानकर चलता है,' वह बोला–'तो ख़ुदा उसकी हर मुराद पूरी करता है।' वह ख़ुद चिथड़े पहने था। मैंने कहा–'ख़ुदा से एक नया सूट क्यों नहीं मांग लेते?' इसपर वह बुरी तरह बिगड़ खड़ा हुआ और गालियां देते हुए मुझे भगा दिया। लेकिन, कुछ ही क्षण पहले, वह उपदेश झाड़ रहा था कि मानव को अपने पड़ोसियों से प्रेम करना चाहिए, उनके प्रति उसके हृदय में क्षमा होनी चाहिए। लेकिन अगर मैंने उसे नाराज़ कर दिया था, तो उसने मुझे क्यों नहीं क्षमा किया? देखा, ऐसे होते हैं तुम्हारे ये उपदेशक! लोगों को तो सीख देते हैं कि कम खाओ, जब कि अपना दोज़ख़ वे दिन में दस बार भरते हैं।"

उसने आग में थूका और चुपचाप अपने पाइप में फिर से तम्बाकू भरने लगा। हवा जैसे धीमे स्वर में कराह रही थी, अंधेरे में घोड़े हिनहिना रहे थे और जिप्सियों के कैम्प से एक गीत के कोमल अनुराग भरे स्वर वातावरण में तैर रहे थे। वह मकर की सुन्दर लड़की नोन्का थी जो गा रही थी। कंठ की गहराई से निकली उसकी आवाज़ मैं पहचानता

था, जिसमें—चाहे वह कोई गीत गा रही हो अथवा केवल दुआ-सलाम के शब्द मुंह से निकाल रही हो—हमेशा एक असन्तोष और आदेश का पुट मिला रहता था। तपे ताम्बे-जैसे उसके चेहरे पर रानी ऐसी अहम्मन्यता का भाव चस्पां हो गया था और उसकी काली आंखों की परछाइयों में उसके अपने असीम सौन्दर्य की चेतना और अपने से भिन्न हर चीज़ के प्रति घृणा की एक भावना थिरकती रहती थी।

मकर ने अपना पाइप मेरे हाथ में थमा दिया।

"यह लो, पियो। वह ख़ूब गाती है, क्यों, अच्छा गाती है न? क्या तुम चाहोगे कि उस जैसी कोई कुमारी तुमसे प्रेम करने लगे? नहीं? बहुत ठीक। स्त्रियों पर कभी भरोसा नहीं रखना और उनसे दूर ही रहना। लड़कियों को पुरुष का मुंह चूमने में जितना आनन्द आता है, उतना मुझे अपना पाइप पीने में भी नहीं आता। लेकिन एक बार भी जहां तुमने किसी लड़की को चूमा कि समझ लो, तुम्हारी आज़ादी सदा के लिए ख़त्म हो गई। ऐसे अदृश्य बन्धनों में वह तुम्हें जकड़ लेगी, जो तोड़े नहीं टूटेंगे, और तुम हृदय और आत्मा से उसके पांव की धूल बनकर रह जाओगे। यह एकदम सच बात है। लड़कियों से ख़बरदार रहना। झूठ तो सदा उनके होंठों पर नाचता रहता है। वे क़सम खाएंगी कि तुमपर ही वे सब से ज़्यादा

जान देती हैं, लेकिन अगर कहीं तुमने ज़रा भी उन्हें नाराज़ कर दिया तो पहली बार में ही तुम्हारा हृदय नोच डालेंगी। मैं यों ही कुछ नहीं कहता। मैंने बहुत कुछ देखा है। अगर तुम चाहो तो एक सच्ची कहानी तुम्हें सुनाऊं। इसे तुम अपने हृदय में गांठ-बांधकर रखना। अगर तुमने ऐसा किया तो जीवन भर पक्षियों की भांति आज़ाद रहोगे।

"बहुत दिनों की बात है। ज़ोबार – लोइको ज़ोबार – नाम का एक युवक जिप्सी था। भय उसे छू तक नहीं गया था और हंगरी और बोहेमिया और स्लावोनिया और समुद्र के इर्द-गिर्द सभी देशों में दूर-दूर तक उसकी ख्याति फैली थी। उन इलाक़ों में एक भी गांव ऐसा नहीं था, जिसमें चार या पांच लोग ज़ोबार की जान के दुश्मन न हों, लेकिन उसका कभी एक बाल तक बांका नहीं हुआ। अगर कोई घोड़ा उसकी नज़र में चढ़ जाता तो फ़ौजियों की पलटन भी उसे न रोक पाती और वह उसकी पीठ पर सवार हो हवा हो जाता। क्या वह किसी से डरता था? नहीं! डर से ज़ोबार का कोई वास्ता नहीं था। वह ख़ुद शैतान और उसके समूचे दल-बल को – अगर वह उसपर धावा बोलता तो – छुरे भोंक देता, या कम से कम इतना तो निश्चित ही समझो कि वह एक एक को गालियां देता और उनकी जमकर घूंसों से मरम्मत करता।

"जिप्सियों का कोई कैम्प ऐसा नहीं था जो जोबार को न जानता हो या जिसने उसके बारे में नहीं सुना हो। केवल एक ही चीज़ से उसे प्यार था—घोड़ों से, पर वह भी अधिक दिनों के लिए नहीं। जब वह उसपर सवारी करते करते ऊब जाता तो उसे बेच डालता और उससे मिला धन, जो भी हाथ फैलाता, उसे ही दे डालता। उसे किसी चीज़ का मोह नहीं था। अगर किसी को ज़रूरत होती तो वह अपना हृदय तक चीरकर दे देता। ऐसा था वह आदमी।

"उस समय, जिसका कि मैं ज़िक्र कर रहा हूं—कोई दस वर्ष पहले—हमारा क़ाफ़िला बुकोविना में घूम रहा था। वसन्त के दिन थे। एक रात हमारी एक टोली जमा थी—उसमें एक सैनिक दानिलो था, जो कोशूत की कमान में लड़ चुका था, और वृद्ध नूर, दानिलो की लड़की राद्दा तथा अन्य कई थे।

"क्या तुमने मेरी नोन्का को देखा है? वह सौन्दर्य की रानी है! लेकिन राद्दा से उसकी तुलना करना उसे आसमान पर चढ़ाना होगा। राद्दा इतनी सुन्दर थी कि बयान से बाहर। शायद वायलिन का संगीत उसके सौन्दर्य को व्यक्त कर सके। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब कि वायलिन-वादक अपनी आत्मा को पूर्णरूपेण उसमें उंडेलकर रख दे।

"राद्दा के प्रेम में न जाने कितने लोग घुल-घुलकर ख़त्म हो गए। एक बार मोराविया के एक धनिक वृद्ध ने उसे देखा और स्तब्ध रह गया। वह अपने घोड़े पर बैठा बस उसे ताकता ही रहा। उसका समूचा बदन इस तरह कांप रहा था मानो उसे जूड़ी आ गई हो। वह इतना सजा-धजा था कि लगता था जैसे शैतान जशन मनाने निकला हो। उसका उक्रइनी कोट ज़री के काम से अटा था, बग़ल से लटकती तलवार बहुमूल्य रत्नों से जड़ी थी, जिनसे घोड़े के ज़रा-सा भी हिलने पर बिजली की भांति चमक निकलती थी, नीले रंग की उसकी मख़मली टोपी ऐसी मालूम होती थी मानो नीले आकाश का एक टुकड़ा नीचे उतरकर उसके सिर पर आ बिराजा हो। बहुत ही बड़ा आदमी था वह खूसट। बस, घोड़े पर बैठा राद्दा को देखता रहा, देखता रहा। अन्त में उससे बोला—'एक चुम्बन के लिए सोने की यह थैली न्यौछावर कर दूंगा!' राद्दा ने अपना मुंह फेर लिया, और बस। खूसट धनिक ने अब अपना स्वर बदला—'अगर मैंने तुम्हारा अपमान किया हो तो माफ़ी चाहता हूं। लेकिन कम से कम एक मुसकराहट तो तुम मुझे दे ही सकती हो।' और यह कहते हुए उसने अपनी थैली उसके पांवों के पास फेंक दी। थैली काफ़ी भारी थी। लेकिन उसने, मानो अनजान में ही, पांव से ठुकराकर उसे धूल में धकेल दिया, इस तरह जैसे उसने उसे देखा तक न हो।

"'उफ़, पूरी फ़ितना है!' उसने लम्बी सांस ली और घोड़े के पुट्ठे पर चाबुक फटकार सड़क पर धूल का बादल उड़ाता चला गया।

"अगले दिन वह फिर आया। 'इसका बाप कौन है?' उसने पूछा, इतनी तेज़ आवाज़ में कि समूचा कैम्प गूंज उठा। दानिलो आगे बढ़ आया। 'अपनी लड़की मुझे बेच दो। मुंह-मांग दाम दूंगा।' दानिलो ने जवाब दिया—'बेचने का काम तो बड़े लोग करते हैं—सुअरों से लेकर अपनी आत्मा तक, चाहे जो ख़रीद लो। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं कोशूत की कमान में लड़ चुका हूं और बेचने का धंधा नहीं करता।' धनिक ख़ूब गरजा और अपनी तलवार खींचने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन तभी किसी ने एक जलती हुई छेपटी घोड़े के कान से छुवा दी, जानवर बिदका और मय अपने मालिक के हवा हो गया। हमने भी अपना डंडा-डेरा उठाया और सड़क की राह ली। जब हमें सड़क पर चलते पूरे दो दिन हो गए तो एकाएक हमने उसे अपने पीछे आते हुए देखा। 'अरे! सुनो तो,' वह चिल्लाकर बोला—'मैं क़सम खाकर कहता हूं कि मेरी नीयत में बदी नहीं है। मैं इस लड़की को अपनी बीवी बनाना चाहता हूं। मेरी हर चीज़ में तुम्हारा हिस्सा होगा, और यह तुम जानते ही हो कि मैं बहुत धनी हूं।' उसका अंग-अंग तमतमा रहा था

ग्रौर वह इस तरह कांप रहा था जैसे हवा में सूखी घास की पत्तियां।

"उसने जो कुछ कहा था, उसपर हमने विचार किया।

"'बोल बेटी,' दानिलो बुदबुदाया—'तेरी मन्शा क्या है?'

"राद्दा ने जवाब दिया—

"'ग्रगर बाज़ की संगिनी ख़ुद ग्रपनी मर्ज़ी से किसी कौवे के घोंसले को ग्राबाद करने चली जाए तो तुम्हें कैसा लगेगा?'

"दानिलो हंसा, ग्रौर उसी प्रकार हम सब भी हंस पड़े।

"'ख़ूब जवाब दिया, बेटी! कुछ सुना, श्रीमान? ग्रापकी दाल यहां गलती नजर नहीं ग्राती। ग्रच्छा हो, काबुक में रहनेवाली किसी कबूतरी पर डोरे डालो, वह सहज ही पकड़ में ग्रा जाएगी।' ग्रौर हम ग्रपने रास्ते पर ग्रागे बढ़ चले।

"इसपर उस धनी ने ग्रपनी टोपी सिर से खींचकर ज़मीन पर पटक दी ग्रौर इतनी तेज़ गति से नौ दो ग्यारह हो गया कि उसके घोड़े की टापों से धरती हिल उठी। देखा, मेरे नन्हे बाज़, ऐसी थी वह राद्दा।

"इसके बाद एक रात, जब कि हम कैम्प में बैठे थे, एकाएक मैदानों की ग्रोर से संगीत की ग्रावाज़ ग्राती सुनाई दी। ग्रद्भुत संगीत था वह। ऐसा कि रगों में रक्त

थिरकने लगा, और ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी अज्ञात लोक की ओर वह हमें खींचे लिए जा रहा हो। उसने हमारे मन में किसी ऐसी महान् चीज़ की आकांक्षा भर दी जिसका एक वार अनुभव करने के बाद फिर जीने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी, और अगर जीते भी रहे तो समूचे विश्व के स्वामी की तरह।

"तभी अंधकार में से एक घोड़ा प्रकट हुआ, और उस घोड़े पर एक आदमी बैठा हुआ चिकारा बजा रहा था। हमारे कैम्प की अग्नि के पास आकर वह रुक गया, चिकारा बजाना उसने बन्द कर दिया और मुसकराते हुए हमारी ओर देखने लगा।

"'अरे ज़ोबार, तुम हो!' दानिलो ने उछाह से चिल्लाकर कहा।

"हां, तो वह लोइको ज़ोबार था। उसकी मूंछों के छोर उसके कंधों को छूते हुए उसके घुंघराले बालों के साथ घुल-मिल गए थे। उसकी आंखें दो उजले तारों की भांति चमक रही थीं, और उसकी मुसकान में तो जैसे सूरज की धूप खिली थी। वह और उसका घोड़ा–ऐसा मालूम होता था मानो एक ही धातु-खंड से काटकर बनाए गए हों। सामने ही वह मौजूद था–अलाव की रोशनी में रक्त की भांति लाल, जब हंसता था तो उसके दांत चमक उठते थे। लानत की बात होती अगर मेरे हृदय में उसके प्रति

उतना ही प्यार न जगता, जितना कि मैं ख़ुद अपने को प्यार करता हूं, हालांकि वह मुझसे एक शब्द भी नहीं बोला या कहिए कि मेरे अस्तित्व तक की ओर उसने ध्यान नहीं दिया।

"देखा, मेरे नन्हे बाज़, इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं। उसने तुम्हारी आंखों में देखा नहीं कि तुम, मय अपनी आत्मा के, उसके ग़ुलाम हो गए और, बजाय इसके कि तुम इसपर लज्जा का अनुभव करो, तुम गर्व से भर जाते हो। लगता है जैसे उसकी मौजूदगी ने तुम्हें ऊंचा उठा दिया हो। ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है। शायद यह अच्छा भी है। अगर दुनिया में अच्छी चीज़ों की भरमार होती, तो उनकी अच्छों में गिनती न होती। ख़ैर, अब आगे की बात सुनो।

"राद्दा ने उससे कहा—'ज़ोबार, तुम बहुत अच्छा चिकारा बजाते हो। इतनी सुरीली आवाज़ वाला चिकारा तुम्हें किसने बनाकर दिया है?' वह हंसा। बोला—'ख़ुद मैंने बनाया है, और लकड़ी से नहीं, उस युवती के हृदय से मैंने इसका निर्माण किया है, जिसे मैं जी-जान से प्यार करता था। इसके तार उसके हृदय के स्वर हैं। अब भी कभी-कभी इससे—मेरे इस चिकारे से—झूठे स्वर निकलते हैं, लेकिन गज़ को अपने इशारे के अनुसार झुकाना मैं जान गया हूं।'

"पुरुष हमेशा इस बात का प्रयत्न करता है कि अपने प्रति चाह जगाकर लड़की की आंखों को धुंधला बनाए रखे। ऐसा करके उसके नेत्र-बाणों से वह अपने हृदय की रक्षा करता है। और ज़ोबार ने भी ऐसा ही किया। लेकिन वह यह नहीं जानता था कि इस बार किससे उसका पाला पड़ा है। राद्दा ने बस मुंह फेर लिया और जमुहाई लेते हुए कहा—'मैंने तो सुना था कि ज़ोबार समझदार और चतुर है। एकदम ग़लत!' और यह कहकर वह दूर चली गई।

"'तुम्हारे दांत बड़े पैने हैं, सुन्दर लड़की!' ज़ोबार ने कहा और घोड़े से उतरते समय उसकी आंखें चमक उठीं—'साथियो, अच्छी तरह से तो हो। सोचा, तुमसे मिलता चलूं। सो चला आया।'

"'अच्छा हुआ जो तुम चले आए,' दानिलो ने जवाब दिया—'हमें इसकी ख़ुशी है।'

"हम एक दूसरे के गले लगे, कुछ देर बातचीत की और फिर सोने चले गए—ख़ूब गहरी नींद सोए। सुबह जब उठे तो देखा कि ज़ोबार के सिर पर पट्टी बंधी है। यह क्यों? मालूम हुआ कि रात को सोते समय घोड़े की लात उसके सिर में लग गई।

"वाह, लेकिन हम जानते थे कि वह कौनसा घोड़ा है जिसने उसे घायल किया है। हम मन ही मन मुसकराए, और दानिलो भी मुसकराया। तो क्या ज़ोबार भी राद्दा

से मात खाकर रहेगा? नहीं, बिल्कुल नहीं! ख़ूबसूरती में चाहे वह जितनी बढ़ी-चढ़ी हो, लेकिन आत्मा उसकी छोटी है और दुनिया भर के सोने से लद जाने पर भी छोटी ही बनी रहेगी।

"हां, तो हम उसी जगह पड़ाव डाले रहे। दिन मज़े से गुज़र रहे थे, और लोइको ज़ोबार भी हमारे साथ ही टिका हुआ था। वह बहुत अच्छा साथी था—बड़े बूढ़ों की भांति समझदार, सभी बातों की जानकारी रखनेवाला और पढ़ा-लिखा—रूसी और मगयार दोनों ही भाषाएं वह पढ़ और लिख सकता था। और उसकी बातें ऐसी कि रात बीत जाए फिर भी जी न ऊबे। और जब वह चिकारा बजाता था—सच, मैं अपनी जान की बाज़ी हारने को तैयार हूं अगर कोई उसकी टक्कर का दूसरा बजानेवाला खोज लाए। वह गज़ का जैसे ही तारों से स्पर्श करता तो लगता, जैसे हृदय खिंचकर बाहर निकल आएगा। वह गज़ को फिर तारों पर खींचता और हृदय की एक-एक शिरा पुलकित हो सुनने लगती, रोम-रोम में एक तनाव-सा छा जाता, और वह उसी प्रकार बजाता और मुसकराता रहता। हास्य और रुदन के भाव हृदय में उमड़ते-घुमड़ते और एक साथ फूट पड़ना चाहते। कभी ऐसा मालूम होता, मानो कोई ज़ार-ज़ार रो रहा है और मदद की याचना कर रहा है। तब लगता, जैसे हृदय को चाकू से कुरेदा जा रहा है। कभी मालूम होता कि घास के

सुविस्तृत मैदान आकाश को अपने जीवन की कथा सुना रहे हैं—ऐसी कथा, जो उदासी में डूबी है। कभी लगता कि कोई युवती अपने प्रेमी को बिदा करते समय विलाप कर रही है। फिर मालूम होता कि उसका प्रेमी घास के मैदानों से उसे पुकार रहा है। इसके बाद, आकाश से उल्कापात की भांति, आह्लादपूर्ण और अपने साथ बहा ले जानेवाला स्वर सुनाई पड़ता, और लगता, जैसे आकाश में सूर्य तक उसे सुनकर थिरकने लगा है। ऐसा चिकारा बजाता था वह, मेरे नन्हे बाज़!

"उस संगीत के स्वर रोम-रोम में समा जाते थे, और लगता था, जैसे हमारा अब कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा है। अगर उस समय ज़ोबार चिल्लाकर कहता—'साथियो, अपने चाकू निकाल लो!' तो हममें से प्रत्येक अपना चाकू निकाल लेता, और जिसकी ओर वह इशारा करता, उसी पर टूट पड़ता। चाहता तो वह हम में से किसी को भी अपनी कानी उंगली के चारों ओर लपेट लेता। हम सब उसे बेहद प्यार करते थे। एक राद्दा ही ऐसी थी, जो उससे कोई वास्ता नहीं रखती थी। यों भी यह कुछ कम बुरी बात नहीं थी, लेकिन इसके अलावा वह उसका मज़ाक़ भी उड़ाती थी। वह उसके हृदय में घाव करती थी और बुरी तरह घाव करती थी। वह अपने दांत भींच लेता, अपनी मूंछों के बाल खींचता, उसकी आंखें कुवें से भी ज़्यादा गहरी हो जातीं और कभी-कभी उनमें

एक ऐसी बिजली-सी कौंधती कि हृदय सहमकर रह जाता। रात को वह दूर घास के मैदानों के एकांत में चला जाता और उसका चिकारा सुबह होने तक विलाप करता रहता – उसकी खोई हुई आज़ादी के लिए विलाप। और हम पड़े-पड़े उसके विलाप को सुनते और मन ही मन सोचते – 'हे भगवान्, क्या होनेवाला है ?' और हम जानते थे कि जब दो पत्थर एक दूसरे की ओर लुढ़कते हैं तो उनके रास्ते में जो भी आता है, उसे कुचल डालते हैं। यह थी उस समय की स्थिति।

"एक रात देर तक अलाव के पास बैठे हम अपने मामलों पर बातचीत करते रहे और जब बातें करते-करते थक चले तो दानिलो ज़ोबार की ओर मुड़ा और बोला – 'ज़ोबार, कोई ऐसा गीत सुनाओ, जिससे हमारे दिल ख़ुशी का अनुभव कर सकें।' ज़ोबार ने एक नज़र राद्दा पर डाली, जो कुछ ही दूर धरती पर पड़ी आसमान की ओर देख रही थी, और अपने गज़ को चिकारे के तारों पर से खींचा। चिकारे में से इस तरह गीत फूटा मानो गज़ चिकारे के तारों को नहीं, वरन् वस्तुतः किसी युवती के हृदय के तारों को छेड़ रहा हो। और उसने गाया –

अइहो, अइहो! मेरे हृदय में प्रेम न समाए,
स्तेपी सागर की भांति हिलोरे खाए, –
और हमारे घोड़े एकदम निर्भय
हम दोनों को हवा की भांति उड़ा ले जाएं!

"राद्दा ने अपना रुख़ उसकी ओर मोड़ा, कुहनी के बल उठी और उसके मुंह की ओर खिलखिलाकर हंसने लगी। ज़ोबार का चेहरा तमतमाकर लाल हो गया–

अइहो, अइहो! मेरे सच्चे जीवन-साथी
निकट अंधियारी का अब अन्त,–
छाई रात की परछाइयां अभी मैदानों पर घास के,
लेकिन इससे क्या, नापेंगे हम आकाश की ऊंचाइयों को!
दिन के स्वागत के लिए तेज़ करो घोड़ों को अपने,
जो थिरक रहा है अब सुविस्तृत मैदानों में,–
लेकिन देखो, चन्द्रमा सुन्दरी को निहार
भटक न जाना तुम, और रह न जाए स्वागत
रवि-किरणों का!

"कितना बढ़िया गाया! आजकल इस तरह के गीत दुर्लभ हो गए हैं। लेकिन राद्दा दबे स्वर में फुसफुसा उठी–

"'तुम्हारी जगह मैं होती तो कभी इस तरह आकाश में घोड़े न दौड़ाती। अगर सिर के बल जोहड़ में आ गिरे तो तुम्हारी ये सुन्दर मूंछें ख़राब हो जाएंगी।'

"ज़ोबार ने ग़ुस्से से उसकी ओर देखा, लेकिन कहा कुछ नहीं। उसने अपने आपको क़ाबू से बाहर नहीं जाने दिया और गाना जारी रखा–

अइहो, अइहो! रवि-किरणें गर आकर
देखेंगी – हम दोनों को नींद में डूबा, –
होंगे लज्जा से मुंह लाल हमारे,
गर नहीं उठे, और रहे हम लम्बी ताने!

"'कितना शानदार गीत है!' दानिलो ने कहा – 'इससे अच्छा गीत अपने जीवन में पहले कभी नहीं सुना, अगर मैं ग़लत कहता हूं तो शैतान मुझे आदमी से पाइप बना डाले।'

"वृद्ध नूर अपने गलमुच्छों को सहलाकर अपने कंधों को बिचका रहा था। ज़ोबार के साहसपूर्ण गीत ने हम सभी के दिल खिला दिए थे। लेकिन राद्दा को वह पसंद नहीं आया। कहने लगी –

"'ऐसे ही एक बार बाज़ की आवाज़ की नक़ल में एक मच्छर को भनभनाते मैंने सुना था!'

"ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसने हम सबके सिरों पर बर्फ़ का पानी उंडेल दिया हो। दानिलो बड़बड़ा उठा – 'कोड़े का मुंह देखे शायद बहुत दिन हो गए हैं, राद्दा!' लेकिन ज़ोबार ने, जिसका चेहरा धरती की भांति काला पड़ गया था, अपनी टोपी उतारकर नीचे फेंक दी और बोला –

"'ठहरो, दानिलो! गरमाए हुए घोड़े के लिए इस्पाती लगाम की ज़रूरत होती है। अपनी लड़की की शादी तुम मेरे साथ कर दो!'

"'क्या बात कही है तुमने,' दानिलो मुसकराया– 'ले लो, अगर तुम ले सको।'

"'अच्छी बात है,' ज़ोबार ने कहा और फिर राद्दा की ओर मुड़ते हुए बोला–'अब ज़रा अपने हवाई घोड़े से नीचे उतर आओ, लड़की, और सुनो जो मैं कहता हूं। अपने जीवन में अनेक–हां, अनेक–लड़कियों से मेरा पाला पड़ा, लेकिन उनमें से एक भी तुम्हारी तरह मेरे हृदय को अपने क़ब्ज़े में नहीं कर सकी। आह, राद्दा, तुमने आत्मा को बन्दी बना लिया है। इसमें किसी का बस नहीं, जो होना है सो होकर रहेगा–और इस दुनिया में ऐसा घोड़ा कोई नहीं है जो मानव को ख़ुद उससे दूर कहीं ले जा सके। ख़ुदा और स्वयं अपनी आत्मा की साक्षी तथा तुम्हारे पिता और इन सब लोगों की मौजूदगी में मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाता हूं। लेकिन एक बात चेताए देता हूं कि मेरी आज़ादी में आड़े आने की कोशिश न करना। मैं आज़ादी-पसन्द आदमी हूं और हमेशा वैसे ही रहूंगा, जैसे मेरा जी चाहेगा।'

"दांतों को कसकर दाबे और अपनी आंखों को धधकाए वह उसके पास जा पहुंचा। हमने उसे राद्दा की ओर हाथ बढ़ाते हुए देखा और सोचा–'आख़िर राद्दा ने सुविस्तृत मैदानों के इस बनैले घोड़े के मुंह में लगाम डाल ही दी'। लेकिन तभी, एकाएक, ज़ोबार की बांहें फैल गईं और उसका सिर धरती से जा टकराया।

"यह क्या हो गया? ऐसा मालूम होता था, जैसे गोली ने उसका सीना छलनी कर दिया हो। लेकिन नहीं, वह तो राद्दा थी, जिसने उसकी टांगों में अपने चाबुक का फंदा डाल झटका देकर उसे गिरा दिया था।

"और वह फिर पहले की भांति निश्चल लेट गई। उसके होंठों पर उपेक्षापूर्ण मुसकराहट खेल रही थी। हम सब यह देख रहे थे कि अब क्या होता है। ज़ोबार उठकर बैठ गया और अपने हाथों में उसने अपना सिर पकड़ लिया, मानो उसे डर हो कि कहीं वह टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर न जाए। फिर वह चुपचाप उठा और, एक बार भी किसी की ओर देखे बिना, मैदानों की ओर चल दिया। नूर ने फुसफुसाकर मुझसे कहा—'अच्छा हो कि तुम इसपर नज़र रखो।' सो मैं भी उसके पीछे-पीछे रात के अंधेरे में मैदानों में रेंगता हुआ चला। ज़रा ख़याल तो करो, मेरे नन्हे बाज़।"

मकर ने अपने पाइप में से राख झाड़-खुरचकर बाहर फेंक दी और उसे फिर भरने लगा। मैंने अपने कोट के पल्ले खींचकर उसे अपने बदन के इर्द-गिर्द कसकर सटा लिया और धरती पर लेट गया। इस तरह धूप तथा हवा से ताम्बा बना उसका वृद्ध चेहरा और भी अच्छी तरह दिखाई देता था। वह मन ही मन कुछ बड़बड़ा रहा था और अपनी बात पर ज़ोर देने के लिए गम्भीरता के साथ अपना सिर भी

हिलाता जा रहा था। उसकी भूरी मूंछों में बल पड़ रहे थे और हवा उसके बालों को छेड़ रही थी। उसे देखकर मुझे एक पुराने ओक वृक्ष की याद आई, जिसपर बिजली गिरी थी, लेकिन जो अब भी मज़बूत और शक्तिशाली है और अपनी इस शक्ति के गर्व में सिर ऊंचा किए खड़ा है। समुद्र की लहरें रेत के कानों में कुछ गुनगुना रही थीं और हवा उनकी इस ध्वनि को घास के मैदानों में फैला रही थी। नोन्का ने गाना बन्द कर दिया था। आकाश में बादल घिर आए थे और शरद् की रात्रि का अन्धकार और भी घना हो उठा था।

"लोइको ज़ोबार के डग बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे। काफ़ी प्रयास के बाद वह एक के बाद दूसरा डग उठाता था। उसकी गरदन झुकी थी और बांहें चाबुक की डोरियों की भांति बेजान-सी झूल रही थीं। एक पतली-सी धारा के तट पर पहुंच वह एक पत्थर पर बैठ गया और एक कराह भरी। उसकी कराह की आवाज़ से मेरा हृदय व्यथित हो उठा, लेकिन मैं उसके निकट नहीं गया। शब्दों से क्या मानव का दुःख हल्का होता है? नहीं, उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं। यही तो मुसीबत है। उसे वहां बैठे-बैठे एक घंटा बीत गया, फिर दूसरा और इसके बाद तीसरा। बिना हिले-डुले, वह बस बैठा ही रहा।

"मैं पास ही पड़ा था। आसमान साफ़ हो चुका था।

चांद की रुपहली रोशनी में सारी स्तेपी नहाया पड़ा था, जिससे दूर दूर की चीज़ें भी दिखाई दे सकती थीं।

"सहसा राद्दा पर मेरी नज़र पड़ी। वह कैम्प की ओर से तेज़ी से हमारी दिशा में बढ़ रही थी।

"मेरी ख़ुशी का वारपार नहीं रहा। 'बहुत ख़ूब, राद्दा, तुम बहादुर लड़की हो!' मैंने सोचा। वह चुपचाप, बिना किसी आहट के, ज़ोबार के पास जाकर खड़ी हो गई। उसने अपने हाथ उसके कंधों पर रख दिए। वह चौंक उठा और सिर उठाकर देखा। अगले ही क्षण वह अपने पांवों पर खड़ा हो गया और अपना चाकू निकाल लिया। 'हे भगवान्, क्या वह उसे मार डालेगा?' मैंने सोचा और उछलकर मदद के लिए पुकारना ही चाहता था कि सुना –

"'इसे फेंक दो, नहीं तो मैं तुम्हारा सिर उड़ा दूंगी।'

"मैंने देखा कि राद्दा के हाथ में पिस्तौल है और वह लोइको के सिर का निशाना साधे है। लड़की क्या थी, शैतान की ख़ाला थी। 'अच्छा है,' मैंने सोचा – 'कम से कम ताक़त में दोनों बराबर हैं। पता नहीं, अब क्या होगा?'

"'मैं तुम्हें मारने नहीं, बल्कि तुमसे सुलह करने आई थी,' पिस्तौल को अपनी पेटी में खोंसते हुए राद्दा ने कहा– 'अपना चाकू दूर फेंक दो।' उसने चाकू दूर फेंक दिया और उबलती हुई नज़र से उसकी ओर देखने लगा। क्या

दृश्य था वह भी! चोट खाए जंगली पशुओं की भांति दोनों एक दूसरे पर नज़र गड़ाए थे, दोनों ही इतने सुन्दर और बहादुर थे! और रुपहले चांद तथा मेरे सिवा और कोई भी उन्हें नहीं देख रहा था।

"सुनो, ज़ोबार, मैं तुमसे प्रेम करती हूं,' राद्दा ने कहा। वह केवल कंधे बिचकाकर रह गया – उस आदमी की भांति, जिसके हाथ और पांव बंधे हों।

"'अनेक आदमियों को मैंने देखा है, लेकिन तुम उन सबसे बहादुर और सुन्दर हो। अगर मैं ज़रा भी इशारा करती तो उनमें से हरेक अपनी मूंछें मुंड़ाने के लिए तैयार हो जाता, मेरे पांव की धूल तक चाटने में ज़रा भी आनाकानी न करता। लेकिन मैं ऐसा करती ही क्यों? बहादुर उनमें एक नहीं था और मेरे साथ रहकर उन्हें स्त्रैण बनते ज़रा भी देर न लगती। जिप्सियों में बहादुर बहुत ही कम रह गए हैं, ज़ोबार, बहुत ही कम। अब तक किसी से भी मैं प्यार नहीं कर सकी। लेकिन, ज़ोबार, तुम्हें मैं प्यार करती हूं। और आज़ादी भी मुझे उतनी ही प्यारी है। नहीं, अपनी आज़ादी को मैं तुमसे भी ज्यादा प्यार करती हूं। लेकिन मैं अब तुम्हारे बिना उसी तरह जीवित नहीं रह सकती, जिस तरह कि तुम मेरे बिना जीवित नहीं रह सकते। और मैं चाहती हूं कि तुम मेरे बनो – शरीर और आत्मा दोनों से मेरे। सुन रहे हो न?'

"ज़ोबार हल्के से हंसा। फिर बोला–'सुन रहा हूं। तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लग रही हैं। कहे जाओ!'

"'मुझे इतना ही और कहना है, ज़ोबार, कि तुम चाहे जो कहो, मैं तुम्हें अपनी गिरिफ़्त से जाने न दूंगी। तुम निश्चय ही मेरे बनकर रहोगे। इसलिए अधिक समय गंवाने से कोई लाभ नहीं। मेरे चुम्बन और आलिंगन तुम्हारी बाट जोह रहे हैं–और मैं अपने चुम्बनों में समूचा प्राण उंडेलकर रख दूंगी, ज़ोबार। उनके माधुर्य के सामने तुम अपना सारा पिछला वीरतापूर्ण जीवन भूल जाओगे। तुम्हारे छलछलाते हुए आह्लादपूर्ण गीत, जिन्हें जिप्सी इतने चाव से सुनते हैं और जो इस सुविस्तृत मैदान में, गूंजते हैं, उन्हें भूलकर अब तुम केवल मेरे लिए–राद्दा के लिए–प्रेम के कोमल गीत गाओगे। अब और ज़्यादा समय न गंवाओ। कहने का मतलब यह कि कल से तुम उसी लगन से मेरी सेवा करोगे, जिस लगन से कि एक युवक अपने पुराने साथी की सेवा करता है। और समूचे कैम्प की मौजूदगी में तुम मेरे क़दमों के आगे झुकोगे और मेरे दाहिने हाथ का चुम्बन करोगे, केवल तभी मैं तुम्हारी पत्नी बन सकूंगी।'

"हां तो इस लड़की के–शैतान की इस ख़ाला के–मन का भेद अब खुला। मैंने तो ऐसी बात न पहले कभी देखी थी, न सुनी थी। बड़े बूढ़ों से यह ज़रूर सुना था कि

मोन्टेनेग्रिन लोगों में, प्राचीन काल में, इस तरह की प्रथा प्रचलित थी, लेकिन जिप्सियों में ऐसी प्रथा का चलन कभी नहीं था। तुम्हीं बताम्रो, मेरे युवक दोस्त, इससे अधिक औघड़पन की बात भला और क्या होगी? पूरे एक साल दिमाग़ को कुरेदने के बाद भी तुम ऐसी बात नहीं सोच सकोगे।

"ज़ोबार को जैसे किसी ने लोहे से दाग़ दिया... तिलमिलाहट भरी उसकी चीख़–एक ऐसे आदमी की चीख़, जिसके हृदय में किसी ने छुरा भोंक दिया हो–समूचे मैदान में गूंज गई। राद्दा कांपी, लेकिन उसने अपने भावों को प्रकट नहीं होने दिया।

"'अच्छा तो कल तक के लिए बिदा और कल तुम वह सब करोगे, जो मैंने तुमसे कहा है। क्यों, सुन रहे हो न, ज़ोबार?'

"'हां, सुन रहा हूं। जो कहती हो, करूंगा,' ज़ोबार ने कराहते हुए कहा और अपनी बांहें उसकी ओर बढ़ा दीं, लेकिन वह चली गई, नज़र घुमाकर उसने उसकी ओर देखा तक नहीं, और वह आंधी से टूटे पेड़ की भांति उखड़कर धरती पर गिर पड़ा, सुबकता और हंसता हुआ।

"यह था जो कम्बख़्त राद्दा ने उसके साथ किया। मैं बड़ी कठिनाई से बेचारे के होश ठिकाने ला सका।

"आख़िर यह वेदना किसलिए?.. क्यों लोगों को इतना कुछ सहना पड़ता है? कौन ऐसा शैतान है, जो उस

आदमी की कराहों को सुनकर ख़ुश होगा, जिसका हृदय टूक-टूक हो गया हो? आह, कौन है, जो इस भारी गुत्थी को सुलझा सके?

"कैम्प में लौटकर, जो कुछ हुआ था, वह सब मैंने बड़े बूढ़ों से कह दिया। हमने मामले पर विचार कर तय किया कि अभी देखा जाए कि आगे क्या होता है। और जो कुछ हुआ, वह यह है। सांझ को सदा की भांति जब हम अलाव के इर्द-गिर्द जमा हुए तो ज़ोबार भी हमारे साथ आ बैठा। वह उदासी में डूबा था, उस एक ही रात में वह झटक गया था और उसकी आंखें गढ़ों में धंसी थीं। वह उन्हें—अपनी आंखों को—ज़मीन में गड़ाए था। एक बार भी उसने उन्हें ऊपर नहीं उठाया और उसी मुद्रा में बोला—

"'साथियो, स्थिति अब इस प्रकार है। सारी रात मैं अपने हृदय को टटोलता रहा और मैंने देखा कि जिस आज़ादी-पसन्द जीवन को मैं अब तक बिताता रहा हूं, उसके लिए मेरे हृदय में अब कोई जगह नहीं है। उसके हर कोने में राद्दा ने दख़ल कर लिया है। वही राद्दा, जो सुन्दर है, शाही मुसकान जिसके होंठों पर खेलती रहती है। वह अपनी आज़ादी को मुझसे भी ज़्यादा प्यार करती है, लेकिन मैं अपनी आज़ादी से अधिक उसे प्यार करता हूं और इसलिए मैंने तय कर लिया है कि राद्दा के आदेश के आगे घुटने

टेक दूं कि सब लोग देखें कि किस प्रकार उसके सौन्दर्य ने मुझे – लोहे के उस ज़ोबार को – अपना बना लिया है, जो उससे भेंट होने से पहले तक स्त्रियों से ऐसे खेलता था, जैसे बिल्ली चूहे से खेलती है। अब वह मेरी पत्नी बन जाएगी, अपने चुम्बन और प्यार-दुलार मुझपर न्योछावर करेगी, मैं इतना अभिभूत हो उठूंगा कि तुम्हें अपने गीत सुनाने की आकांक्षा मेरे मन में बाक़ी नहीं रहेगी और अपनी आज़ादी का अभाव मेरे मन में ज़रा भी कसक पैदा नहीं करेगा। क्यों, ऐसा ही होगा न, राद्दा?'

"यह कहने के बाद उसने अपनी आंखें उठाईं और राद्दा पर अपनी प्रचंड दृष्टि जमा दी। राद्दा ने बिना कुछ बोले अपनी गर्दन हिलाई और अपने सामने की धरती की ओर इशारा किया। हमारी समझ से बाहर था कि इतना उलट-फेर कैसे हो गया। हमारे मन में यह तक हुआ कि वहां से उठकर कहीं दूर चले जाएं, ताकि लोइको ज़ोबार को एक छोकरी के – चाहे वह ख़ुद राद्दा ही क्यों न हो – पांवों पर गिरते न देखना पड़े। हमें लगा जैसे यह एक लज्जा की – एक गहरे दुःख की – बात हो।

"'हां तो अब?' राद्दा ने ज़ोबार से चिल्लाकर कहा।

"'ऐसी जल्दी क्या है? काफ़ी समय है – इतना अधिक कि तुम मुझसे उकता जाओ,' ज़ोबार हंसा और उसकी इस हंसी में ठंडे लोहे की झंकार थी।

"'हां तो, साथियो, सारी स्थिति तुम्हारे सामने है। मुझे अब और क्या करना है? मेरे लिए अब केवल यही देखना बाक़ी है कि राद्दा का हृदय क्या सचमुच इतना मज़बूत है जितना वह मुझे दिखाना चाहती थी। माफ़ करना, मैं इसकी परीक्षा लूंगा!'

"और इससे पहले कि हम कुछ भांप पाते कि उसका इरादा क्या है, हमने देखा कि राद्दा धरती पर पड़ी है और ज़ोबार का चाकू मूठ तक उसकी छाती में धंसा हुआ है। हमें जैसे काठ मारा गया।

"लेकिन राद्दा ने चाकू को खींचकर बाहर निकाला और उसे एक ओर फेंक दिया, अपने काले बालों की एक लट से घाव को ढंका और मुसकराते हुए सुस्पष्ट और ज़ोरदार आवाज़ में बोली –

"'अच्छा तो बिदा, ज़ोबार! मैं जानती थी कि तुम ऐसा करोगे।' और इन शब्दों के साथ उसके प्राणपखेरू उड़ गए।

"देखा तुमने, मेरे युवक **दोस्त**, कि वह कैसी लड़की थी? एकदम शैतान की ख़ाला, ऐसी कि ढूंढ़े न मिले। ओ मेरे भगवान्!

"'अब मैं तेरे पांवों की धूल लूंगा, मेरी गर्वीली रानी,' ज़ोबार ने कहा और उसकी तेज़ आवाज़ सुविस्तृत मैदानों में गूंज उठी। फिर, धरती पर गिरकर, मृत राद्दा

के पांवों से उसने अपने होंठ सटा दिए और इसी प्रकार निश्चल पड़ा रहा। हमने अपने सिर नंगे कर लिए और मौन खड़े रहे।

"ऐसे क्षणों में क्या कुछ कहा जा सकता है? नहीं, कुछ नहीं। नूर बड़बड़ाया – 'इसकी मुश्कें कस लो।' लेकिन लोइको को बांधने के लिए किसी के हाथ नहीं बढ़े। ऐसा एक भी माई का लाल नहीं था, और नूर यह जानता था। सो वह मुड़ा और वहां से खिसक गया। दानिलो ने वह चाकू उठाया, जिसे राद्दा ने दूर फेंक दिया था, और कुछ क्षण एकटक उसे देखता रहा। उसके गलमुच्छे बल खा रहे थे। चाकू के तेज़ और टेढ़े फल पर राद्दा के ख़ून के चिन्ह अभी भी मौजूद थे। चाकू हाथ में लिए दानिलो ज़ोबार के पास पहुंचा और उसे उसकी पीठ में – हृदय के निकट – भोंक दिया। आख़िर वह – वृद्ध सैनिक दानिलो – राद्दा का पिता ही तो था।

"'जो कसर थी, वह तुमने पूरी कर दी,' दानिलो की ओर मुड़ते हुए ज़ोबार ने कहा, एकदम सुस्पष्ट आवाज़ में, और इसके बाद वह भी राद्दा के पीछे रवाना हो गया।

"हम बुत बने खड़े थे और हमारी आंखें उनपर टिकी थीं। सामने, उसी जगह, राद्दा पड़ी थी, बालों की लट को हाथ से अपने सीने पर दबाए। उसकी आंखें पूरी

खुली थीं और नीले आकाश की थाह ले रही थीं। वीर लोइको ज़ोबार उसके पांवों के पास पड़ा था। उसके घुंघराले बालों ने उसके चेहरे को ढककर हमारी नज़रों से ओझल कर दिया था।

"कुछ देर तक हम उसी प्रकार सोच में डूबे खड़े रहे। वृद्ध दानिलो के गलमुच्छे कांप रहे थे और उसकी घनी भौंहें खिंची हुई थीं। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा और देखता ही रह गया। उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। लेकिन वृद्ध नर ज़मीन पर पड़ा था और उसका समूचा शरीर सुबकियों के साथ हिल रहा था।

"और यह अकारण नहीं था, मेरे नन्हे बाज़!

"इससे जो सीख मिलती है, वह यह कि किसी भी मोह में पड़कर उस पथ को न छोड़ो, जो कि तुमने अपने लिए चुना है। सीधे आगे बढ़ते जाओ–और तब, शायद, तुम्हें बुरे अन्त का मुंह नहीं देखना पड़ेगा।

"हां तो, मेरे नन्हे बाज़, पूरी कहानी मैंने तुम्हें सुना दी।"

इसके बाद मकर चुप हो गया, अपने पाइप को उसने तम्बाकू की थैली में डाला और कोट के पल्ले खींचकर अपनी छाती को ढक लिया। पानी की महीन फुहियां पड़ रही थीं और हवा पहले से भी ज़्यादा तेज़ हो गई थी।

लहरें, और भी झुंझलाहट से भरी, सिर धुन रही थीं और उनकी धुंधली गरज सुनाई पड़ रही थी। घोड़े एक-एक करके बुझती हुई आग के पास सिमट आए, अपनी बड़ी-बड़ी संवेदनशील आंखों से उन्होंने हमें देखा और फिर हमारे चारों ओर घेरा बनाकर खड़े हो गए।

"एइहो!" मकर ने दुलार से उन्हें पुकारा और जब वह अपने प्रिय काले घोड़े के अयाल थपथपा चुका तो उसने मेरी ओर मुड़ते हुए कहा—"अब सोने की जुगत करनी चाहिए।" अपने कौकशी कोट में सिर से पांव तक अपना समूचा बदन लपेट, वह ज़मीन पर लम्बा पसर गया और निश्चल पड़ रहा।

मेरी आंखों में नींद नहीं थी। मैं वहीं स्तेपी के अंधकार की थाह लेता रहा और मेरी आंखों के सामने राद्दा का—उस गर्वीली, निर्बाध और सुन्दर राद्दा का—चित्र तैरता रहा। बालों की लट हाथ में लिए वह अपने सीने के घाव को उससे ढके थी और उसकी पीली पड़ी कोमल उंगलियों के बीच से रक्त की बूंदें चूती हुई धरती पर गिरकर अग्निमय चिनगारियों की भांति छितरा जाती थीं।

और उसके पीछे लोइको ज़ोबार की वीर आकृति तैर रही थी। काले बालों के घुंघराले लच्छे उसके चेहरे पर छाए थे और बालों के नीचे से आंसुओं की बड़ी-बड़ी ठंडी बूंदें ढुल रही थीं।

बारिश तेज़ हो गई और समुद्र इन दो सुन्दर जिप्सियों के—लोइको ज़ोबार और वृद्ध सैनिक दानिलो की लड़की राद्दा के—शोक में जैसे मर्सिया पढ़ रहा था।

और वे दोनों, रात के उस अंधकार में, एक दूसरे का पीछा करते बगूले की भांति लपक रहे थे—एकदम निःशब्द और अत्यन्त कमनीय, और सुन्दर ज़ोबार—लाख चक्कर काटने और कोशिश करने के बाद भी—गर्वीली राद्दा को पकड़ नहीं पा रहा था।

१८६२

मिख़ाईल शोलोख़ोव (जन्म १९०५) २० वीं शताब्दी के एक प्रमुखतम लेखक। उनके उपन्यासों, 'शान्त दोन' और 'अछूती भूमि' को सही तौर पर विश्व-संस्कृति में गौरवशाली स्थान प्राप्त है।

'हरामी' (१९२५)। यह कहानी 'दोन की कहानियां' नामक संग्रह से ली गई है। लेखक की यह पहली पुस्तक थी।

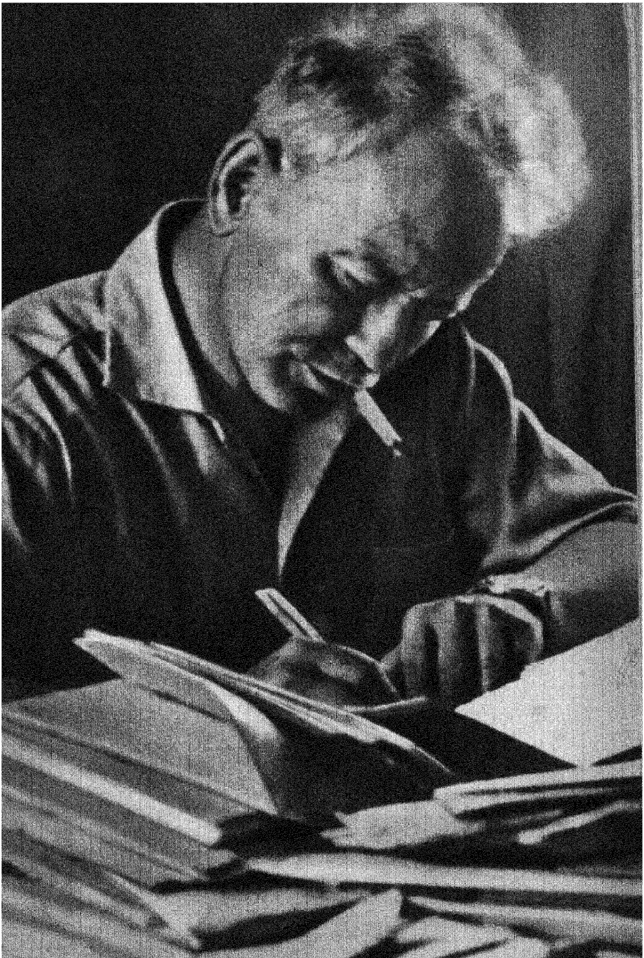

मिख़ाईल शोलोखोव

हरामी

मीश्का ने स्वप्न में देखा कि दादा ने बगीचे में से चेरी की एक अच्छी जानदार-सी कमची तोड़ी है। वे कमची हिलाते हुए उसकी तरफ़ आ रहे हैं और डांटते हुए कह रहे हैं –

"हां, इधर तो आ ज़रा मिख़ाईल फ़ोमीच! अगर तेरे चूतड़ों पर मार मारकर यह कमची न तोड़ी तो कहना!"

"क्यों क्या ग़लती हो गई मुझसे दादा?" मीश्का ने पूछा।

"ग़लती! अरे तू ने कलगीवाली मुर्ग़ी के दरबे से सारे अंडे पार कर दिये और जा पहुंचा चक्कर पर झूले खाने!"

"दादा, इस साल तो मैंने चक्कर पर एक बार भी झूले नहीं खाये!"—मीश्का डर के मारे चीख़ उठा।

मगर दादा ने अकड़कर अपनी दाढ़ी पर गम्भीर ढंग से हाथ फेरा और पांव पटककर धमकाते हुए बोले—

"शरारती कहीं का! कर पाजामा ढीला, तेरी चमड़ी उधेड़ूं!"

मीश्का चीख़ उठा और उसकी आंख खुल गई। उसका दिल ज़ोर से धक-धक कर रहा था मानो सचमुच ही कमचियों से ख़बर ली गई हो। बड़ी होशियारी से उसने बाईं आंख खोली। देखा कि घर में उजाला हो चुका है। सुबह की किरणें खिड़कियों से झांक रही थीं। मीश्का ने सिर उठाया तो उसे ड्योढ़ी में से कई आवाज़ें सुनाई दीं—मां ऊंचे ऊंचे कुछ कह रही थी, कुछ बक-झक रही थी, हंसी के मारे उसका बुरा हाल हुआ जा रहा था, दादा खांस रहे थे और एक अजनबी-सी आवाज़ और सुनाई दे रही थी—"बू-बू-बू..."

मीश्का ने आंखें मलीं और देखा – दरवाज़ा खुला, ज़ोर से बन्द हुआ, दादा लपककर भीतर आये, उछलते हुए। उनका चश्मा उनकी नाक पर नाच रहा था। मीश्का ने सोचा कि भजनीकों के साथ पादरी आये होंगे (ईस्टर के दिनों में जब पादरी आते थे तो दादा इसी तरह भागे भागे फिरा करते थे)। दादा के पीछे-पीछे एक लम्बा-तड़ंगा और हट्टा-कट्टा फ़ौजी अन्दर आया। वह काला फ़ौजी कोट और बिना छज्जे की फ़ीतियों वाली टोपी पहने था। मां उसके गले से लिपटी जा रही थी, उसपर लुटी जा रही थी।

घर के अन्दर आकर इस अजनबी ने मां को झटककर गले से अलग किया और ऊंची आवाज़ में पूछा –

"कहां है मेरी सन्तान?"

मीश्का झटपट कम्बल के नीचे दुबक गया।

"बेटे मीश्का, तुम क्या सो रहे हो? अरे बेटा, तेरा बाप फ़ौज से आया है," मां ने पुकारकर कहा।

मीश्का आंख भी न झपक पाया कि फ़ौजी ने उसे जा दबोचा, छत तक उछाल दिया और फिर सीने से चिपका लिया। वह जब उसे अपनी लाल-लाल मूंछों से प्यार करने लगा तो बस कुछ न पूछिये – होंठों, गालों और आंखों की मुसीबत ही आ गई। मूंछें उसकी कुछ कुछ नम थीं, नमकीन-सी। मीश्का ने छूट निकलने की पूरी कोशिश की, मगर उसकी एक न चली।

"अरे वाह, तू तो अच्छा-ख़ासा बोल्शेविक हो गया है! जल्द ही बाप से बाज़ी मार जायेगा! हो-हो-हो!" बाप ज़ोर से हंसा और लगा मीश्का को झुलाने—कभी हाथों पर बिठाये, कभी चक्कर दिलाये और फिर कभी छत तक उछाल दे।

मीश्का सहन करता रहा, सहता रहा और फिर दादा की तरह उसने भौंहें सिकोड़ीं और शरीर को अकड़ा लिया। उसने बाप की मूंछें पकड़ लीं।

"छोड़ दे मुझे बापू!"

"नहीं छोड़ने का!"

"छोड़ दे! मैं बड़ा हो गया हूं और तू मुझे बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह उछाल रहा है!"

बाप ने बेटे को घुटनों पर बिठा लिया और मुस्कराते हुए पूछा—

"कितने साल का हो गया है रे पिस्तौल तू?"

"आठवां चल रहा है," सिकोड़ी हुई आंखों से देखते हुए मीश्का ने पटाख़ा छोड़ा।

"याद हैं न बेटे कि दो साल पहले जब मैं आया था तो कैसे मैंने तुझे जहाज़ बना बनाकर दिये थे? कैसे हमने तालाब में वे जहाज़ चलाये थे?"

"याद है!" मीश्का ने झट से जवाब दिया और कुछ झिझकते हुए अपनी दोनों बाहें बाप के गले में डाल दीं।

बस फिर क्या था ख़ूब रंग जमा। बाप ने मीश्का को कंधे पर बिठाया, पैरों से पकड़ा और कमरे में दे चक्कर पर चक्कर। कभी वह दुलकी चले तो कभी घोड़े की तरह हिनहिनाये। मीश्का तो ख़ुशी के मारे हांफने लगा। मां उसकी आस्तीन खींचने और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगी–

"अरे जा, बाहर जाकर खेल! अरे सुनता नहीं दुष्ट, कह रही हूं कि बाहर जाकर खेल!" फिर उसने बाप से कहा–"छोड़ दो अब इसे फ़ोमा अकीमिच! छोड़ भी दो! वह तो तुम्हें, मेरे बाज़ को, आंख भरकर देखने भी नहीं देगा। दो बरस से आंखें तरस गई हैं तुम्हें देखने को, और तुम हो कि इसी में उलझे हुए हो।"

बाप ने मीश्का को नीचे उतार दिया और कहा–

"जा भाग, जाकर अपने दोस्तों से खेलकूद। जब लौटेगा तो तुझे मिठाई खिलाऊंगा।"

मीश्का ने दरवाज़ा खोला और बाहर! पहले तो यह ख़्याल आया कि ड्योढ़ी में खड़ा रहकर कान लगाये और सुने कि कमरे में क्या बातचीत होती है। मगर तभी याद आया कि बाप के घर लौटने की ख़बर तो किसी भी बच्चे को मालूम नहीं। ऐसी ख़बर न बताई जाये भला? और बस वह नज़र आया अहाते में, और फिर घर के

बगीचे में लगे आलुओं के पौधों को फांदता और हांफता हुआ तालाब पर जा पहुंचा।

तालाब के ठहरे हुए और बदबूदार पानी में मीश्का ने ग़ोते पर ग़ोते लगाये। फिर उसने रेत पर लोट लगाई और आख़िरी बार ग़ोता लगाया। फिर वह एक टांग पर कूदा और उसने पाजामा ऊपर खींचा। वह घर जाने को बिल्कुल तैयार ही था कि पादरी का बेटा वीत्का उसके पास आ पहुंचा।

"मीश्का, थोड़ी देर और रुक जा! आ, हम साथ-साथ ग़ोते लगायें और फिर हमारे घर चलकर खेलेंगे। माता जी तुझे हमारे घर आने से नहीं रोकतीं।"

मीश्का ने खिसक रहे पाजामे को बायें हाथ से खींचा, कंधे पर बन्द ठीक किया और अनमने मन से कहा –

"मैं तेरे साथ खेलना नहीं चाहता। तेरे कान सड़े रहते हैं!"

वीत्का ने बदले की भावना से आंख सिकोड़ी और अपने हड़ीले कंधे से खींचकर क़मीज़ उतारते हुए कहा –

"यह तो ज़्यादा मिठाई खाने का नतीजा है। पर तू किस मुंह से बात करता है, रे गंवार, तेरी मां ने तो तुझे बाड़ के नीचे जना था!"

"तू देखने गया था न?"

"सुना है मैंने तो। हमारी बावर्चिन ने बताया था मेरी माता जी को।"

मीश्का ने पांवों से मिट्टी कुरेदी और वीत्का को सिर से पांव तक देखा।

"बकवास करती है तेरी माता जी! मेरे बापू तो लड़ाई लड़कर आये हैं और तेरा बाप—हरामख़ोर है, बैठा बैठा पराया माल हड़पता रहता है!"

"हरामी!" पादरी के बेटे ने होंठ टेढ़े करके कहा।

मीश्का ने जैसे ही पानी से घिसा हुआ एक पत्थर उठाया कि पादरी के बेटे की आंखें डबडबा आईं और वह बहुत मधुर ढंग से मुस्कराया—

"लड़ नहीं मुझ से मीशा, बुरा नहीं मान! अगर तू चाहे तो मैं तुझे अपना चाकू दे सकता हूं। अच्छे लोहे का बना हुआ है वह!"

मीश्का की तो ख़ुशी से बाछें खिल गईं। उसने पत्थर एक तरफ़ को फेंक दिया। मगर तभी उसे अपने बाप के घर लौटने की बात याद आई। उसने गर्व से कहा—

"मेरे बापू तेरे चाकू से भी बढ़िया चाकू लाये हैं मेरे लिये लड़ाई के मोर्चे से!"

"झू-ठ बोलता है!" विश्वास न करते हुए वीत्का ने 'झू' अक्षर को बहुत खींचकर कहा।

"तू ख़ुद है झूठा! जब कह रहा हूं कि लाये हैं तो इसका मतलब है कि लाये हैं! सचमुच की बन्दूक़ भी लाये हैं ..."

"अरे वाह, तब तो तेरे बड़े ठाठ हैं!" वीत्का ने उसकी खिल्ली उड़ाई।

"उनके पास तो एक टोपी भी है जिस पर झालर लगी हुई है और सुनहरे अक्षर लिखे हुए हैं, ठीक वैसे ही, जैसे तेरी किताबों में हैं!"

वीत्का देर तक सोचता रहा कि क्या कहे कि मीश्का दंग रह जाये। उसने माथे पर बल डाले और अपना गोरा-गोरा पेट खुजाया। आख़िर बात सूझी –

"मेरे पिता जी तो बस जल्दी ही बड़े पादरी बननेवाले हैं और तेरा बाप – वह तो था चरवाहा, ढोर चराता था। अब बोल?"

मीश्का तंग आ गया था। वह मुड़ा और बगीचे की तरफ़ चल दिया। पादरी के बेटे ने उसे पुकारा –

"मीशा, रे मीशा! सुन तुझे एक बात बताऊं!"

"बता।"

"यहां आ, मेरे पास!"

मीश्का उसके पास गया और जिज्ञासा से उसे देखने लगा –

"हां तो बता!"

पादरी का बेटा अपनी पतली और टेढ़ी-मेढ़ी टांगों से रेत पर नाचा, मुस्कराया और मीश्का को चिड़ाने की नीयत से ऊंचे स्वर में कह उठा –

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है! जैसे ही तू मरेगा और तेरी आत्मा उड़कर आसमान में पहुंचेगी तो भगवान कहेगा– 'चूंकि तेरा बाप कम्युनिस्ट था, इसलिये तेरी जगह जहन्नुम में है!' वहां शैतान तुझे पकड़कर कड़ाही में भूनना शुरू कर देंगे!"

"और तू यह समझता है कि शैतान तुझे छोड़ देंगे?"

"मेरे पिता तो पादरी हैं। तू बिल्कुल बुद्धू है, अनपढ़ गंवार है! कुछ भी तो नहीं समझता ..."

मीश्का को डर ने आ दबोचा। वह मुड़ा और चुपचाप घर की ओर दौड़ चला।

अहाते की बाड़ के क़रीब पहुंचकर वह रुक गया। वहां से उसने चीख़कर पादरी के बेटे को आवाज़ दी और घूंसा दिखाते हुए कहा –

"अभी जाकर पूछता हूं दादा से। अगर झूठ निकला तो बस फिर कभी हमारे अहाते के पास से मत गुज़रना!"

मीश्का बाड़ लांघकर अहाते में पहुंचा, घर की तरफ़ लपका। उसकी आंखों के सामने घूम रही थी कड़ाही और कड़ाही में भूना जा रहा था वह ख़ुद, यानी मीश्का को ... वह गर्म गर्म कड़ाही में बैठा है और चारों ओर मलाई

भाप छोड़ रही है। उसे **डर** के मारे पीठ पर चींटियां-सी रेंगती अनुभव हुईं। जल्दी से जाना चाहिये दादा के पास, पूछना तो चाहिये ...

फाटक की चर्ख़ी में तो जैसे जान-बूझकर सूअर फंसा हुआ था। उसकी गर्दन एक तरफ़ थी और बाक़ी हिस्सा था दूसरी तरफ़। वह खुरों से ज़मीन खोद रहा था, दुम हिलाता हुआ खरखरा रहा था। मीश्का ने चाहा कि सूअर को मुसीबत से बचाये। उसने चर्ख़ी खोलनी चाही, मगर सूअर की गर्दन फंसी हुई थी उसमें। वह बहुत ज़ोर से खरखराने लगा। वह सूअर की पीठ पर चढ़ बैठा। सूअर ने अपना पूरा ज़ोर लगाया, चर्ख़ी टूटकर अलग जा गिरी। सूअर वहां से भागा, अहाता लांघता हुआ खलिहान की ओर बढ़ चला। मीश्का ने उसके पेट में एड़ियां मारनी शुरू कीं। सूअर उड़ चला, मीश्का के बाल हवा में लहराने लगे। मीश्का खलिहान के पास पहुंचकर सूअर की पीठ से कूदकर नीचे उतरा। उसने देखा कि दादा ड्योढ़ी की देहरी पर खड़े हैं और उंगली से इशारा करके उसे बुला रहे हैं।

"इधर आना ज़रा मेरे पास, मेरे बेटे!"

मीश्का समझ न पाया कि दादा उसे क्यों बुला रहे हैं। मगर तभी उसे नरक की कड़ाही की याद आ गई। वह तेज़ी से भागा दादा की तरफ़।

"दादा, प्यारे दादा, क्या आसमान पर शैतान होते हैं ?"

"ठहर, अभी चखाता हूं तुझे शैतान का मज़ा! अरे ओ पाजी, तू सूअर पर क्यों चढ़ा फिर रहा था?"

दादा ने मीश्का के बाल पकड़ लिये और आवाज़ देकर घर के अन्दर से मां को बुलाया।

"ज़रा बाहर आकर अपने लाड़ले को तो देखो!"

मां हड़बड़ाई हुई बाहर आई।

"क्यों तुम उसे डांट-डपट रहे हो?"

"क्यों डांट-डपट रहा हूं? यह हज़रत अहाते में सूअर की सवारी कर रहे थे, धूल फांकते फिर रहे थे!"

"अरे हाय! तू गाभिन मादा-सूअर पर चढ़ा फिर रहा था?" मां तो चीख़ उठी।

मीश्का अपनी सफ़ाई देने के लिये मुंह भी न खोल पाया कि दादा ने कमर से पेटी खोल ली। बायें हाथ से वे कमरबन्द थामे रहे कि कहीं पाजामा न फिसल जाये और दायें हाथ से उन्होंने मीश्का का सिर अपने घुटनों में दबाया और लगे मरम्मत करने। पिटाई करते जाते थे और साथ ही डांटते जाते थे–

"ख़बरदार जो अब फिर कभी सूअर की सवारी की ... ख़बरदार!"

मीश्का का मन हुआ कि ज़ोर से चीखे, मगर दादा ने डांटा –

"हां तो तू कुत्ते का पिल्ला सोने नहीं देगा अपने बापू को? वह थका-हारा आया है सफ़र से। ज़रा आंख लगी है और अब तू गला फाड़ेगा?"

मजबूर होकर चुप रह जाना पड़ा। मीश्का ने दादा को लात मारने की कोशिश की, मगर यह कोशिश भी कारगर न हुई। मां ने दादा से मीश्का का पिंड छुड़ाया और मकान के अन्दर धकेल दिया।

"बैठ यहां, तेरी मां को शैतान ले जायें! ऐसी चमड़ी उधेड़ूंगी तेरी कि दादा की मार भूल जायेगा!"

दादा रसोईघर में तख़्ते पर बैठे थे। वे रह-रहकर मीश्का की पीठ को देख रहे थे।

मीश्का दादा की ओर घूमा, मुट्ठी से मलकर उसने आख़िरी आंसू पोंछा और दरवाज़े की ओर पीठ करके कहा –

"अच्छा दादा . . . तुम भी याद रखना!"

"अरे पाजी, तू क्या अपने दादा को डराना-धमकाना चाहता है?"

मीश्का ने देखा कि दादा फिर से पेटी खोलने लगे हैं। उसने भी होशियारी से थोड़ा-सा दरवाज़ा खोल लिया।

"हां, तो तू मुझे डराने-धमकाने चला है?" दादा ने फिर से पूछा।

मीश्का झटपट दरवाज़े के पीछे ग़ायब हो गया। वह दरवाज़े की दरार के साथ आंख लगाकर दादा की हर गतिविधि को ध्यान से देखने लगा। फिर उसने ऊंची आवाज़ में कहा –

"कुछ दिन और ठहर जाओ, कुछ दिन और, दादा जी! फिर तुम्हारे दांत गिर जायेंगे। तब मैं तुम्हें कौर चबा चबाकर नहीं दूंगा! तब तुम मुझ से कहना भी नहीं!"

दादा बाहर चौखट पर आये। देखा कि बगीचे में पटुआ के झबरीले पौधों के बीच से मीश्का का सिर और नीली शलवार झलक दिखा रही है। दादा देर तक उसे बैसाखी दिखा दिखाकर धमकाते और दाढ़ी में अपनी हंसी छिपाते रहे।

* * *

बाप के लिये मीश्का – मीनिका था। मां उसे बुलाती थी – मिन्यूश्का। दादा को जब प्यार आता तो वह उनकी नज़र में शरारती लड़का होता। बाक़ी समय जब दादा की मुरझाई-सी सफ़ेद भौंहें आंखों पर लटकी-सी रहतीं तो वे उसे पुकारते और कहते – "अरे ओ मिख़ाईल फ़ोमीच इधर आ, ज़रा तेरे कान गर्म कर दूं!"

बाक़ी लोग, जैसे कि इधर-उधर की बातें उड़ानेवाली पड़ोसिनें, छोकरे और गली-मोहल्लेवाले उसे मीश्का या "हरामी" बुलाते।

मां कुंवारी ही थी कि मीश्का ने जन्म लिया था। महीने भर बाद बेशक फ़ोमा चरवाहे से उसकी शादी भी हो गई थी। उसी का यह बच्चा था। मगर बदनामी भरा यह "हरामी" शब्द सदा के लिये मीश्का के नाम के साथ जुड़कर रह गया था।

मीश्का सीख-सिलाई-सा था। वसन्त के दिनों में मीश्का के बाल खिलते हुए सूरज-मुखी के फूल की पत्तियों की तरह पीले पड़ जाते। जून महीने का सूरज उन्हें भून डालता। रंग-बिरंगी लटों से वे बिल्कुल झबरीले हो जाते। मीश्का के गाल चिड़िया के अंडों जैसे लगते, जहां-तहां बुन्दकियां पड़ी हुईं। रही नाक तो वह धूप की गर्मी और तालाब में बार बार ग़ोते लगाने से छिली रहती और उसकी चमड़ी फटी रहती। इस मीश्का की सिर्फ़ आंखें ही सुन्दर थीं। तंग पपोटों में से उसकी नीली और शरारती आंखें यों चमकतीं जैसे नदी में बर्फ़ के वे टुकड़े जो अभी पिघले न हों।

बाप को मीश्का की दो चीज़ें पसन्द थीं—एक तो उसकी सुन्दर आंखें और दूसरे उसका घड़ी भर को भी टिककर न बैठना। नौकरी से वह उसके लिये दो उपहार लाया था—एक तो मीठी टिकिया जो काफ़ी समय तक

रखी रहने के कारण सूखकर पत्थर हो गई थी और दूसरा, थोड़ी-सी घिसी हुई जूतियों का जोड़ा। जूतियां तो मां ने तौलिये में लपेटकर सन्दूक़ में रख दीं और टिकिया को मीश्का ने देहली पर रखकर हथौड़े से तोड़ा और उसका आख़िरी कण तक हड़प गया।

दूसरे दिन जैसे ही सूरज निकला कि मीश्का भी उठ बैठा। उसने लोहे के पतीले में से चुल्लुओं में गर्म पानी लिया और पिछले दिन का मैल-कुचैल गालों पर फैला डाला। मुंह सुखाने के लिये वह बाहर दौड़ गया।

मां गाय की सेवा में जुटी हुई थी, दादा पुश्ते पर बैठे थे। मीश्का पर नज़र पड़ते ही उसे आवाज़ दी–

"अरे शरारती, जा भागकर खत्ती में जा। वहां मुर्ग़ी कुड़कुड़ाई है, अंडा दिया होगा।"

मीश्का दादा का हुक्म बजाने को सदा तैयार रहता था–हाथों-पैरों के बल आन की आन में जा पहुंचा खत्ती में। इधर से दौड़कर गया, उधर से रेंगा और यह जा और वह जा! भाग लिया तालाब की ओर! भागता जाता था और देखता जाता था कि कहीं दादा तो नहीं देख रहे हैं? बाड़ तक पहुंचते पहुंचते बिच्छू बूटी ने काट लिया, टांग जैसे जल ही तो गई। दादा बैठे रहे राह देखते हुए, खीझते हुए। जब सब्र का प्याला छलक गया तो ख़ुद घुसे खत्ती में। सारे शरीर पर मुर्ग़ियों की बीट चिपक गई।

भीतर घुप अन्धेरा था। बड़े मियां टटोलते हुए जो आगे बढ़े तो ऊपर की ओर ज़ोर से सिर टकराया। आख़िर रेंगकर दूसरी ओर के सिरे पर जा पहुंचे।

"अरे ओ उल्लू, रे मीश्का के बच्चे, क्या कहूं तुझे! ढूंढ़ रहा है, ढूंढ़ रहा है और कुछ हाथ-पल्ले नहीं पड़ेगा तेरे! अरे मूर्ख, मुर्ग़ी क्या वहां जाकर अंडा देगी? यहीं पत्थर के नीचे होगा अंडा। तू कहां रेंगता फिर रहा है शरारती?"

दादा कहते गये, मगर जवाब में छाई रही ख़ामोशी। उन्होंने अपने कपड़ों से बीट झाड़ी और खत्ती के नीचे से निकल आये। देर तक आंखें सिकोड़कर तालाब की ओर देखते रहे। आख़िर मीश्का को देख लिया और हताश होकर हाथ झटक दिया ...

बालकों ने तालाब के निकट मीश्का को घेर लिया और लगे पूछने–

"तेरा बाप लड़ाई पर गया था?"

"गया था।"

"क्या करता रहा वह वहां?"

"करता क्या रहा, लड़ता रहा!"

"तू बकता है! वह वहां जूएं मारता और रसोईघर में हड्डियां चूसता रहा!"

बालकों ने ज़ोर का ठहाका लगाया, मीश्का के

जिस्म में उंगलियां भोंकने और उसके गिर्द उछलने-कूदने लगे। खीझ और अपमान से मीश्का की आंखों में आंसू आ गये। तिस पर पादरी के बेटे वीत्का ने एक और तीर छोड़ा –

"तेरा बाप कम्युनिस्ट है न?" उसने पूछा।

"मालूम नहीं . . ."

"मैं जानता हूं कि वह कम्युनिस्ट है। मेरे पिता जी आज सुबह कह रहे थे कि तेरे बाप ने शैतानों के हाथ अपनी आत्मा बेच दी है। उन्होंने यह भी कहा था कि सभी कम्युनिस्टों को शीघ्र ही फांसी दी जायेगी!"

बालक चुप हो गये, मीश्का का दिल बैठ गया। मेरे बापू को फांसी दी जायेगी – पर किस लिये? उसने ज़ोर से दांत पीसे और कहा –

"मेरे बापू के पास बहुत बड़ी बन्दूक़ है, सभी बुर्जुवा को उड़ा देगा!"

वीत्का एक क़दम आगे आया और बड़ी शान से बोला –

"कुछ नहीं बनेगा उसके किये-धरे! मेरे पिता जी उसे आशीष ही नहीं देंगे। बिना आशीष के वह कुछ नहीं कर पायेगा!"

दूकानदार के बेटे प्रोश्का ने नथुने फुलाकर मीश्का की छाती में मुक्का मारा और चीख़कर कहा –

"तू अपने बाप की शान में मत रहना! जब क्रान्ति हुई थी तो वह मेरे बाप का माल उठा ले गया था। मेरे पिता ने कहा था—सरकार लौट आयेगी तो मैं चरवाहे फ़ोमा को ही सबसे पहले ख़त्म करूंगा!"

प्रोश्का की बहन नताशा ने पैर पटककर कहा—

"करो इसकी मरम्मत, बच्चो, देख क्या रहे हो?"

"मारो इस कम्युनिस्ट के बेटे को!"

"हरामी!"

"प्रोश्का, दिखाओ इसे तारे!"

प्रोश्का ने कमची घुमाई और कसकर मीश्का के कंधे पर रसीद की। पादरी के बेटे वीत्का ने लंगड़ी मारी और मीश्का रेत पर चारों शाने चित हो गया।

बालक ख़ूब ज़ोर से चिल्लाये और मीश्का पर टूट पड़े। नताशा अपनी बारीक आवाज़ में शोर मचाती हुई झपटी और मीश्का की गर्दन नोचने लगी। किसी ने कसकर मीश्का के पेट में लात जमाई।

मीश्का ने ज़ोर लगाकर प्रोश्का को अपने ऊपर से धकेला, उछलकर खड़ा हुआ और शिकारी कुत्तों से बचकर भागते हुए ख़रगोश की तरह घर की तरफ़ झपटा। उसके पीछे सीटियां बजती रहीं, उसपर पत्थर फेंका गया। मगर उसका पीछा किसी ने नहीं किया।

मीश्का ने पटुए के हरे भरे कुंज में पहुंचकर ही दम लिया। पटुए के पौधे उसके सिर से ऊंचे थे। वह सीली और सोंधी ज़मीन पर बैठ गया और नोची-खसोटी हुई गर्दन से ख़ून साफ़ करते हुए रो पड़ा। ऊपर, पत्तियों के बीच से धूप छन रही थी, वह मीश्का की आंखों में झांकने के लिये बेचैन थी। धूप ने उसके गालों से आंसू सोख लिये और उसके उठे हुए लाल बालों को मां की तरह प्यार से चूमती रही।

मीश्का देर तक इसी तरह वहां बैठा रहा। जब आंखें सूख गईं तो वहां से उठा और चुपचाप आंगन में पहुंचा।

पिता छानी में बैठा हुआ छकड़े के पहिये को तेल लगा रहा था। उसकी टोपी खिसकर गुद्दी पर पहुंच गई थी, फीते लटक रहे थे और वह सफ़ेद धारियों वाली नीली क़मीज़ पहने था। मीश्का नज़र बचाकर पिता के पास पहुंचा और छकड़े के क़रीब आकर खड़ा हो गया। देर तक वह चुप्पी साधे रहा। फिर उसने हिम्मत करके बाप का हाथ छुआ और फुसफुसाते हुए पूछा–

"बापू, तुम लड़ाई पर गये थे तो वहां क्या करते रहे?"

अपनी लाल मूंछों के बीच मुस्कराते हुए पिता ने जवाब दिया–

"लड़ाई लड़ता रहा बेटे!"

"मगर बालक ... बालक कह रहे थे कि तुम वहां सिर्फ़ जूएं मारते रहे!"

आंसुओं से मीश्का का गला रुंध गया। बाप हंस दिया और उसने मीश्का को हाथों पर उठा लिया।

"मेरे बेटे, वे बकते हैं! मैं तो जहाज़ पर था। उस बड़े जहाज़ पर जो समुद्र में जाता है। मैं उसी में था और फिर लड़ने गया।"

"किससे तुमने लड़ाई लड़ी?"

"धन-दौलतवालों से, मेरे लाल! तू अभी बहुत छोटा है। इसीलिये मुझे लड़ना पड़ा तेरे बजाय। इसके बारे में तो गाने भी गाये जाते हैं।"

बाप मुस्कराया, मीश्का की ओर देखते हुए पैरों से ताल देकर गाने लगा–

"अरे मिख़ाईल, मेरे बेटे,
मत जा रे तू लाम पर
मेरी सांस अभी बाक़ी है
जीवन की मैं सभी बहारें देख चुका हूं,
तू तो खिलता फूल अभी है
अभी तुझे शादी करनी है
मेरे लाल, मेरे लाल..."

बालकों की हरकत से मीश्का को जो ग़ुस्सा आया था, अब वह उसे भूल गया। अब उसे इस बात पर हंसी

आ गई कि बाप की मूंछें उसके होंठों पर मूंज के उन रेशों की भांति अकड़ी हुई थीं जिनसे मां झाड़ू बनाती है। मूंछों के नीचे जब होंठ हिलते-डुलते थे तो देखने से हंसी आती थी और जब मुंह खुलता था तो अन्दर एक गोल और काला-सा छेद नज़र आता था।

"तू इस वक़्त मेरे काम में ख़लल नहीं डाल मीनिका," बाप ने कहा। "अभी मुझे छकड़े की मरम्मत कर लेने दे और रात को सोते वक़्त मैं तुझे लड़ाई की सभी बातें सुनाऊंगा।"

* * *

दिन लम्बा होता चला गया, स्तेपी के सुनसान लम्बे रास्ते की तरह। सूरज ने अपना किरणजाल समेटा और घोड़ों का झुण्ड गांव से गुज़र गया। धूल बैठ गई और संवलाये हुए आकाश से पहले सितारे ने लजाते हुए धरती की ओर देखा।

मीश्का के मन को चैन नहीं था, और मां जैसे कि जान-बूझकर देर करती जा रही थी। वह देर तक दूध दुहती रही, देर तक उसे छानती रही फिर तहख़ाने में गई तो वहीं घण्टा-भर गुम रही। मीश्का को क़रार नहीं था, वह मां के इर्दगिर्द चक्कर काटता फिर रहा था।

"जल्द ही खाना दोगी न मां?"

"ज़रा सब्र कर रे! मिल जायेगा खाना, मरा क्यों जा रहा है!"

मगर मीश्का उसके पीछे पीछे लगा रहा। मां तहख़ाने में जाये तो वह भी उसके पीछे, मां रसोईघर में जाये तो वह भी वहां हाज़िर। जोंक की तरह चिपक ही गया, आंचल पकड़े पकड़े फिरता रहा मां का।

"मां ... मां! ज़रा जल्दी से खाना दे दो!"

"अरे कह तो दिया! पेट में आग लगी है तो जा, जाकर रोटी का टुकड़ा लेकर खा ले!"

मगर मीश्का, सुनी-अनसुनी करता रहा। मां ने गुद्दी पर एक चपत जमा दिया, मगर इससे भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा।

मीश्का ने रात का खाना हड़बड़ी में जैसे-तैसे गले के नीचे उतारा और फटाफट जा पहुंचा सोने के कमरे में। पाजामा उतारकर उसने सन्दूक़ के पीछे काफ़ी दूर फेंक दिया और बिस्तर में मां की रज़ाई के नीचे जा दुबका। रज़ाई रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़ों को जोड़कर बनाई गई थी। बिस्तर में जा लेटा, मगर मन में इस बात की बेचैनी बनी हुई थी कि कब बाप आये और लड़ाई का हाल सुनाये।

दादा, देव मूर्तियों के सामने घुटने टेके हुए प्रार्थना कर रहे थे। मीश्का ने सिर ऊंचा किया। देखा कि दादा बड़ी कठिनाई से पीठ झुकाकर और बायें हाथ की उंगलियों

से सहारा लेकर फ़र्श पर माथा टेक रहे हैं ... मीश्का ने दीवार पर कुहनी मारी – ठक!

दादा फिर भी प्रार्थना करते, कुछ फुसफुसाते और माथा टेकते रहे। मीश्का दीवार को ठकठकाता रहा। दादा खीझ उठे, मीश्का की तरफ़ मुड़े और डांटते हुए बोले –

"ठहर शैतान अभी बताता हूं तुझे! क्षमा करना मुझे भगवान! नहीं मानता तो अभी तेरी मरम्मत करता हूं!"

पिटाई शुरू होनेवाली ही थी कि पिता ने भीतर क़दम रखा।

"तू मां के बिस्तर में क्यों जा घुसा रे मीनिका?" बाप ने पूछा।

"मैं मां के साथ ही तो सोता हूं।"

बाप बिस्तर पर बैठ गया और चुपचाप मूंछों को बल देने लगा। कुछ देर बाद उसने गहरी सांस लेकर कहा –

"मगर मैंने तो दादा के साथ तेरा बिस्तर लगाया है ..."

"मैं दादा के साथ नहीं सोऊंगा!"

"मगर क्यों?"

"उनकी मूंछों से तम्बाकू की बू आती है!"

बाप ने मूंछें मरोड़ते हुए फिर गहरी सांस ली –

"नहीं बेटे, तू दादा के साथ ही जाकर सो जा ..."

मीश्का ने रज़ाई से सिर ढंक लिया ग्रौर चोरी चोरी एक ग्रांख से देखते हुए शिकायत के लहजे में कहा—

"कल भी तुम मेरी जगह सोये रहे ग्रौर ग्राज फिर वही चाहते हो... ग्राज तुम सो जाग्रो दादा के साथ!"

मीश्का बिस्तर पर उठकर बैठ गया, बाप का सिर हाथों में ले लिया ग्रौर धीरे से बोला—

"तुम ही सो जाग्रो दादा के साथ! मां तो वैसे भी तुम्हारे साथ नहीं सोयेगी। तुम्हारे मुंह से भी तम्बाकू की तेज़ बू ग्राती है!"

"ग्रच्छा, मैं ही सो जाऊंगा दादा के साथ मगर फिर लड़ाई का क़िस्सा नहीं सुनाऊंगा।"

बाप उठा ग्रौर रसोईघर की तरफ़ चल दिया।

"बापू!"

"क्या है?"

"ग्रच्छा तो यहीं सो जाग्रो..." मीश्का ने गहरी सांस लेकर कहा ग्रौर उठकर बैठ गया। "मगर लड़ाई के बारे में तो सुनाग्रोगे न?"

"हां, सुनाऊंगा।"

दादा दीवार की ग्रोर लेट गये ग्रौर मीश्का को उन्होंने दूसरी ग्रोर लिटा दिया। कुछ देर बाद बाप ग्राया। उसने बिस्तर के क़रीब एक बेंच खींच ली ग्रौर काग़ज़ में मोटा तम्बाकू लपेटकर कश लगाने लगा।

"हां तो हुआ यह... तुझे याद होगा कि हमारे खलिहान के पीछे कभी दूकानदार का एक खेत था?"

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह कभी सोंधे और ऊंचे ऊंचे गेहूं के खेत में भागा फिरा करता था। पत्थर की मुंडेर फांदकर वह इस खेत में जा पहुंचता था। गेहूं के पौधे उसके सिर से ऊंचे ऊंचे होते थे और भरी हुई बालें मुंह पर गुदगुदी किया करती थीं। खेत से धूल-मिट्टी और स्तेपी की हवा की गन्ध भी आया करती थी। मां उसे पुकार-पुकारकर कहा करती थी–

"मिन्यूश्का, खेत में बहुत दूर मत जाना, तू रास्ता भूल जायेगा!"

बाप घड़ी भर को चुप हो गया और फिर मीश्का का सिर सहलाते हुए बोला–

"याद है तुझे कि तू मेरे साथ रेत के टीले तक गया था? वहां हमारा खेत था..."

मीश्का को फिर याद आया–रेत के टीले के पीछे, रास्ते के साथ साथ, खेत की एक टेढ़ी और पतली-सी पट्टी थी तो सही। मीश्का अपने बाप के साथ वहां गया था और खेत को पशुओं के खुरों से रौंदा हुआ पाया था। भूमि पर जहां-तहां अनाज की बालों की गन्दी-मन्दी ढेरियां लगी हुई थीं। सिर्फ़ डंठल हवा में झूल रहे थे। मीश्का को इस बात का भी स्मरण हो आया कि उसके हट्टे-कट्टे और लम्बे-तड़ंगे बापू का

चेहरा बहुत भयानक रूप से विकृत हो उठा था और धूल-मिट्टी से लथपथ उसके गालों पर रुक-रुककर आंसू की बूंदें टपकने लगी थीं। बाप को रोता देखकर मीश्का भी रो दिया था...

लौटते हुए बाप ने खेत के रखवाले से पूछा था—

"फ़ेदोत, जानते हो कि मेरे खेत का किसने ऐसा बुरा हाल किया है?"

फ़ेदोत ने ज़ोर से थूककर जवाब दिया था—

"दूकानदार मंडी की ओर अपने ढोर-डंगर लिये जा रहा था। जानबूझकर उसने उन्हें तुम्हारे खेत में छोड़ दिया था..."

बाप ने बेंच और नज़दीक खींची और कहा—

"दूकानदार और बाक़ी अमीर लोगों ने सारी ज़मीन हथिया रखी थी, ग़रीबों के पास बोने के लिये ज़मीन ही नहीं थी। हमारे गांव में ही नहीं, सभी जगह यही हाल था। बुरी तरह से नाक में दम कर रखा था तब उन्होंने हमारा... जीना दूभर था... मैंने सोचा ज़मीन नहीं है, न सही, दूसरों के पशु चराया करूंगा। कुछ अर्से बाद मुझे सेना में भर्ती कर लिया गया। सेना का भी यह हाल कि अफ़सर लोग ज़रा ज़रा-सी बात पर कसकर तमांचा लगाते... फिर बोल्शेविक सामने आ गये। इनमें जो सबसे बड़ा था, उसे लेनिन कहते थे। वह वैसे तो बड़ा सीधा-सादा आदमी था, मगर दिमाग़ बहुत बढ़िया पाया था उसने। ज़रूर हम देहातियों की नस्ल का ही होगा। बोल्शेविकों ने हमें ऐसी बातें

बताईं कि हम तो दंग रह गये। कहा उन्होंने – 'अरे देहातियो, किसानो-मज़दूरो, मुंह बाये क्या देख रहे हो? उठो मिलकर, सफ़ाया कर दो इन श्रीमानों का, इन अफ़सरों का! सब कुछ तुम्हारा ही है!'

"उनके इन शब्दों ने हमें चक्कर में डाल दिया। सोचा-विचारा तो महसूस हुआ कि ठीक ही कहते हैं। तो हम लोगों ने श्रीमानों से ज़मीन-जायदाद छीन ली। मगर इन लोगों ने बुरा वक़्त भला कब देखा था, टूट पड़े हम पर, हम किसानों और मज़दूरों पर, और बस लड़ाई शुरू हो गई... समझे बेटा?

"हां, और बोल्शेविकों में सबसे बड़े यानी लेनिन ने जनता को उठाकर खड़ा कर दिया। ठीक वैसे ही जैसे कि हल का फाल मिट्टी को उठाता चला जाता है। उसने फ़ौजियों और मज़दूरों को एकजुट किया और अमीर लोगों की धज्जियां उड़ाने लगा। धज्जियां उड़ा दीं उनकी। फ़ौजी और मज़दूर लाल गार्ड कहलाने लगे। मैं भी उन्हीं में था। एक बड़े-से घर में रहते थे हम – स्मोल्नी नाम था उसका। दालान उसका – यह लम्बा सारा था और कमरे इतने थे कि आदमी भूल-भूल जाये।

"एक बार क्या हुआ कि रात का वक़्त था, मैं दरवाज़े पर पहरा दे रहा था। बाहर बड़ी ठंड थी और मैं सिर्फ़ एक फ़ौजी कोट पहने था। हवा तन को काट रही थी... तभी

इस घर से दो आदमी बाहर निकले और मेरे पास से गुज़रे। जब वे क़रीब पहुंचे तो मैंने देखा कि उनमें से एक लेनिन है। वह मेरे पास आया और प्यार से बोला –

"'साथी, सर्दी तो नहीं लग रही?'

"और मैंने जवाब दिया –

"'नहीं, साथी लेनिन! ठंड ही क्या, कोई दुश्मन भी नहीं डरा सकता हमें! इसी लिये तो हमने शासन की बागडोर अपने हाथों में नहीं ली है कि फिर से उसे बुर्जुवा के हवाले कर दें!'

"लेनिन मुस्करा दिया और उसने ज़ोर से मेरा हाथ दबाया। फिर वह धीरे धीरे आगे बढ़ा और फाटक की ओर चला गया।"

बाप ने जेब से तम्बाकू निकाला, काग़ज़ में लपेटा और सिगरेट बनाकर दियासलाई जलाई। उस रोशनी में मीश्का ने बाप की लाल और अकड़ी हुई मूंछों में चमकती हुई आंसू की बूंद देखी, ओस की उस बूंद जैसी जो सुबह के वक़्त बिच्छू बूटी की पत्ती के सिरे पर अटकी रह जाती है।

"हां तो ऐसा था लेनिन! सभी की चिन्ता करता था। एक एक फ़ौजी रहता था उसके दिल में... उस दिन के बाद मैंने अक्सर उसे देखा। मेरे नज़दीक से गुज़रता, दूर से ही मुस्कराता और पूछता –

"'बुर्जुवा मिटा तो नहीं डालेंगे हमें?'

"'इतना दम उनमें कहां, साथी लेनिन!' – मैंने उन्हें यह जवाब दिया।

"सोलह ग्राने सही निकली बेटा उसकी बात। ज़मीनें ग्रौर कारख़ाने हमने ग्रमीरों से, हमारा ख़ून पीनेवालों से, छीन लिये ग्रौर उनकी कमर तोड़ डाली! जब बड़ा हो जायेगा तो यह याद रखना कि तेरा बापू जहाज़ी था ग्रौर चार बरस तक उसने कम्यून के लिये ग्रपना ख़ून बहाया था। तेरे बड़े होने तक मैं इस दुनिया में नहीं रहूंगा, लेनिन भी नहीं होगा, पर हमारा काम सदियों तक जियेगा! बड़ा होने पर तू भी ग्रपने बापू की तरह ही सोवियत सत्ता के लिये लड़ेगा, न?"

"लड़ूंगा!" मीश्का चिल्ला उठा। वह उछलकर बिस्तर पर खड़ा हो गया। उसने बाप की गर्दन से लिपटना चाहा। वह भूल गया कि क़रीब ही दादा सोये पड़े हैं, उनके पेट में पांव लगा।

दादा चीख़ उठे। उन्होंने हाथ बढ़ाये कि मीश्का को बालों से पकड़ लें। मगर बाप ने जल्दी से मीश्का को हाथों पर उठा लिया ग्रौर कोठे में ले गये।

मीश्का, बाप के हाथों पर ही सो गया। शुरू में तो वह देर तक ग्रद्भुत व्यक्ति लेनिन, बोल्शेविकों, लड़ाई ग्रौर जहाज़ों के बारे में सोचता रहा। नींद ग्राते समय उसे दबी दबी-सी ग्रावाज़ें सुनाई देती रहीं, पसीने ग्रौर मोटे

तम्बाकू की गन्ध आती रही। बाद में पलकें भिंच गईं मानो किसी ने हथेलियों से सहला-सहलाकर उन्हें बन्द कर दिया हो।

मीश्का को अभी अच्छी तरह से नींद भी न आई थी कि उसने स्वप्न में एक शहर देखा। चौड़ी चौड़ी सड़कें, राख में लोट-पोट होती हुई मुर्ग़ियां। गांव में उनकी काफ़ी संख्या होती है, मगर नगर में तो कोई हिसाब ही नहीं। मकान बिल्कुल वैसे थे जैसे कि बाप ने बताये थे। एक बड़ा-सा मकान, सरकंडों से ढका हुआ, उसकी चिमनी पर एक और मकान खड़ा हुआ, उसकी चिमनी पर तीसरा मकान रखा हुआ और सबसे ऊपरवाले मकान की चिमनी आकाश को छूती हुई।

मीश्का है कि चला जा रहा है इस शहर की सड़क पर। मुंह ऊपर को किये हुए इधर-उधर देखता जा रहा है। अचानक इतने में कहीं से एक लम्बा-तड़ंगा आदमी उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वह लाल क़मीज़ पहने था।

"अरे मीश्का तू सड़क पर बेमतलब मटरगश्ती करता क्यों फिर रहा है?" उसने बड़े प्यार से पूछा।

"दादा ने मुझे खेलने की छुट्टी दी है।"

"तू जानता है कि मैं कौन हूं?"

"नहीं, मैं नहीं जानता..."

"मैं—साथी लेनिन हूं!"

मीश्का को डर ने ऐसा दबोचा कि उसके घुटने जवाब

दे गये। उसका मन हुआ कि सिर पर पैर रखकर भाग ले, मगर लाल क़मीज़ वाले व्यक्ति ने मीश्का की बांह पकड़ ली और कहा –

"रे मीश्का, शर्म तो तुझमें रत्ती-भर नहीं है! तू ख़ूब अच्छी तरह यह जानता है कि मैं ग़रीब लोगों के लिये लोहा ले रहा हूं। तू क्यों मेरी फ़ौज में शामिल नहीं हुआ?"

"दादा मुझे इसकी इजाज़त नहीं देते!" मीश्का ने अपनी सफ़ाई पेश की।

"ख़ैर देख ले, जैसी तेरी मर्ज़ी," साथी लेनिन ने कहा, "मगर तेरे बिना मेरा काम सिरे चढ़ने का नहीं। तुझे मेरी फ़ौज में नाम लिखाना ही चाहिये और बस!"

मीश्का ने लेनिन का हाथ पकड़ लिया और बहुत दृढ़तापूर्वक कहा –

"अच्छा तो यों ही सही। मैं दादा से पूछे बिना ही तुम्हारी फ़ौज में शामिल हो जाता हूं और ग़रीब लोगों के लिये लड़ूंगा। ऐसा करने के लिये अगर दादा मुझे डांटे-डपटेंगे तो उनसे तुम निपट लेना!"

"मैं ज़रूर तुम्हारी हिमायत करूंगा!" साथी लेनिन ने कहा और सड़क पर आगे बढ़ गया। मीश्का का तो ख़ुशी के मारे यह हाल था कि सांस लेना मुश्किल! दिल बल्लियों उछल रहा था। उसका मन हो रहा था कि चीख़कर कुछ कहे, मगर ज़बान सूखकर रह गई...

मीश्का बिस्तर पर उछल पड़ा, दादा को लात लगी और मीश्का की आंख खुल गई।

दादा नींद में बड़बड़ाये, होंठों से चप-चप की आवाज़ करने लगे। खिड़की से रोशनी झांकने लगी थी। तालाब के परे, हल्के पीले आकाश में रक्तवर्णी फेन से मिलते-जुलते बादल पूर्व की ओर से उमड़े चले आ रहे थे।

* * *

अब तो बाप हर शाम को मीश्का को लड़ाई और लेनिन के क़िस्से सुनाने और यह बताने लगा कि वह किस किस जगह लड़ने गया।

शनिवार का दिन था। शाम को कार्यकारिणी समिति का चौकीदार एक नाटे-से व्यक्ति को साथ लिये हुए आया। यह व्यक्ति फ़ौजी कोट पहने था और बग़ल में चमड़े की पोटली दबाये था। चौकीदार ने दादा को आवाज़ दी और कहा—

"देखिये, मैं आपके घर पर सोवियत के एक कर्मचारी को लेकर आया हूं। वह नगर से आया है और रात को आप ही के यहां टिकेगा। रात की रोटी का प्रबन्ध कर दीजियेगा।"

"वह तो ख़ैर सब हो जायेगा," दादा ने कहा, "मगर श्रीमान साथी, आप आर्डर तो लाये हैं न?"

दादा की योग्यता देखकर मीश्का तो दंग ही रह गया। वह मुंह में उंगली डालकर बहुत ध्यान से बातें सुनने लगा।

"ग्रार्डर-वार्डर सब कुछ है दादा!" चमड़े की पोटली वाला व्यक्ति हंस दिया ग्रौर ग्रन्दर के कोठे की तरफ़ चल दिया।

दादा उस ग्रजनबी के पीछे-पीछे हो लिये ग्रौर मीश्का दादा के पीछे-पीछे।

"किस काम से ग्राप हमारे गांव में ग्राये हैं?" दादा ने रास्ते में पूछा।

"मैं यहां चुनाव कराने ग्राया हूं। सोवियत के सदस्यों ग्रौर ग्रध्यक्ष का चुनाव होगा।"

कुछ ही देर बाद बाप भी खलिहान से ग्रा गया। उसने ग्रजनबी से सलाम-दुग्रा की ग्रौर मां से खाने का प्रबन्ध करने को कहा। खाने के बाद ग्रजनबी ग्रौर मीश्का का बाप बेंच पर साथ-साथ बैठ गये। ग्रजनबी ने ग्रपनी चमड़े की पोटली खोली, उसमें से काग़ज़ों का एक पुलिन्दा निकाला ग्रौर बाप को दिखाने लगा। मीश्का के मन में बड़ी जिज्ञासा थी ग्रौर वह इनके ग्रास-पास घूम रहा था कि किसी तरह उन काग़ज़ों पर एक नज़र डाल ले। बाप ने एक काग़ज़ लिया ग्रौर मीश्का को दिखाते हुए कहा–

"देख मीश्का, यह है लेनिन!"

मीश्का ने बाप के हाथ से तस्वीर झपट ली, उसी पर नज़र गड़ा दी ग्रौर उसका मुंह ग्राश्चर्य से खुल गया। यह लेनिन का ग्रादमक़द चित्र था। क़द बहुत बड़ा नहीं, वह

लाल क़मीज़ भी नहीं, कोट पहने था। एक हाथ पतलून की जेब में था और दूसरा सामने की ओर उठा हुआ। मीश्का इस चित्र पर नज़र टिकाये था। एक ही नज़र में वह उसे ऊपर से नीचे तक देख गया। उसके स्मृतिपट पर हमेशा के लिये, बहुत ही अमिट रूप में लेनिन का एक एक नक़्श अंकित होकर रह गया। उसके मन में सदा के लिये जमकर रह गई कुछ कुछ मुड़ी हुई भौंहें और आंखों और होंठों के कोनों में दुबकी हुई मुस्कान की स्मृति।

अजनबी ने मीश्का के हाथ से चित्र लिया, अपनी पोटली में रखकर ताला लगाया और सोने की तैयारी करने लगा। उसने कपड़े उतारे, और फ़ौजी कोट ओढ़कर लेट गया। उसकी आंख लगने ही वाली थी कि दरवाज़ा चरचराया। उसने सिर ऊपर उठाया –

"कौन है?"

फ़र्श पर किसी के नंगे पैरों की आहट हुई।

"कौन है?" उसने दोबारा पूछा और बिस्तर के निकट बिल्कुल अप्रत्याशित ही मीश्का को खड़े पाया।

"क्या बात है बेटे?"

मीश्का घड़ी-भर चुपचाप खड़ा रहा, फिर उसने साहस बटोरा और फुसफुसाकर कहा –

"चाचा, देखो बात यह है... तुम मुझे... मुझे लेनिन दे दो!"

अजनबी चुप रहा, बिस्तर से आगे की ओर गर्दन बढ़ाकर उसने लड़के को ग़ौर से देखा।

मीश्का को डर ने आ दबाया – हो सकता है कि चाचा कंजूसी कर जाये और चित्र न दे! आवाज़ कांप न जाये इसका प्रयास करते और रुंधते हुए गले से उसने जल्दी-जल्दी फुसफुसाकर कहा –

"आप मुझे दे दें, बिल्कुल दे दें यह तस्वीर... मेरे पास टीन का अच्छा-सा डिब्बा है, मैं वह दे दूंगा आप को और इसके अलावा खेलने की हड्डियां भी दे दूंगा और..." मीश्का ने तंग आकर हाथ झटका और कहा – "वे जूते भी दे दूंगा जो बापू मेरे लिए लाये हैं!"

"मगर तू करेगा क्या लेनिन का?" अजनबी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"नहीं देने का!" मीश्का ने मन ही मन सोचा। उसने मुंह दूसरी तरफ़ फेर लिया ताकि आंसू की बूंद नज़र न आये और टूटती-सी आवाज़ में कहा –

"चाहिये, बस!"

अजनबी हंस दिया। उसने सिरहाने के नीचे से पोटली निकाली और मीश्का को तस्वीर दे दी। मीश्का ने तस्वीर ली, उसे क़मीज़ के नीचे, दिल के बिल्कुल निकट, सीने पर ज़ोर से भींचा और कोठे से भागता हुआ बाहर आया। दादा की आंख खुल गई और उन्होंने पूछा –

"अरे तू कहां टापता फिर रहा है आधी रात को? कहा था तुझसे कि रात को दूध मत पी अब बार बार उठ-उठकर भागेगा! अरे सुन! अब गन्दे पानी की यह जो बाल्टी पड़ी है, उसी में अपना काम कर ले। बाहर अहाते में ले जाऊं तुझे, यह मेरे बस की बात नहीं!"

मीश्का चुपचाप लेट गया, तस्वीर को दोनों हाथों से भींचे रहा। वह करवट लेते हुए डरता कि कहीं तस्वीर मुड़मुड़ा न जाये। इसी तरह उसकी आंख लग गई।

मुंह अंधेरे ही मीश्का की आंख खुल गई। मां ने गाय दुहकर उसे रेवड़ के साथ बस भेजा ही था। मीश्का को देखा तो दोनों हाथों से सिर थाम लिया—

"अरे तुझे क्या परेशानी है चंचल हड्डी! इतने सवेरे ही क्यों उठकर बैठ गया है?"

मीश्का ने फ़ोटो को क़मीज़ के नीचे दबाया और मां के क़रीब से झटपट खलिहान की तरफ़ बढ़ गया और खत्ती में ग़ायब हो गया।

खत्ती के चारों ओर बरडॉक की झाड़ियां खड़ी थीं और बिच्छू बूटी की हरी दुर्गम दीवार कांटे फैलाये हुए थी। मीश्का कूद-फांदकर खत्ती में जा पहुंचा। उसने धूल और मुर्ग़ियों की बीट हाथों से हटाई, बरडॉक का एक बड़ा-सा और सूखकर पीला पड़ा हुआ पत्ता तोड़ा, फ़ोटो को उसमें

लपेटा और ज़मीन पर रखकर उसपर एक कंकड़ रख दिया ताकि वह हवा से उड़ न जाये।

सुबह से शाम तक पानी बरसता रहा। आकाश में सुरमई चंदवा छाया हुआ था। अहाते के गढ़ों में बूंदों की टपटप हो रही थी और सड़कों पर छोटे-छोटे नद-नाले बह रहे थे।

मीश्का को मजबूरन दिन-भर घर में बैठे रहना पड़ा। झुटपुटा हो चला था जब बाप और दादा तैयार होकर सभा में भाग लेने के लिये कार्यकारिणी समिति के दफ़्तर की ओर चले। मीश्का ने दादा की छज्जेदार टोपी पहनी और उनके पीछे-पीछे हो लिया। कार्यकारिणी का दफ़्तर गिरजाघर के चौकीदार के झोंपड़े में था। बड़ी मुश्किल से टेढ़ी-मेढ़ी और गन्दी-मन्दी सीढ़ियां चढ़कर मीश्का बरसाती में पहुंचा और वहां से कमरे में गया। कमरा खचाखच भरा था और तम्बाकू का धुआं छत को छू रहा था। खिड़की के पास मेज़ लगाये वही अजनबी बैठा था। वह कमरे में जमा होते हुए कज़ाकों से कुछ कह रहा था।

मीश्का चुपचाप सबसे पीछेवाली बेंच पर जा बैठा।

"साथियो! आपमें से कौन इस बात के हक़ में हैं कि फ़ोमा कोर्शुनोव को अध्यक्ष चुना जाये? कृपया अपने हाथ उठायें!"

मीश्का के आगे दूकानदार का दामाद प्रोख़ोर लीसेन्कोव बैठा था। वह चिल्लाया –

"भाइयो! मेरी प्रार्थना है कि इस व्यक्ति को उम्मीदवार न बनाया जाये। वह हाथ का सच्चा आदमी नहीं है। वह जब हमारे रेवड़ चराया करता था तभी यह बात साफ़ हो गई थी!"

मीश्का ने मोची फ़ेदोत को खिड़की की ओटक से उठते देखा। वह दोनों हाथ हिलाकर चिल्लाने लगा –

"साथियो, खाते-पीते लोग यह सहन नहीं कर सकते कि चरवाहा फ़ोमा सोवियत का अध्यक्ष चुना जाये। मगर चूंकि वह प्रोलेतारी और सोवियत सत्ता का हिमायती है इसलिये..."

मोची फ़ेदोत अपनी बात पूरी भी न कर पाया कि दरवाज़े के पास सटकर खड़े हुए मालदार कज़ाक ज़ोर ज़ोर से पांव पटकने और सीटियां बजाने लगे। कमेटी के दफ़्तर में ग़ुल-गपाड़ा मच गया।

"चरवाहा नहीं चाहते!"

"नौकरी से लौट आया, – लोगों के ढोर चराया करे!"

"भाड़ में जाये फ़ोमा कोर्शुनोव!"

मीश्का ने बाप के चेहरे पर नज़र डाली, हवाइयां उड़ रही थीं। वह बेंच के निकट खड़ा था। बाप का ऐसा हाल देखकर ख़ुद मीश्का के चेहरे का रंग उड़ गया।

"ख़ामोश रहो साथियो! सभा से निकाल दूंगा!" मेज़ पर ज़ोर से मुक्के मारकर अजनबी चिल्लाया।

"कज़ाकों में से अपना आदमी चुनेंगे!"

"नहीं चाहिये!"

"नहीं चा-हि-ये... इसकी मां की!"... कज़ाक शोर मचा रहे थे और सबसे ज़्यादा गला फाड़कर चीख़ रहा था दूकानदार का दामाद प्रोख़ोर।

एक हट्टा-कट्टा और लाल दाढ़ीवाला कज़ाक उछलकर बेंच पर खड़ा हो गया। उसके कान में बाली थी और फटे हुए कोट पर जहां-तहां पैबन्द लगे थे।

"भाइयो! मामला चौपट हुआ जा रहा है! हो-हल्ला करके ये अमीर लोग अपने आदमी को अध्यक्ष बना देना चाहते हैं! फिर से वही..."

वहां इतना शोर मच रहा था कि कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। बालीवाला कज़ाक चीख़-चीख़कर जो कुछ कह रहा था उसका कोई कोई शब्द ही मीश्का को सुनाई दिया –

"ज़मीन... फिर बंटवाई जायेगी... बंजर हमें... बढ़िया ज़मीन वे ख़ुद दबा लेंगे..."

"प्रोख़ोर को अध्यक्ष बनाया जाये!" दरवाज़े के निकट लगातार यही स्वर गूंज रहा था।

"प्रोख़ोर! हो-हो-हो! हा-हा-हा!"

जैसे-तैसे शोर कम हुआ अजनबी भौंहें चढ़ाकर और लाल-पीला होता हुआ देर तक कुछ चीख़ता-चिल्लाता रहा।

"डांट-डपट रहा होगा!" मीश्का ने सोचा।

अजनबी ने ऊंची आवाज़ में पूछा –

"फ़ोमा कोर्शुनोव के हक़ में कौन हैं?"

बेंचों के ऊपर बहुत-से हाथ उठ गये। मीश्का ने भी हाथ ऊंचा कर दिया। कोई आदमी एक के बाद दूसरी बेंच पर कूदता हुआ ऊंचे-ऊंचे गिनती करने लगा –

"तिरसठ... चौसठ," – मीश्का की ओर न देखते और उसके उठे हुए हाथ की ओर उंगली से इशारा करते हुए उसने कहा –

"पैंसठ!"

अजनबी ने काग़ज़ पर कुछ लिखा और फिर ऊंची आवाज़ में कहा –

"जो प्रोख़ोर लीसेन्कोव के हक़ में हैं, हाथ उठायें!"

सत्ताईस धनी कज़ाकों और चक्की के मालिक येगोर ने झटपट हाथ ऊंचे कर दिये। मीश्का ने इर्दगिर्द नज़र दौड़ाई और उसने भी हाथ ऊंचा कर दिया। गिनती करनेवाला व्यक्ति मीश्का के बराबर आया और ऊपर से उसे देखकर उसने ज़ोर से मीश्का का कान पकड़ लिया। मीश्का को बड़ा दर्द हुआ।

"अरे पाजी कहीं के! चल भाग यहां से वरना मरम्मत कर डालूंगा! चला है राय देने!"

इर्दगिर्द बैठे लोग हंस दिये। गिनती करनेवाला व्यक्ति मीश्का को दरवाज़े तक लाया और पीठ पर ठोंका दिया। मीश्का को याद हो आया कि दादा और बाप के बीच तकरार हो जाने पर बाप ने क्या कहा था। गन्दी-मन्दी और फिसलनी सीढ़ियों से नीचे जाते हुए मीश्का ने भी वही शब्द दोहरा दिये –

"तुम्हें ऐसा करने का हक़ नहीं है!"

"ठहर, बड़ा आया है मुझे हक़ समझानेवाला!"

मीश्का को अपमान का कड़वा घूंट पीना पड़ा, बहुत खीझ आई।

मीश्का ने घर लौटकर आंसू बहाये और फिर मां से फ़रियाद की। मां ने डांट पिलाई –

"तू हर जगह घुसता क्यों फिरता रहता है! सभी जगह अपनी नाक घुसेड़ा करता है! तेरे कारण तो नाक में दम है मेरा!"

अगले दिन सुबह सब नाश्ता करने बैठे। नाश्ता अभी ख़त्म भी नहीं हुआ था कि बहुत दूर से बाजे की ढम-ढम सुनाई दी। बाप ने चमचा मेज़ पर रखा और मूंछें पोंछते हुए कहा –

"यह तो फ़ौजी बैंड लगता है!"

मीश्का तो हवा की तरह बेंच से ग़ायब हो गया। जल्दी में उसने धड़ाक से ड्योढ़ी का दरवाज़ा बन्द किया। खिड़की से तेज़ क़दमों की चप-चप सुनाई देती रही...

दादा और बाप बाहर अहाते में आ गये। मां खिड़की से धड़ बाहर निकालकर देखने लगी।

सड़क के सिरे पर हरी लहरों-सी लहराती हुई लाल सेना की क़तारें चली आ रही थीं। आगे-आगे कुछ बैंडवाले बिगुल बजाते चले आ रहे थे और ढोलची ज़ोरों से ढोल को ढमढमा रहा था। पूरे गांव में बैंड की आवाज़ गूंज रही थी।

मीश्का की आंखें सभी ओर दौड़ रही थीं। शुरू में तो वह खोया-खोया-सा एक ही जगह पर चक्कर काटता रहा और फिर झपटकर बैंडवालों के पास जा पहुंचा। उसके हृदय में कोई मीठी-मीठी चीज़ हिलोरें ले रही थी, वह मुंह तक आने को बेक़रार थी... मीश्का धूल-मिट्टी से अटे हुए लाल सेना के फ़ौजियों के हंसमुख चेहरों को और गाल फुला फुलाकर बाजों में से आवाज़ निकालते हुए बैंडवालों को देखता रहा। फिर उसने अचानक और एकबारगी यह तय कर लिया – "मैं भी जाऊंगा इनके साथ लड़ाई लड़ने!"

उसे अपना सपना याद हो आया। न जाने कहां से उसमें हिम्मत आ गई कि किनारेवाले फ़ौजी का बटुआ थामकर उसने पूछा –

"आप कहां जा रहे हैं? लड़ाई लड़ने?"

"तो और क्या? लड़ने ही तो जा रहे हैं!"

"किस की ओर से आप लड़ेंगे?"

"सोवियत सत्ता की ओर से, पगले! अच्छा इधर आ, बीच में।"

उसने मीश्का को फ़ौजियों की क़तारों के बीच धकेल दिया, किसी ने हंसते-हंसते उसकी गुद्दी पर चुटकी काट ली, किसी अन्य ने जेब में पड़ा हुआ गन्दा-सा चीनी का छोटा-सा टुकड़ा निकाला और उसके मुंह में ठोंस दिया। चौक में पहुंचने पर पहली क़तार में से किसी ने चीख़कर कहा –

"रुक जाओ!"

लाल सेना के फ़ौजी रुके, चौक में इधर-उधर बिखरे और स्कूल की बाड़ की छाया में ठण्डी जगह देख, सटकर लेट गये। घुटे हुए सिरवाला लाल सेना का एक लम्बा-तड़ंगा फ़ौजी मीश्का के पास आया। उसकी बग़ल में तलवार लटक रही थी। मुस्कराते हुए उसने पूछा –

"अरे तू कहां से आ गया इधर?"

मीश्का ने अपने चेहरे पर बड़प्पन का भाव लाकर नीचे गिरे जाते पतलून को खींचकर ऊपर किया।

"मैं आप लोगों के साथ लड़ाई लड़ने चलूंगा!"

"साथी बटालियन कमांडर, इसे भी सहायकों में शामिल कर लो!" लाल सेना के एक सैनिक ने ऊंची आवाज़ में कहा।

सभी ओर ज़ोर के क़हक़हे गूंज गये। मीश्का बार-बार

पलकें झपकाता खड़ा रहा। मगर "बटालियन कमांडर" के अजीब-से नामवाले व्यक्ति ने भौंहें चढ़ाईं और ज़ोर से डांटते हुए कहा –

"हंसने की क्या बात है मूर्खो? स्पष्ट है कि हम इसे अपने साथ ले चलेंगे... मगर एक शर्त पर," बटालियन कमांडर मीश्का की ओर घूमा और बोला – "देखो तुम्हारे पतलून में सिर्फ़ एक बन्द है। ऐसे काम नहीं चलेगा। ऐसे तो तू अपने हुलिये से हमारी हेठी करायेगा... यह देख, मेरे पतलून के दो बन्द हैं, सभी के पतलूनों के दो बन्द हैं। जा भागकर जा, मां से दूसरा बन्द सिलवा ला। हम तुम्हारा यहीं इन्तज़ार करेंगे..." इतना कहकर कमांडर बाड़ की तरफ़ घूमा और आंख मारते हुए उसने ऊंची आवाज़ में कहा – "तेरेश्चेन्को, जा, लाल सेना के नये फ़ौजी के लिये जल्दी से बन्दूक़ और फ़ौजी कोट लेकर आ!"

बाड़ की छाया में लेटे हुए फ़ौजियों में से एक उठा, टोप के छज्जे तक हाथ उठाकर उसने सलामी दी और कहा –

"जो हुक्म!" वह जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ बाड़ के साथ साथ चल दिया।

"अच्छा अब तू उड़कर जा! मां से झटपट बन्द सिलवाकर लौट आ!"

मीश्का ने कड़ी नज़र से बटालियन कमांडर की तरफ़ देखा –

"देखो, मुझे धोखा नहीं देना!"

"क्या बात करता है! कभी हो सकता है?"

चौक से घर तक काफ़ी फ़ासला था। मीश्का फाटक तक ही दौड़ा था कि दम फूल गया। सांस लेना कठिन हो गया। फाटक के पास पहुंचने पर उसने दौड़ते-दौड़ते ही पतलून उतार लिया। नंगे पांव जल्दी से दौड़ता हुआ तेज़ झोंके की तरह मकान में जा घुसा–

"मां... पतलून का... एक ओर बन्द सी दे!"

घर में ख़ामोशी थी। तन्दूर के ऊपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। मीश्का भागता हुआ अहाते में पहुंचा, खलिहान और बगीचे में गया–न बाप, न मां, न दादा। छलांगें मारता कोठे में गया–एक बोरी पर नज़र जा पड़ी। उसने चाकू लिया और उसकी लम्बी डोरी काट ली। सीने की फ़ुरसत मीश्का को कहां थी और फिर सीना आता भी तो नहीं था। उसने झटपट पतलून में यों ही डोरी फंसा ली और कंधे पर से ले जाकर सामने की तरफ़ निकाल ली। वह भागकर खत्ती में गया।

उसने कंकड़ हटाकर लेनिन का चित्र उठाया। अपनी ओर इशारा करते लेनिन के उठे हुए हाथ को उड़ती नज़र से देखा और सांस रोककर धीरे से फुसफुसाया–

"देख लिया न? मैं भी जा रहा हूं तुम्हारी फ़ौज में!"

बड़ी सावधानी से उसने लेनिन की तस्वीर बरडॉक के पत्ते में लपेटी, उसे क़मीज़ के नीचे दबा लिया और उछलता-कूदता सड़क पर आ गया। वह एक हाथ से चित्र को छाती से चिपकाये रहा और दूसरे से पतलून सम्भालता गया। जब दौड़ता हुआ पड़ोसिन की बाड़ के निकट से गुज़रा तो पुकारकर कहा –

"अनीसिमोव्ना!"

"क्या है?"

"हमारे घरवालों से कह देना कि खाने पर मेरा इन्तज़ार न करें!"

"तू कहां उड़ा जा रहा है, पाजी?"

मीश्का ने हाथ हिलाकर जवाब दिया –

"नौकरी पर जा रहा हूं!"

वह भागता हुआ चौक में पहुंचा। वहां पहुंचते ही उसे तो जैसे काठ मार गया। चौक में तो आदमी का नाम-निशान तक नहीं था। बाड़ के क़रीब सिगरेटों के टुकड़े, ख़ाली डिब्बे और किसी की फटी-पुरानी पट्टियां पड़ी थीं। गांव के बिल्कुल दूसरे सिरे से बैंड की सी आवाज़ और जमी हुई मिट्टी की सड़क पर चलनेवालों के पैरों की धम-धम सुनाई दे रही थी।

मीश्का का गला आंसुओं से रुंध गया। वह चीख़ उठा और अपनी बची-बचाई पूरी ताक़त समेटकर भाग खड़ा हुआ। जा मिलता, ज़रूर वह उनसे जा मिलता, मगर चमार के अहाते

के सामने पीले रंग का दुमदार कुत्ता फैलकर लेटा हुआ था। उसने गुर्राकर दांत दिखाये। मीश्का जब भागकर दूसरी सड़क पर पहुंचा तो बाजों की आवाज़ खो चुकी थी और पैरों की धम-धम भी।

* * *

दो दिन बाद गांव में कोई चालीस फ़ौजियों की एक टुकड़ी आई। ये लोग घुटनों तक के सफ़ेद फ़ेल्ट के बूट और मज़दूरों के समान तेल लगे हुए कोट पहने थे। बाप कार्यकारिणी समिति से दोपहर का खाना खाने घर आया तो दादा से बोला –

"बापू, खत्ती में अनाज तैयार कर लो। अनाज-दस्ता आया है। अनाज देना होगा।"

फ़ौजी एक-एक घर में जाते थे, कोठारों-खत्तियों में संगीनें भोंक भोंककर जांच करते थे और छिपाया हुआ अनाज निकलवाकर एक सामाजिक भण्डार में जमा करते जाते थे।

वे ग्राम-सोवियत के अध्यक्ष के घर भी आये। उनमें जो सबसे आगे-आगे था, मुंह में पाइप लगाये था। उसने दादा से पूछा –

"बड़े मियां, अनाज छिपा रखा है क्या? सच सच बता दो!"

दादा ने दाढ़ी पर हाथ फेरा और बड़े गर्व से कहा –

"अजी क्या कहते हैं, मेरा बेटा तो ख़ुद कम्युनिस्ट है!"

सब खत्ती में पहुंचे। पाइप वाले फ़ौजी ने एक नज़र में सारे अनाज को आंका और मुस्करा दिया।

"बड़े मियां, इसमें से इतना हमारे भण्डार में पहुंचा दो, बाक़ी अपने परिवार की रोटी और बीज के लिये रख लो। जिनकी खत्तियां और कोठार फालतू अनाज से भरे पड़े हैं, हम तो उनसे अनाज निकलवाते हैं ताकि भूखे मज़दूरों और किसानों का पेट भर सके। मैं समझता हूं कि आप तो ख़ुद ही हमें थोड़ा-सा अनाज दे देंगे।"

दादा ने बूढ़े घोड़े को छकड़े में जोता, कुढ़ते-बड़बड़ाते रहे और आठ बोरियां छकड़े में लाद दीं। अफ़सोस से उन्होंने हाथ झटका और सामाजिक भण्डार की ओर छकड़ा बढ़ा दिया। मां को अनाज के इस तरह निकल जाने का दुख हुआ, वह कुछ रोई-धोई। मगर मीश्का ने अनाज की बोरियों की लदाई में दादा का हाथ बंटाया और फिर पादरी के बेटे वीत्का के साथ खेलने के लिये उसके घर चला गया।

मीश्का और वीत्का अभी रसोईघर में जाकर बैठे ही थे, उन्होंने काग़ज़ के घोड़े काट-काट कर फ़र्श पर बिछाये ही थे कि वे ही फ़ौजी, पादरी के रसोईघर में आ पहुंचे। पादरी साहब दौड़-धूप करने लगे, उनकी आवभगत को दौड़े आये, आदरभाव जताने लगे। उन्होंने फ़ौजियों से प्रार्थना की कि वे आराम-कमरे में चलकर बैठें। मगर पाइपवाले फ़ौजी ने कड़ाई-रुखाई से कहा –

"खत्ती में चलिये! कहां जमाकर रखा है आपने अनाज?"

भीतरवाले कमरे से पादरी की बीवी लपककर वहां आई। उसके बाल अस्त-व्यस्त हुए पड़े थे। अपने होंठों पर चोर की सी हंसी लाकर उसने कहा—

"विश्वास कीजिये जनाब, हमारे घर में तो अनाज का एक दाना भी नहीं है! मेरे पति ने अपने श्रद्धालुओं के घरों में अभी फेरा नहीं किया . . ."

"तहख़ाना है आपके यहां?"

"नहीं, हमारे यहां नहीं है . . . हम तो खत्ती में ही पहले अनाज जमा करते थे . . ."

मीश्का को याद हो आया कि कैसे वह वीत्का के साथ रसोईघर से एक बड़े-से तहख़ाने में जाया करता था। पादरी की बीवी की तरफ़ मुंह करके उसने कहा—

"रसोईघर से मैं और वीत्का तो तहख़ाने में उतरा करते थे, आप भूल गईं क्या?"

पादरी की बीवी के चेहरे का रंग फक हो गया, मगर वह हंस दी—

"तू भूल रहा है छोकरे! वीत्का, तुम लोग बाहर बगीचे में जाकर खेलो!"

पाइपवाले फ़ौजी ने आंखें झपकाईं और मीश्का की ओर देखकर मुस्कराया—

"लड़के, किधर को रास्ता है उस तहख़ाने का?"

पादरी की बीवी बेचैनी से उंगलियां चटकाती हुई बोली—

"ख़ूब हैं आप भी, इस बेवक़ूफ़ छोकरे की बात पर विश्वास कर रहे हैं! मैं आपको यक़ीन दिलाती हूं कि हमारे घर में तहख़ाना नहीं है!"

पादरी ने अपने चोग़े के छोर झटकते हुए कहा—

"आइये, कुछ जलपान कीजिये! चलिये कमरे में!"

पादरी की बीवी ने मीश्का के पास से गुज़रते हुए उसके हाथ पर ज़ोर की चुटकी काटी और मुस्कराकर बड़े प्यार से कहा—

"जाओ बच्चो, बगीचे में जाओ! यहां गड़बड़ी नहीं करो!"

फ़ौजियों ने आंखों ही आंखों में इशारे किये और रसोईघर में इधर-उधर चक्कर काटते हुए बन्दूक़ों के दस्तों से फ़र्श को ठोक-बजाकर देखने लगे। दीवार के पास से उन्होंने मेज़ खिसकाई और टाट उठाया। पाइपवाले फ़ौजी ने फ़र्श का तख़्ता उल्टा, तहख़ाने में झांका और गर्दन हिलाते हुए कहा—

"शर्म नहीं आती आप लोगों को? कह रहे थे कि अनाज का एक दाना भी नहीं है और तहख़ाने में ऊपर तक गेहूं भरा पड़ा है!"

पादरी की बीवी ने मीश्का को ऐसी काटती नज़र से देखा कि उसका कलेजा कांप उठा। उसका मन हुआ कि झटपट भाग ले घर को। वह उठा और आंगन में आया। पादरी की बीवी भी लपकती हुई उसके पीछे-पीछे

ड्योढ़ी में पहुंची और उसपर झपटी। मीश्का को बालों से पकड़कर वह फ़र्श पर घसीटने लगी।

मीश्का ने बड़ी मुश्किल से अपने बाल छुड़वाये और जान छोड़कर घर की तरफ़ भागा। आंसू थे कि झड़ी बनकर बरस रहे थे। मां को उसने रो-रोकर सारा हाल सुनाया और वह तो बस सिर थामकर रह गई –

"हाय रे, क्या करूं मैं तेरा? दूर हो जा मेरी आंखों के सामने से, वरना मार मारकर चटनी बना दूंगी!"

इस दिन के बाद तो यह नियम बन गया कि जब कोई मीश्का का अपमान करता, वह खत्ती में जा घुसता। पत्थर हटाता, बरडॉक के पत्ते से चित्र निकालता, आंसुओं से चित्र को भिगोता और लेनिन को अपना दुख-दर्द सुनाता, अपमान करनेवाले के ख़िलाफ़ शिकवा-शिकायत करता।

इसी तरह एक सप्ताह बीत गया। मीश्का को ऊब अनुभव होने लगी। साथ खेलनेवाला कोई नहीं था। अड़ोस-पड़ोस के बच्चे कन्नी काटते। "हरामी" के साथ अब बड़ों से सुनी-सुनायी एक उपाधि और जोड़ दी गई थी। लड़के पीछे से आवाज़ें कसते –

"अरे ओ कम्युनिस्टे! ओ सड़े अंडे, इधर देख!"

एक दिन क्या हुआ कि मीश्का सांझ गहराने के पहले तालाब से घर लौटा। वह अभी घर के भीतर नहीं पहुंचा था कि बाप को तीखी आवाज़ में कुछ कहते सुना। मां

गिड़गिड़ाती हुई उसी तरह विलाप कर रही थी जैसे कि किसी के मर जाने पर किया जाता है। मीश्का ने दरवाज़े में दाख़िल होते ही देखा कि बाप अपना फ़ौजी कोट तह कर रहा है और बड़े बूट कस रहा है।

"बापू, तुम कहां चले?"

बाप हंस दिया। उसने जवाब दिया—

"बेटा, तू अपनी मां को समझा-बुझा . . . इसके रोने-धोने से मेरा कलेजा फटा जा रहा है। मैं लड़ाई पर जा रहा हूं और यह मुझसे चिपकी जा रही है!"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा, बापू!"

पिता ने पेटी कसी और फ़ीतियों वाली टोपी पहनी।

"तू भी कमाल का छोकरा है! एक ही साथ तो हम दोनों को नहीं जाना चाहिये घर से! मैं लौट आऊंगा तब तुम जाना, वरना जब फ़सल पकेगी तो कौन काटेगा? मां तुम्हारी घर के काम-काज में उलझी रहती है और दादा हो गये बूढ़े . . ."

पिता से विदा होते समय मीश्का ने अपने आंसू अन्दर ही अन्दर पी लिये। इतना ही नहीं, मुस्करा तक दिया।

मां, पहले की भांति, बाप की गर्दन से लिपट गई। बाप ने ज़बर्दस्ती उस से अपने को आज़ाद किया। दादा ने केवल आह भरी। लड़ाई पर जानेवाले को चमते हुए उन्होंने उसके कान में फुसफुसाकर कहा—

"फ़ोमा . . . मेरे प्यारे बेटे! अच्छा हो कि तुम न जाओ! तुम्हारे बिना, शायद तुम्हारे बिना भी काम चल जाये! अगर तुम मारे गये तो हम कहीं के न रहेंगे!"

"हटाओ बापू . . . यह बात ठीक नहीं है। अगर सभी बीवियों की गोद में छिपकर बैठ रहेंगे तो हमारी सत्ता की रक्षा कौन करेगा?"

"तुम जानो, अगर ऐसा ही ठीक समझते हो तो जाओ।"

दादा ने मुंह दूसरी ओर किया और चुपके-से आंसू पोंछ डाला। घर के लोग बाप को कार्यकारिणी के दफ़्तर तक पहुंचाने गये। वहां आंगन में कोई बीस आदमी जमा थे, बन्दूक़ें लिये हुए। मीश्का के बाप ने भी बन्दूक़ ली और आख़िरी बार मीश्का को चूमा। फिर बाक़ी लोगों के साथ सड़क पर क़दम बढ़ाता हुआ वह भी गांव के बाहर की ओर चला गया।

मीश्का दादा के साथ घर लौटा। उसकी मां मुश्किल से अपने को सम्भालती और लड़खड़ाती हुई पीछे पीछे चली आ रही थी। गांव में कहीं-कहीं कुत्ते भौंक रहे थे, कहीं-कहीं रोशनी नज़र आ रही थी। गांव पर रात का अन्धेरा इस तरह छाया जा रहा था मानो किसी बुढ़िया ने काली ओढ़नी ओढ़ ली हो। बूंदा-बांदी हो रही थी, गांव से कुछ दूर स्तेपी में बिजली कौंध-कौंध उठती थी और रह-रहकर बिजली की कड़क और बादल की गरज सुनाई पड़ती थी।

वे घर के निकट पहुंच गये। मीश्का रास्ते-भर चुप रहा, मगर अब उसने पूछा –

"दादा, बापू किससे लड़ने गये हैं ?"

"अरे, छोड़ भी मेरा पिंड!"

"दादा!"

"क्या है?"

"किससे लड़ेंगे मेरे बापू ?"

दादा ने फाटक की सांकल चढ़ाते हुए जवाब दिया –

"हमारे गांव के पास कुछ दुष्ट लोगों ने मुसीबत कर रखी है। लोग उसे कोई गिरोह बताते हैं, मगर मैं तो यही समझता हूं कि कोई डाकू-लुटेरे होंगे ... तुम्हारा बाप उन्हीं से लड़ने गया है।"

"बहुत हैं क्या वे लोग दादा?"

"सुना है कि कोई दो सौ हैं... अच्छा अब जाकर सो जा। तुझे क्या लेना-देना है इन बातों से!"

रात को आवाज़ों के शोर से मीश्का की आंख खुल गई। उसने अपना बिस्तर टटोला तो दादा को ग़ायब पाया।

"दादा, कहां हो तुम?"

"चुप रह! सो जा चंचल हड्डी!"

मीश्का उठा और अन्धेरे में रास्ता टटोलता हुआ खिड़की तक जा पहुंचा। दादा सिर्फ़ अंडरवीयर पहने हुए बेंच पर बैठे थे, सिर उनका खिड़की से बाहर निकला हुआ

था और वे बहुत ग़ौर से आवाज़ें सुन रहे थे। मीश्का ने भी कान लगा दिये। रात के गहरे सन्नाटे में उसे गांव के परे बार-बार गोली चलने की आवाज़ साफ़ सुनाई दी। उसके बाद तो गोलियां की बाढ़-सी दाग़ दी गयी।

"तड़ाक! तड़-तड़-तड़! तड़-तड़ाक!"

ऐसा लगता था मानो कोई कीलें ठोंक रहा हो।

मीश्का का दिल दहल उठा। वह दादा से जा लिपटा और उसने पूछा –

"यह मेरे बापू गोली चला रहे हैं न?"

दादा चुप हो गये और मां फिर से विलाप करने लगी।

पौ फटने तक गोली चलती रही और उसके बाद सन्नाटा हो गया। मीश्का वहीं बेंच पर सिमट-सिमटाकर लेट गया और बेचैन, बोझल और दुख की नींद सो गया। उजाला हुआ तो कार्यकारिणी समिति के कार्यालय की ओर घुड़सवारों का एक दल आता दिखाई दिया। दादा ने मीश्का को जगाया और ख़ुद बाहर भागे।

कार्यकारिणी समिति के आंगन में धुएं का खम्भा-सा उठा और आग की लपलपाती हुई लपटें इमारतों की ओर बढ़ चलीं। सड़कों पर घुड़सवार घोड़े कुदाते फिर रहे थे। एक घुड़सवार घोड़ा कुदाता हुआ अहाते के पास आया और उसने पुकारकर दादा से पूछा –

"बूढ़े, घोड़ा है?"

"हां है..."

"जल्दी से जोतकर गांव के बाहर चला जा। वहां झाड़ियों में तुम्हारे कम्युनिस्ट पड़े हैं! जा ले आ लादकर! अच्छा है सगे-सम्बन्धियों के हाथों उनकी मिट्टी ठिकाने लग जाये!"

दादा ने झटपट घोड़े को जोता, कांपते हाथों से लगामें सम्भालीं और तेज़ी से अहाते के बाहर निकल गये।

गांव में तो हाय-दुहाई मच गई। डाकू घोड़ों से उतरकर खलिहानों से सूखी घास निकाल लाये, भेड़-बकरियां काटने लगे। एक डाकू अनीसिमोव्ना के अहाते के क़रीब घोड़े से नीचे कूदा और घर में जा घुसा। मीश्का ने अनीसिमोव्ना को भर्राई आवाज़ में रोते-कलपते सुना। डाकू तलवार लिए हुए धड़ाधड़ बाहर आया, ड्योढ़ी में बैठ गया और उसने जूते उतारे। उसने अनीसिमोव्ना के फूलदार और पर्वों के अवसरों पर पहने जानेवाले शॉल के दो टुकड़े किये, अपनी गन्दी पट्टियां उतारीं और उनकी जगह उन्हें लपटे लिया।

मीश्का कोठे में जाकर बिस्तर पर लेट रहा। उसने सिर तकिये में गड़ा दिया और तभी उठा जब फाटक की सांकल खनकी। भागा हुआ दरवाज़ा पर गया। देखा कि दादा की दाढ़ी आंसुओं से तर है और वह घोड़े को अहाते के अन्दर ला रहे हैं।

पीछे छकड़े में एक आदमी नंगे पांव पड़ा था। उसकी बांहें फैली हुई थीं, छकड़ा जब हिचकोले खाता तो उसका सिर दायें-बायें टकराता और छकड़े के तख़्तों पर गाढ़ा-गाढ़ा काला ख़ून रिस रहा था ...

मीश्का कांपते पैरों से छकड़े के क़रीब गया। उसने चेहरे पर नज़र डाली जो तलवार के वारों से बिल्कुल टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा था, दांत बाहर निकले हुए थे, हड्डी समेत कटा हुआ गाल लटक रहा था, आंख की जगह ख़ून से भरा गढ़ा था जिसपर हिलती-डुलती हुई बड़ी-सी हरी मक्खी बैठी थी।

मीश्का नहीं पहचान पाया कि वह लाश किस की है। वह डर से कुछ कुछ कांप रहा था। उसने ऊपर से नीचे तक इस व्यक्ति पर नज़र डाली, छाती को ध्यान से देखा, ख़ून से तर-ब-तर नीली और सफ़ेद धारियों वाली जहाज़ी क़मीज़ की ओर उसका ध्यान गया और वह इस तरह कांप उठा मानो किसी ने पीछे से टांगों पर कसकर चोट की हो। फटी-फटी आंखों से उसने एक बार फिर उस निश्चल और स्याह पड़े हुए चेहरे को देखा और उछलकर छकड़े पर जा पहुंचा।

"उठो बापू! उठो मेरे प्यारे बापू!" वह छकड़े से नीचे गिर पड़ा, उसने भाग जाना चाहा मगर टांगें जवाब दे गईं। हाथों-पैरों के बल रेंगता हुआ वह बड़ी मुश्किल से

घर के दरवाज़े तक पहुंचा और उसने अपना सिर रेत में गड़ा दिया।

* * *

दादा की आंखें अन्दर को धंस गई थीं। सिर हिलता और हिचकोले खा रहा था, होंठ हिलते-डुलते थे, मगर उनसे कोई आवाज़ नहीं निकलती थी।

दादा देर तक चुपचाप मीश्का का सिर सहलाते रहे। फिर बिस्तर पर औंधी पड़ी हुई मां की ओर देखते हुए उन्होंने फुसफुसाकर मीश्का से कहा—

"चल बेटे, बाहर अहाते में चलें ..."

दादा ने मीश्का का हाथ थामा और दरवाज़े की ओर चले। कोठे का दरवाज़ा लांघते हुए मीश्का ने आंखें मूंद लीं, वह सिहर उठा। कोठे में मेज़ पर बाप की लाश पड़ी थी, गुमसुम और गम्भीर। उसका ख़ून धोकर साफ़ किया जा चुका था, मगर मीश्का अपनी आंखों के सामने शीशे की तरह पथराई और ख़ून में डूबी हुई वही आंख देख रहा था जिसपर बड़ी हरी मक्खी बैठी थी।

दादा ने काफ़ी देर लगाकर कुएं से रस्सी खोली, फिर अस्तबल की ओर गये और घोड़े को बाहर लाये। न जाने क्यों अपनी आस्तीनों से उन्होंने घोड़े के मुंह से झाग पोंछे। फिर उसे लगाम पहनाई फिर कान लगाकर बाहर

की ग्रावाज़ें सुनते रहे। गांव में ख़ूब शोर मचा हुग्रा था, ठहाके गूंज रहे थे। ग्रहाते के क़रीब से दो घुड़सवार गुज़रे, ग्रन्धेरे में उनकी सिगरेटों की चिंगारियां चमकीं ग्रौर उनकी यह बातचीत सुनाई पड़ी –

"क्यों, कैसी रही, करवा दी न हम ने इनकी बंटाई! ग्रब दूसरी दुनिया में पहुंचकर याद करेंगे कि लोगों से ग्रनाज छीनने का क्या नतीजा होता है!"

घोड़ों की टापों की ग्रावाज़ जब बिल्कुल बन्द हो गई तो दादा ने मीश्का के कान में धीरे से कहा –

"देख बेटे, मैं हूं बूढ़ा ग्रादमी . . . घोड़े की सवारी मेरे बस की बात नहीं . . . तुझे इसपर चढ़ा देता हूं, तू भगवान का नाम लेकर प्रोनीन गांव को चला जा . . . रास्ता मैं तुझे दिखा दूंगा . . . वहां फ़ौज के वे जवान पड़े होंगे जो बैंड बजाते हुए हमारे गांव से गुज़रे थे ... उनसे कहना कि तुरत हमारे गांव की ग्रोर चले ग्रायें – यहां डाकुग्रों का गिरोह है! समझ गये?"

मीश्का ने चुपचाप सिर हिलाकर हामी भरी। दादा ने मीश्का को घोड़े पर बिठाया, रस्सी से दोनों पांव ज़ीन के साथ बांध दिये ताकि वह गिर न पड़े ग्रौर खलिहान, तालाब ग्रौर डाकुग्रों के ग्रड्डे के क़रीब से होते हुए घोड़े को स्तेपी में लाये –

"देख बेटा, वह खड्ड में से होकर चढ़ाई चली गई

है। इसपर घोड़ा चलाते जाना, इधर-उधर नहीं मुड़ना! सीधा गांव में जा पहुंचेगा। अच्छा अब चल दे मेरे लाल!"

दादा ने मीश्का को चूमा और घोड़े को धीरे से थपथपाया।

रात चांदनी थी, उजली-उजली थी। घोड़ा हल्के क़दमों से दौड़ने और नथने फुलाने लगा। पीठ के बोझ को हल्का महसूस करते हुए वह सम्भालकर क़दम रखने लगा। मीश्का उसे लगाम छुआता जाता था, गर्दन थप-थपाता था और धचकों से उछल-उछल जाता था।

अनाज की हरी घनी बालों के बीच छोटी-छोटी चिड़ियां मस्ती में चहचहा रही थीं। खड्ड की तह में झरने का पानी अपना झर-झर का गीत अलाप रहा था। हवा में कुछ कुछ सिहरन थी।

मीश्का को स्तेपी में अकेले डर लगने लगा। उसने दोनों बांहें घोड़े की गर्म गर्म गर्दन के गिर्द डाल दीं और उसका ठिठुरता-कांपता बदन घोड़े से चिपक गया।

खड्ड पहाड़ी की ओर जाता, ढालू होता और फिर ऊपर पहाड़ी की ओर ऊंचा उठता। मीश्का को पीछे की ओर देखने से डर लगता। वह कुछ फुसफुसाता हुआ यह प्रयत्न कर रहा था कि उसके दिमाग़ में किसी तरह का भयानक विचार न आये। सन्नाटा उसके कानों में सांय-सांय बज रहा था, उसने आंखें मूंद रखी थीं।

घोड़े ने सिर झटका, नथने फुलाये और क़दम तेज़ कर दिये। मीश्का ने ज़रा-सी आंख खोलकर नीचे की ओर देखा। पहाड़ी के दामन में उसे मद्धिम मद्धिम रोशनियां दिखाई दीं। हवा के झोंकों के साथ कुत्तों के भौंकने की आवाज़ भी सुनाई दी।

घड़ी भर में ख़ुशी के मारे मीश्का के दिल में गर्मी आ गई। उसने घोड़े को पैर से एड़ लगाई और टिटकारी भरी –

"टिच-ट-ट-ट!"

कुत्तों के भौंकने की आवाज़ निकट आ गई। पहाड़ी के दामन में पवन चक्की के पंखों की धुंधली-सी लकीरें नज़र आईं।

"कौन जा रहा है यह?" पवन चक्की से आवाज़ आई।

मीश्का ने चुपचाप फिर टिटकारी भरी। ऊंघते हुए गांव में मुर्ग़ों की बांग सुनाई दी।

"रुक जाओ! कौन जा रहा है? गोली मार दूंगा!"

मीश्का डर गया, उसने लगामें खींचीं। मगर घोड़े को क़रीब ही घोड़ों की उपस्थिति की गंध आ गई, वह ज़ोर से हिनहिनाया और सवार की परवाह न करते हुए सरपट दौड़ चला।

"ठहरो!"

पवन चक्की के क़रीब से गोलियों की तड़तड़ सुनाई दी। मीश्का की चीख़ घोड़े की टापों की आवाज़ में डूब गई। घोड़े का दम फूल गया, वह पिछली दो टांगों के बल खड़ा हुआ और दायें पहलू ढह पड़ा।

मीश्का अब अपनी टांग में बहुत ही ज़ोर का, जानलेवा दर्द महसूस कर रहा था। चीख़ उसके होंठों पर जमकर रह गई। घोड़ा मीश्का की टांग पर अधिकाधिक बोझ डालता गया।

घोड़ों की टापें क़रीब आती गईं। लम्बी तलवारें बांधे हुए दो सवार क़रीब पहुंचे, घोड़ों से कूदे और उन्होंने मीश्का को सिर से पांव तक देखा।

"हाय ग़ज़ब हो गया, यह तो बेचारा कोई छोकरा है!"

"कहीं जान तो नहीं ले ली?!"

किसी ने क़मीज़ के अन्दर हाथ ले जाकर मीश्का के दिल की धड़कन जांची। मीश्का के मुंह के पास तम्बाकू के लहरे आ रहे थे। किसी ने ख़ुश होते हुए कहा–

"वह ज़िन्दा है! घोड़े ने कहीं टांग न कुचल डाली हो?"

बेहोश होता हुआ मीश्का फुसफुसाया–

"गांव में गिरोह है... बापू को मार डाला... कमेटी का कार्यालय जला दिया, दादा ने कहा है कि आप फ़ौरन वहां पहुंचें!"

मीश्का की धुंधलाती हुई आंखों के सामने रंगीन चक्कर-से घूमने लगे ... अपने बापू को उसने सामने से गुज़रते देखा, लाल मूंछों को मरोड़ते और हंसते हुए। मगर उसकी आंख पर एक बड़ी-सी झूलती हुई हरी मक्खी बैठी थी। फिर दादा सामने आये, सिर हिलाते और बिगड़ते हुए। इसके बाद मां दिखाई पड़ी। सब के बाद उसके सामने उभरा छोटे क़द का चौड़े माथेवाला व्यक्ति जिसका हाथ उठा हुआ था। उसका हाथ सीधे मीश्का की ओर इशारा कर रहा था।

"साथी लेनिन!" मीश्का अपनी फटी-सी आवाज़ में पुकार उठा। ज़ोर लगाकर उसने सिर ऊपर उठाया, वह मुस्कराया और उसने अपने दोनों हाथ लेनिन की ओर बढ़ा दिये।

१९२५

बोरीस लव्रेन्योव (१८९१–१९५९) एक शानदार सोवियत उपन्यासकार। आपकी रचनाओं का अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। १९२४ में लिखी गई कहानी 'इकतालीसवां' रूसी क्रान्ति की कहानी सुनाती है। यह लेखक की एक सबसे अधिक नाटकीय कहानी है। इस कहानी पर आधारित सोवियत फ़िल्म का दुनिया-भर में सफल प्रदर्शन हो चुका है।

बोरीस लाव्रेन्योव
इकतालीसवां

पावेल द्मीत्रियेविच जूकोव को समर्पित

पहला अध्याय जो केवल इसलिये लिखा गया कि इसके बिना काम नहीं चल सकता था

मशीनगन की गोलियों की अबाध बौछाड़ से उत्तर की ओर थोड़ी देर के लिये कज़्ज़ाकों की चमकती तलवारों का घेरा टूट गया। गुलाबी येव्स्युकोव ने अपनी ताक़त बटोरी, पूरा ज़ोर लगाया और दनदनाता हुआ उस दरार से बाहर निकल गया।

रेगिस्तानी वीराने में मौत के इस घेरे से जो लोग निकल भागे थे उनमें गुलाबी येव्स्युकोव, उसके तेईस आदमी और मर्यूत्का शामिल थे।

बाक़ी के एक सौ उन्नीस फ़ौजी और लगभग सभी ऊंट सांप की तरह बल खाये हुए सकसौल के तनों और तामारिस्क की लाल टहनियों के बीच ठण्डी रेत पर निर्जीव-निष्प्राण पड़े थे।

कज़्ज़ाक अफ़सर बुरीगा को यह सूचना दी गई कि बचे-बचाये दुश्मन भाग गये हैं। यह सुनकर उसने भालू के पंजे जैसे हाथ से अपनी घनी मूंछों को ताव दिया और जम्हाई लेते हुए अपना गुफा जैसा मुंह खोल दिया और शब्दों को खींच-खींचकर बड़े इत्मीनान से कहा—

"जहन्नुम में जाने दो उन्हें! कोई ज़रूरत नहीं उनका पीछा करने की! बेकार घोड़े थकेंगे। रेगिस्तान ख़ुद ही उनसे निपट लेगा।"

इसी बीच गुलाबी येव्स्युकोव, उसके तेईस आदमी और मर्यूत्का, गीदड़ों की तरह जान छोड़कर असीम मरुस्थल में अधिकाधिक दूर भागते जा रहे थे।

पाठक तो निश्चय ही यह जानने को बेचैन होंगे कि येव्स्युकोव को "गुलाबी" क्यों कहा गया है।

लीजिये मैं बताता हूं आपको।

हुआ यह कि कोल्चाक ने चमकती-नोकीली संगीनों और इन्सानी जिस्मों से ओरेनबूर्ग रेलवे-लाइन की नाका-बन्दी कर दी। उसने इंजनों को ख़ामोश कर दिया और वे साइड-लाइनों पर खड़े-खड़े ज़ंग खाने लगे। तब तुर्किस्तान के जनतन्त्र में चमड़ा रंगने का काला रंगने बिल्कुल ख़त्म हो गया।

और यह ज़माना था बमों-गोलों की धांय-धांय, मार-काट और चमड़े की पोशाकों का।

लोग घरेलू आराम की बात भूल चुके थे। उन्हें सामना करना होता था गोलियों की सनसनाहट का, बरखा और चिलचिलाती धूप का, गर्मी और सर्दी का। उन्हें तन ढांपने के लिये मज़बूत पोशाक की ज़रूरत थी।

इसलिये चमड़े पर ही ज़ोर था।

सामान्यतः जाकेटों को नीलगूं काले रंग से रंगा जाता था। यह रंग उसी तरह पक्का और जानदार था जैसे कि इसके रंगे चमड़े के कपड़े पहननेवाले।

मगर तुर्किस्तान में इस काले रंग का कहीं नाम-निशान नहीं था।

इसलिये क्रान्तिकारी मुख्य कार्यालय को जर्मन रासायनिक रंगों के निजी संग्रहों पर अधिकार करना पड़ा। फ़रग़ाना घाटी की उज़्बेक औरतें इन्हीं रंगों से अपने बारीक रेशम को चमकता-दमकता रंग देती थीं। इन्हीं रंगों से

पतले-पतले होंठों वाली तुर्कमन नारियां अपने मशहूर लेकिन क़ालीनों पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे बनाती थीं।

इन्हीं रंगों से अब ताज़ा चमड़ा रंगा जाने लगा। तुर्किस्तान की लाल फ़ौज में कुछ ही दिनों में गुलाबी, नारंगी, पीला, नीला, आसमानी और हरा यानी इन्द्रधनुष के सभी रंग नज़र आने लगे।

संयोग की बात कि एक चेचकरू सप्लाईमैन ने कमिस्सार येव्स्युकोव को गुलाबी जाकेट और गुलाबी ही बिरजस दे दी।

ख़ुद येव्स्युकोव का चेहरा भी गुलाबी था और उसपर बादामी बुन्दियां थीं। रही सिर की बात तो वहां बालों के बजाय घुंघराले रोयें थे।

हम यह बात भी जोड़ देना चाहते हैं कि क़द उसका नाटा था और शरीर भारी-भरकम, बिल्कुल अंडे की शक्ल जैसा। अब यह कल्पना करना कठिन नहीं होगा कि अपनी गुलाबी जाकेट और बिरजस पहने हुए वह चलता-फिरता ईस्टर का रंगीन अंडा प्रतीत होता था।

मगर ईस्टर के अंडे के समान दिखाई देनेवाले येव्स्युकोव को न तो ईस्टर में आस्था थी और न ईसा में विश्वास।

उसे विश्वास था सोवियत में, इन्टरनेशनल, चेका ("चे" और "का" अक्षरों से आरम्भ होनेवाला एक

ग्रायोग जिसे सोवियत सत्ता ने क्रान्ति-विरोधियों और तोड़-फोड़ करनेवालों का सामना करने के लिये १९१८ में नियुक्त किया) और उस काले रंग की भारी पिस्तौल पर जिसे वह अपनी मज़बूत और खुरदरी उंगलियों में दबाये रहता था।

येव्स्युकोव के साथ जो तेईस फ़ौजी, तलवारों के जानलेवा चक्र से भाग निकले थे वे लाल फ़ौज के साधारण फ़ौजियों जैसे फ़ौजी थे, बिल्कुल मामूली लोग।

इन्हीं के साथ थी वह असाधारण लड़की मर्यूत्का।

मर्यूत्का एकदम यतीम थी। वह मछुओं की एक छोटी-सी बस्ती की रहनेवाली थी। यह बस्ती अस्त्रख़ान के निकट वोल्गा के चौड़े डेल्टा में स्थित थी जो ऊंचे-ऊंचे और घने सरकंडों के बीच छिपी हुई थी।

सात साल की उम्र से उन्नीस साल की होने तक उसका अधिकतर समय एक बेंच पर बैठे-बैठे बीता था। इस बेंच पर मछलियों की अन्तड़ियों के चिकने धब्बे पड़े हुए थे। वह कन्वास का सख़्त पतलून पहने हुए इस बेंच पर बैठी-बैठी हेरिंग मछलियों के रुपहले चिकने पेट चीरती रहती थी।

जब यह घोषणा हुई कि सभी शहरों और गांवों में लाल गार्ड भर्ती किये जा रहे हैं तो मर्यूत्का ने अचानक अपनी छुरी बेंच में घोंपी, उठी और कन्वास का सख़्त पतलून पहने हुए लाल गार्डों में अपना नाम लिखाने चल दी।

शुरू में तो उसे भगा दिया गया। मगर वह हर दिन वहां हाज़िर रहती। तब वे लोग हंस दिये और दूसरों के समान नियमों पर ही उसे भी भर्ती कर लिया। पर उससे यह लिखवा लिया कि पूंजी पर श्रम की निर्णायक जीत होने तक वह नारियों के जीवन के ढर्रे के निकट तक नहीं जायेगी।

मर्यूत्का बिल्कुल दुबली-पतली थी, नदी तट पर उगनेवाले सरकंडे की तरह। बाल उसके कुछ कुछ लालिमा लिये हुए थे। वह उन्हें सिर के चारों ओर चोटियां करके लपेट लेती और ऊपर से बादामी रंग की तुर्कमन टोपी पहन लेती। उसकी आंखें थीं बादाम जैसी तिरछी जिनमें पीली-पीली चमक और शरारत झलकती रहती।

मर्यूत्का के जीवन में सब से मुख्य चीज़ थी – सपने। वह दिन को भी सपने देखा करती। इतना ही नहीं, तुकबन्दी भी करती। काग़ज़ का जो भी छोटा-मोटा टुकड़ा हाथ लग जाता, उसी पर पेंसिल के एक छोटे-से टुकड़े से टेढ़े-मेढ़े अक्षर घसीट देती।

दस्ते के सभी लोगों को इस बात की जानकारी थी कि वह तुकबन्दी करती है। दस्ता जब कभी किसी ऐसे नगर में पहुंचता जहां से कोई स्थानीय समाचारपत्र निकलता होता तो मर्यूत्का उसके दफ़्तर में जाकर लिखने के काग़ज़ मांगती।

वह उत्तेजना से ख़ुश्क हुए अपने होंठों पर ज़बान फेरती और बड़ी मेहनत से अपनी कवितायें नक़ल करती। वह हर कविता का शीर्षक लिखती और नीचे अपने हस्ताक्षर करती – कवयित्री मरीया बासोवा।

मर्यूत्का भिन्न-भिन्न विषयों पर कविता रचती। उसकी कवितायें होतीं क्रान्ति के बारे में, संघर्ष और नेताओं के सम्बन्ध में, जिनमें लेनिन भी शामिल थे –

हम मज़दूर-किसानों के नेता
हैं लेनिन,
उनकी मूर्त्ति सजा देंगे हम
चौक में,
सुख-आराम, महल सब
ठुकराये
जो श्रम-संघर्षों से जूझे,
उनसे हाथ
मिलाये।

वह समाचारपत्र के कार्यालय में अपनी कवितायें लेकर पहुंचती। सम्पादकमंडल चमड़े की जाकेट पहने और कंधे पर बन्दूक़ उठाये हुए इस दुबली-पतली छोकरी को देखकर आश्चर्यचकित होता। सम्पादकगण उससे कवितायें लेते और पढ़ने का वचन देते।

सभी को इत्मीनान की नज़र से देखती हुई मर्यूत्का बाहर चली जाती।

सम्पादकमंडल का सेक्रेट्री ये कवितायें झपट लेता और बड़े चाव से पढ़ता। फिर क्या होता कि कंधे उसके ऊपर को उठ जाते, कांपने लगते और जब हंसी उसके रोके न रुकती तो उसकी सूरत अजीब-सी हो जाती। तब उसके सहयोगी इर्द-गिर्द जमा हो जाते और ठहाकों की गूंज के बीच सेक्रेट्री कवितायें पढ़कर सुनाता।

सेक्रेट्री के सहयोगी खिड़कियों की ओटकों पर लोट-पोट हो जाते (उस ज़माने में कार्यालय में फ़र्नीचर नहीं होता था)।

अगली सुबह को मर्यूत्का वहां फिर नमूदार होती। वह सेक्रेट्री के हंसी के कारण हिलते-कांपते चेहरे को बहुत ध्यान से देखती, अपने काग़ज़ समेटती और गुनगुनाती आवाज़ में कहती –

"मतलब यह कि छापना सम्भव नहीं? कच्ची हैं? मैं तो इन्हें रचती हूं अपना दिल काट-काटकर, बिल्कुल कुल्हाड़ी की भांति, मगर बात फिर भी बनती नहीं। ख़ैर, मैं और कोशिश करूंगी – क्या किया जाये! जाने ये इतनी मुश्किल क्यों हैं? मछली का हैज़ा!"

अपनी तुर्कमन टोपी को माथे पर नीचे की ओर खींचती हुई और कंधे झटककर वह बाहर चली जाती।

मर्यूत्का से कविता तो ऐसी-वैसी ही बन पाती, मगर उसका बन्दूक़ का निशाना बिल्कुल अचूक बैठता। अपने दस्ते में

उसकी निशानेबाज़ी का जवाब नहीं था। लड़ाई के समय वह हमेशा गुलाबी कमिस्सार के निकट रहती।

येव्स्युकोव उंगली का इशारा करके कहता –

"मर्यूत्का! वह देख! वह रहा अफ़सर!"

मर्यूत्का उधर नज़र घुमाती, होंठों पर ज़बान फेरती और इत्मीनान से बन्दूक़ उठाती। धड़ाका होता, निशाना कभी ख़ाली न जाता।

वह बन्दूक़ नीचे करती और हर गोली दागने के बाद गिनती करती हुई कहती –

"उन्तालीस, मछली का हैज़ा! चालीस, मछली का हैज़ा!"

"मछली का हैज़ा!" – यह मर्यूत्का का तकिया-कलाम था।

मां-बहन की गन्दी गालियां उसे पसन्द न थीं। लोग जब उसकी उपस्थिति में गालियां देते तो उसके माथे पर बल पड़ जाते, वह चुप रहती और उसका चेहरा तमतमा उठता।

मर्यूत्का ने भर्ती होते समय सैनिक कार्यालय में जो वचन दिया था, वह उसका कड़ाई से पालन कर रही थी। पूरे दस्ते में एक भी तो ऐसा व्यक्ति नहीं था जो मर्यूत्का का प्यार पा जाने की डींग हांक सकता।

एक रात यह घटना घटी। गूचा नाम का मगयार कुछ दिनों से मर्यूत्का की ओर ललचाई नज़रों से देखता रहा था। एक रात वह वहां पहुंच गया जहां मर्यूत्का सो रही थी।

उसके साथ बहुत बुरी बीती। मगयार जब रेंगता हुआ लौटा तो उसके तीन दांत ग़ायब थे और माथे पर एक गुमटे की वृद्धि हो गई थी। पिस्तौल के दस्ते से मर्यूत्का ने उसकी ख़बर ली थी।

सिपाही मर्यूत्का से तरह-तरह के हंसी-मज़ाक़ करते मगर लड़ाई के समय अपनी जान से कहीं अधिक उसकी जान की चिन्ता करते।

यह प्रमाण था किसी अज्ञात कोमल भावना का जो उनकी सख़्त और रंग-बिरंगी जाकेटों के नीचे उनके हृदयों की गहराई में कहीं छिपी बैठी थी। यह परिणाम था गर्म और सुखद शरीरवाली पत्नियों की विरह-पीड़ा का जिन्हें वे घर पर छोड़ आये थे।

हां तो ऐसे थे ये लोग – गुलाबी येव्स्युकोव, मर्यूत्का और तेईस सिपाही जो ओर-छोरहीन मरुस्थल की ठण्डी रेत में भाग निकले थे।

ये दिन थे फ़रवरी के, जब मौसम अपनी तूफ़ानी तानें छेड़ देता है। रेत के टीलों के बीचवाली गुफाओं में फूली-फूली बर्फ़ का क़ालीन बिछ चुका था। तूफ़ान और अन्धेरे में भी अपना सफ़र जारी रखनेवाले इन लोगों के ऊपर का आकाश गूंजता रहता, या तो चिल्लाती हवाओं से और या हवा को चीर जानेवाली दुश्मन की गोलियों से।

सफ़र जारी रखना बहुत कठिन था। पांव रेत और बर्फ़ में गहरे धंस-धंस जाते थे। भूखे ऊंट बिलबिलाते, हुंकारते और मुंह से झाग निकालते।

ज़ोर की हवा चलती और रेत लहरों की शक्ल में उड़ती, नमक के कणों की भांति चमकती। क्षितिज की रेखा सभी ओर सैकड़ों मीलों तक आकाश को पृथ्वी से अलग करती नज़र आती। यह रेखा ऐसी स्पष्ट और समान थी मानो चाक़ू से काटकर बनाई गई हो।

सच बात तो यह है कि मेरी इस कहानी में इस अध्याय की बिल्कुल ज़रूरत नहीं थी।

अच्छा तो यही होता कि मैं सीधे-सीधे मुख्य बात की चर्चा करता, उसी विषय से शुरू करता जिसका आगे चलकर उल्लेख किया गया है।

मगर अन्य बहुत-सी बातों के अलावा पाठक को यह जानने की भी ज़रूरत थी कि गूर्येव के विशेष दस्ते का जो भाग जैसे-तैसे क़रा-कुदुक कुएं से सैंतीस कोस उत्तर पश्चिम में पहुंच गया था वह कहां से आया था, क्यों उसमें एक लड़की थी और किस कारण कमिस्सार येव्स्युकोव को "गुलाबी" कहा जाता था।

चूंकि काम नहीं चल सकता इसीलिये मैंने यह अध्याय लिखा।

हां, मगर मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूं कि इसका कोई महत्त्व नहीं है।

दूसरा अध्याय जिसमें क्षितिज पर एक काला धब्बा-सा दिखाई देता है। निकट से देखने पर पता चलता है कि वह सफ़ेद गार्ड का लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूखा-ओत्रोक है

जान-गेलदी कुएं से सोई-कुदुक कुएं तक सत्तर कोस और वहां से उश्कान नामक चश्मे तक बासठ कोस का फ़ासला और था।

सकसौल के तने पर बन्दूक़ का दस्ता मारते हुए येव्स्युकोव ने ठिठुरी हुई आवाज़ में कहा –

"ठहर जाओ, रात को यहीं पड़ाव होगा।"

सकसौल की टहनियां इकट्ठी करके इन लोगों ने आग जलाई। बल खाते हुए काले शोले उठने लगे और आग के चारों ओर नमी का एक काला-सा घेरा दिखाई देने लगा।

फ़ौजियों ने अपने थैलों से चावल और चर्बी निकाली। लोहे के बड़े-से पतीले में ये दोनों चीज़ें उबलने लगीं और भेड़ की चर्बी की तेज़ गन्ध फैलनी शुरू हुई।

ये लोग आग के इर्द-गिर्द गड्ड-मड्ड हुए पड़े थे। सभी चुप्पी साधे थे और इनके दांत बज रहे थे। वे तन चीरती हुई हवा के ठण्ड झोंकों से बचने के लिये एक दूसरे से अधिकाधिक सट जाना चाहते थे। पैर गर्माने के लिये वे उन्हें

आग में घुसेड़े दे रहे थे। उनके बूटों का सख़्त चमड़ा चटक रहा था।

बर्फ़ की सफ़ेद धुंध में थके-हारे ऊंटों की घंटियों की उदास टनटनाहट गूंज रही थी।

येव्स्युकोव ने कांपती उंगलियों से सिगरेट लपेटी। धुएं का बादल उड़ाते हुए उसने कठिनाई से कहा—

"साथियो, अब यह तय करना है कि हम यहां से कहां जायेंगे।"

"हम जा ही कहां सकते हैं," आग के दूसरी ओर से एक मरी-सी आवाज़ सुनाई दी। "हर हालत में अन्त तो एक ही है—मौत। गूर्येव लौटना सम्भव नहीं—ख़ून के प्यासे कज़्ज़ाक वहां मौजद हैं और गूर्येव के सिवा कोई ऐसी जगह ही नहीं जहां जाना सम्भव हो।"

"ख़ीवा के सम्बन्ध में क्या विचार है?"

"छि! सख़्त जाड़े में क़रा-कुम के पार छः सौ कोस कैसे जाया जायेगा? खायेंगे क्या? क्या पतलूनों में जुएं पालकर खायेंगे?"

ज़ोर का ठहाका गूंजा। उसी मुर्दा आवाज़ में निराशा से भरे ये शब्द सुनाई दिये—

"एक ही अन्त है हमारा—मौत।"

गुलाबी वर्दी के नीचे येव्स्युकोव का दिल बैठ गया। मगर उसने अपनी यह हालत ज़ाहिर नहीं होने दी। उसने कड़कती आवाज़ में कहा—

"तुम, कायर! औरों को मत डराओ। मरना तो हर बेवक़ूफ़ जानता है। ज़रूरत है इस बात की कि अक़्ल से काम लेकर ज़िन्दा रहा जाये!"

"अलेक्सान्द्रोव्स्की क़िले में जाया जा सकता है। वहां हमारे ही भाई, यानी मछुए रहते हैं।"

"ऐसा करना ठीक नहीं होगा," येव्स्युकोव ने बात काटी—"मुझे सूचना मिल चुकी है देनीकिन ने अपनी फ़ौज वहां उतार दी है। क्रस्नोवोदस्की और अलेक्सान्द्रोव्स्की पर सफ़ेद फ़ौज का अधिकार है।"

कोई नींद में कराह उठा।

येव्स्युकोव ने आग से गर्म हुए अपने घुटने पर ज़ोर से हाथ मारा। फिर कड़कती हुई आवाज़ में कहा—

"यह बकवास बन्द करो! एक ही रास्ता है साथियो, अराल सागर की ओर! जैसे-तैसे अराल पहुंचेंगे, वहां सागर तट के ख़ानाबदोश किर्ग़ीज़ों के पास जाकर कुछ खायें-पियेंगे और फिर अराल का चक्कर काटकर कज़ालीन्स्क की ओर बढ़ेंगे। कज़ालीन्स्क में हमारा मुख्य फ़ौजी कार्यालय है। वहां जाना तो जैसे अपने घर जाना है।"

उसने ज़ोरदार ग्रावाज़ में यह कहा ग्रौर चुप हो गया। उसे ख़ुद भी इस बात का विश्वास नहीं था कि वे ग्रराल सागर तक पहुंच जायेंगे।

येव्स्युकोव के निकट लेटे हुए व्यक्ति ने सिर ऊपर उठाया ग्रौर पूछा –

"मगर ग्रराल तक खायेंगे क्या ?"

येव्स्युकोव ने फिर ज़ोरदार ग्रावाज़ में जवाब दिया –

"हिम्मत से काम लेना होगा। राजकुमार तो हम हैं नहीं ! तुम तो चाहते हो मज़ेदार मछली ग्रौर मधु! मगर इनके बिना ही काम चलाना पड़ेगा। ग्रभी तो चावल भी हैं, थोड़ा ग्राटा भी है।"

"तीन दिन से ग्रधिक का नहीं !"

"तो क्या हुग्रा! चेरनीश ख़लीज तक पहुंचने में दस दिन लगेंगे। हमारे पास छ: ऊंट हैं। रसद ख़त्म होते ही ऊंटों को काटना शुरू करेंगे। वैसे भी ग्रब इनसे कोई लाभ नहीं। एक ऊंट को काटेंगे ग्रौर दूसरे पर उसका मांस लादकर ग्रागे चल देंगे। बस इसी तरह मंज़िल तक पहुंचेंगे।"

ख़ामोशी छा गई। मर्यूत्का ग्राग के क़रीब लेटी हुई थी। सिर को हाथों से थामे वह ग्रपनी बिल्ली जैसी ग्रांखों से शोलों को एकटक ताके जा रही थी। येव्स्युकोव को ग्रचानक बेचैनी-सी ग्रनुभव हुई।

वह उठकर खड़ा हुग्रा ग्रौर उसने ग्रपनी जाकेट से बर्फ़ झाड़ी।

"बस, मामला तय है। मेरा आदेश है—पौ फटते ही अपनी राह चल दो। बहुत सम्भव है कि हम सब पहुंच न पायें," कमिस्सार की आवाज़ चौकन्नी हुई चिड़िया की भांति ऊंची हो गई, "मगर जाना तो हमें होगा ही... यह क्रान्ति का सवाल है साथियो... सारी दुनिया के श्रमजीवियों के लिये क्रान्ति!"

कमिस्सार ने बारी बारी से तेईस के तेईस फ़ौजियों की आंखों में झांककर देखा। वह साल भर से उनकी आंखों में जिस चमक को देखने का अभ्यस्त हो गया था, वह आज ग़ायब थी। उनकी आंखों में उदासी थी, हताशा थी। उनकी झुकी झुकी पलकों के नीचे निराशा और अविश्वास की झलक थी।

"पहले ऊंटों को, फिर एक दूसरे को खायेंगे।" किसी ने कहा।

फिर ख़ामोशी छा गई।

येव्स्युकोव अचानक औरत की भांति चीख़ उठा—

"बक-बक बन्द करो! क्रान्ति के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल गये क्या? बस ख़ामोश! हुक्म—हुक्म है! नहीं मानोगे तो गोली से उड़ा दिये जाओगे!"

वह खांसकर बैठ गया।

वह आदमी जो बन्दूक़ के गज़ से चावल हिला रहा था अप्रत्याशित ही बहुत सजीवता से कह उठा—

"नाक क्यों सुड़कते जा रहे हो? पेट में चावल भरो! बेकार ही क्या पकाये हैं मैंने! फ़ौजी कहते हो अपने को, जुएं हो जुएं!"

उन्होंने फूले-फूले और चिकने-चिकने चावलों के गोले चमचों से निकाले। इस कोशिश में कि वे ठण्डे न हो जायें उन्होंने चावलों को जल्दी से निगलकर अपने गले जला लिये। फिर भी मोम के समान ठण्डी चर्बी की मोटी सफ़ेद तह उनके होंठों पर जमी रह गई।

आग ठण्डी पड़ती जा रही थी। रात की काली पृष्ठभूमि में नारंगी रंग की चिंगारियों की बौछार हो रही थी। लोग एक दूसरे के अधिक निकट आ गये, ऊंघे, खर्राटे लेने लगे और फिर नींद में कराहने और बड़बड़ाने लगे।

मुंह अंधेरे ही किसी ने कंधा हिलाकर येव्स्युकोव को जगाया। अपनी चिपकी हुई पलकों को उसने बड़ी मुश्किल से खोला। वह उठकर बैठ गया और अभ्यासवश बन्दूक़ की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया।

"ठहरो!"

मर्यूत्का उसके ऊपर झुकी हुई थी। आंधी के नीलगूं भूरेपन में उसकी बिल्ली जैसी आंखें चमक रही थीं।

"क्या बात है?"

"साथी कमिस्सार उठो! मगर चुपचाप! जब आप

लोग सो रहे थे तब मैं ऊंट पर सवार होकर निकली। जान-गेलदी से एक क़िर्ग़ीज़ कारवां आ रहा है।"

येव्स्युकोव ने दूसरी ओर करवट ली। उसने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा—

"कैसा कारवां? क्यों झूठ बोल रही हो?"

"बिल्कुल सच.... मछली का हैज़ा, बिल्कुल सच! क़िर्ग़ीज़ हैं। चालीस ऊंट हैं!"

येव्स्युकोव उछलकर खड़ा हुआ और उसने उंगलियों से सीटी बजाई। तेईस फ़ौजियों के लिये उठना और अपने ठिठुरे हुए हाथ-पांव सीधे करना दूभर हो रहा था। पर जैसे ही उन्होंने कारवां का नाम सुना उनकी जान में जान आ गई।

बाईस फ़ौजी उठे। तेईसवां जहां का तहां लेटा रहा। वह घोड़े की छोलदारी ओढ़कर लेटा हुआ था और उसका सारा बदन कांप रहा था।

"ज़ोरों का बुख़ार," फ़ौजी के कालर के अन्दर उंगली से उसके तन को छूकर मर्यूत्का ने विश्वास के साथ कहा।

"ओह यह तो बुरा हुआ! पर किया ही क्या जा सकता है? इसे एक नमदा ओढ़ा दो और लेटा रहने दो। वापस आकर इसे सम्भाल लेंगे। हां तो किधर है कारवां?"

मर्यूत्का ने हाथ से पश्चिम की ओर संकेत किया।

"बहुत दूर नहीं! कोई छः कोस होगा। अमीर क़िर्ग़ीज़ हैं! ऊंटों पर बहुत बड़े बड़े बंडल लदे हैं!"

"अरे, अब सूरत निकल आई जीने की! बस हाथ से निकलना नहीं चाहिये। जैसे ही कारवां नज़र आये चारों ओर से घेर लो! दौड़-धूप की कुछ परवाह न करो! कुछ बायें से कुछ दायें से – बस चल दो!"

उन्होंने एक ही पंक्ति में रेत के टीलों के बीच से दायें-बायें होते हुए चलना शुरू किया। वे झुककर दोहरे हुए जा रहे थे, मगर उनमें जोश था और तेज़ चाल से उनके शरीरों में गर्मी पैदा हो रही थी।

एक टीले की चोटी से उन्हें मेज़ की तरह समतल मैदान में ऊंटों की एक क़तार दिखाई दी।

ऊंट अपने बंडलों के बोझ से दबे जा रहे थे।

"भगवान ने भेज दिया! बड़ी कृपा है उसकी!" ग्वोज़्द्योव नाम के एक चेचकरू फ़ौजी ने फुसफुसाकर कहा।

येव्स्युकोव चुप न रह सका और बिगड़ते हुए कह उठा –

"भगवान ने? कितनी बार तुम्हें बताया जा चुका है कि भगवान नाम की कोई चीज़ नहीं। हर चीज़ का एक भौतिक नियम है।"

मगर यह वाद-विवाद का समय नहीं था। हुक्म के मुताबिक़ सभी फ़ौजी हर गुफा, झाड़ियों के हर झूरमुट का उपयोग करते हुए तेज़ी से झपट चले। वे अपनी बन्दूक़ों को ऐसे कसकर थामे हुए थे कि उनकी उंगलियों

में दर्द होने लगा था। कारवां हाथ से निकल जाये, नहीं, ऐसा तो हरगिज़ नहीं होने दिया जा सकता था। इन्हीं ऊंटों के साथ तो उनकी आशायें थीं, वही तो उनके प्राण थे, उनकी रक्षा के साधन थे।

कारवां झूमता-झामता और मस्ती में चला आ रहा था। ऊंटों की पीठों पर लदे हुए रंगीन नमदे अब नज़र आने लगे थे। ऊंटों के साथ साथ गर्म लबादे पहने और भेड़ियों की खाल की टोपियां ओढ़े क़िर्ग़ीज़ चल रहे थे।

येव्स्युकोव अचानक एक टीले पर उभरा। उसकी गुलाबी वर्दी चमक रही थी। वह बन्दूक़ ताने था। उसने चिल्लाकर कहा —

"जहां के तहां रुक जाओ! अगर बन्दूक़ें हैं तो ज़मीन पर फेंक दो! कोई तमाशा नहीं करो, वरना सभी भून दिये जाओगे।"

येव्स्युकोव अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि डरे-सहमे हुए क़िर्ग़ीज़ रेत पर गिर पड़े।

तेज़ी से दौड़ने के कारण हांफते हुए लाल फ़ौज के जवान सभी ओर से कारवां की तरफ़ लपके।

"जवानो, ऊंट पकड़ लो!" येव्स्युकोव चिल्लाया।

मगर येव्स्युकोव की आवाज़ कारवां की तरफ़ से आनेवाली गोलियों की एक सधी हुई और ज़ोरदार बौछार में डूब गई।

सनसनाती हुई गोलियां मानो कुत्तों की तरह भौंक रही थीं। येव्स्युकोव की बग़ल में ही कोई हाथ फैलाकर रेत पर गिरा।

"लेट जाओ! अक़्ल ठिकाने कर दो इन शैतानों की!" एक टीले की ओट में होते हुए येव्स्युकोव ने चिल्लाकर कहा। गोलियां अधिक तेज़ी से आने लगीं।

बिठा दिये गये ऊंटों के पीछे से गोलियां आ रही थीं। गोलियां चलानेवाले नज़र नहीं आ रहे थे।

गोलियां सीधी निशाने पर आ रही थीं। क़िर्ग़ीज़ ऐसे अच्छे निशानेबाज़ नहीं होते, इसलिये यह उनका काम नहीं था।

लाल फ़ौज के लेटे हुए जवानों के चारों ओर रेत पर गोलियां बरस रही थीं। मरुस्थल गूंज रहा था। मगर धीरे-धीरे कारवां की ओर से गोलियां आनी बन्द हो गईं।

लाल फ़ौज के सिपाही छिप-छिपकर और झपटते हुए आगे बढ़ने लगे।

जब कोई तीस क़दम का फ़ासला रह गया तो येव्स्युकोव को ऊंट के पीछे फ़र की टोपी के ऊपर सफ़ेद निशानवाला सिर दिखाई दिया। उसे कंधे और कंधों पर सुनहरी फ़ीतियां भी नज़र आईं।

"मर्यूत्का! वह देख! अफ़सर!" उसने अपने पीछे रेंगकर आती हुई मर्यूत्का की ओर गर्दन घुमाकर कहा।

"देख रही हूं।"

उसने इत्मीनान से निशाना बांधा और गोली चलाई।

शायद इसलिए कि मर्यूत्का की उंगलियां बिल्कुल ठिठुरी पड़ी थीं, या इसलिए कि उत्तेजना और दौड़-धूप के कारण वह कांप रही थी, उसका निशाना चूक गया। उसने अभी "इकतालीस, मछली का हैज़ा!" कहा ही था कि ऊंट के पीछे से सफ़ेद टोप और नीले कोटवाला व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया और उसने अपनी बन्दूक़ ऊंची उठाई। बन्दूक़ की संगीन के साथ सफ़ेद रूमाल लहरा रहा था।

मर्यूत्का ने अपनी बन्दूक़ रेत पर फेंक दी और रोने लगी। वह अपने गन्दे और हवा से झुलसे हुए चेहरे पर आंसू मलती जा रही थी।

येव्स्युकोव अफ़सर की ओर दौड़ा। लाल फ़ौज का एक सिपाही येव्स्युकोव से पहले वहां जा पहुंचा और दौड़ते हुए उसने अपनी संगीन भी सीधी कर ली थी ताकि अफ़सर की छाती पर ज़ोर से प्रहार कर सके।

"मारना नहीं! ज़िन्दा पकड़ लो," कमिस्सार चिल्लाया।

नीले कोटवाले को पकड़कर ज़मीन पर गिरा दिया गया।

अफ़सर के पांच अन्य साथी ऊंटों के पीछे मरे पड़े थे।

लाल सेना के सैनिकों ने हंसते और गालियां देते हुए ऊंटों की नुकेलें पकड़ीं और उन्हें दलों में बांध दिया।

क़िर्ग़ीज, येव्स्युकोव के पीछे-पीछे हो लिये और उसकी जाकेट, कुहनी, पतलून, पेटी और तलवार आदि को छूते हुए

मिन्नत-समाजत करने और गिड़गिड़ाने लगे। उनकी आंखें दया की याचना कर रही थीं और वे तिरछी नज़र से उसके चेहरे को देख रहे थे।

कमिस्सार ने उन्हें झटककर दूर किया, उनसे दूर भागा, उन्हें डांटा-डपटा। उसने उनकी चपटी नाकों और फूले-फूले चेहरों में पिस्तौल की नली घुसेड़ी।

"रुको, दूर रहो! मिन्नत-समाजत करना बन्द करो!"

सफ़ेद दाढ़ीवाले एक बुज़ुर्ग क़िर्ग़ीज़ ने जो औरों की तुलना में अधिक अच्छे कपड़े पहने था येव्स्युकोव की पेटी पकड़ ली।

उसने फुसफुसाते और गिड़गिड़ाते हुए जल्दी-जल्दी और टूटी-फूटी रूसी में कहा—

"अरे जनाब... बहुत बुरा किया आपने... ऊंट तो क़िर्ग़ीज़ की जान होता है। ऊंट गया तो क़िर्ग़ीज़ की जान गई... अरे सरकार, ऐसा ज़ुल्म नहीं करें। रक़म चाहिये—यह हाज़िर है। चांदी के सिक्के, ज़ार के सिक्के—काग़ज़ी नोट... हुक्म कीजिये कितना चाहिये! ऊंट लौटा दीजिये।"

"अरे मूर्ख, यह क्यों नहीं समझता कि ऊंटों के बिना इस वक़्त हम भी मौत के मुंह में पहुंच जायेंगे। मैं इन्हें चुराकर थोड़े ही लिये जा रहा हूं, क्रान्ति के लिये इनकी आवश्यकता है, अस्थाई रूप से। तुम कमबख़्त तो यहां से

पैदल भी अपने घर पहुंच जाओगे, मगर हमें तो मौत का सामना करना होगा।"

"अरे सरकार, बहुत बुरा कर रहे हैं। ऊंट लौट दीजिये। माल ले लीजिये, रक़म ले लीजिये।" क़िर्गीज़ गिड़गिड़ाया।

"जहन्नुम में जाओ तुम! कह दिया और बस! बक-बक बन्द करो। यह लो रसीद और चलते-फिरते नज़र आओ!"

येव्स्युकोव ने अख़बार के एक टुकड़े पर रसीद लिखकर क़िर्गीज़ को दी।

क़िर्गीज़ ने यह रसीद रेत पर फेंक दी, गिर पड़ा और हाथों से मुंह ढांपकर रोने लगा।

बाक़ी क़िर्गीज़ चुपचाप खड़े थे। उनकी तिरछी काली आंखें कांप रही थीं और उनसे चुपचाप आंसू झर रहे थे।

येव्स्युकोव—घूमा उसे बन्दी बनाये गये अफ़सर का ध्यान आया।

वह लाल फ़ौज के फ़ौजियों के बीच घिरा हुआ था। उसके चेहरे पर इत्मीनान की झलक थी। वह फ़ेल्ट के ख़ूबसूरत स्वेडिश ऊंचे बूट पहने था और दायां पांव आगे को किये हुए शान से खड़ा था। वह सिगरेट पीता हुआ कमिस्सार को घृणा की दृष्टि से देख रहा था।

"कौन हो तुम?" येव्स्युकोव ने पूछा।

"सफ़ेद गार्ड का लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूखा-ओत्रोक। और तुम कौन हो?" अफ़सर ने धुएं का बादल उड़ाते हुए जवाब में पूछा।

और उसने अपना सिर ऊपर उठाया।

उसके सिर ऊपर उठाने पर लाल फ़ौज के सिपाहियों और येव्स्युकोव ने जब उसकी आंखें देखीं तो दंग रह गये। उसकी आंखें थीं एकदम नीली-नीली। ऐसा लगता था मानो साबून के झाग के बीच बढ़िया फ़ांसीसी नील के दो गोले तैर रहे हों।

तीसरा अध्याय जिसमें ऊंटों के बिना मध्य एशिया के मरुस्थल में यात्रा की कठिनाइयों का उल्लेख किया गया है और कोलम्बस के साथियों के अनुभव का हवाला दिया गया है

मर्यूत्का की सूची में गार्ड के लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूखा-ओत्रोक को इकतालीसवां होना चाहिये था।

मगर या तो ठण्ड के कारण या उत्तेजित होने की वजह से मर्यूत्का का निशाना चूक गया था।

इस तरह जीवित लोगों की सूची में यह लेफ़्टीनेन्ट एक अतिरिक्त संख्या था।

येव्स्युकोव के आदेशानुसार लेफ़्टीनेन्ट की तलाशी ली गई। उसकी ख़ूबसूरत जाकेट की पीठ में एक गुप्त जेब मिली।

लाल फ़ौज के आदमियों ने जब यह जेब खोज निकाली तो लेफ़्टीनेन्ट एक वहशी घोड़े की तरह उछला-कूदा। मगर उसे कसकर क़ाबू में रखा गया। उसके कांपते हुए होंठ और चेहरे का उड़ा हुआ रंग ही उसकी उत्तेजना और परेशानी को व्यक्त कर रहे थे।

येव्स्युकोव ने बहुत सावधानी से पैकेट खोला और उसके भीतर रखी हुई दस्तावेज़ को बहुत ध्यान से पढ़ा। उसने सिर हिलाया और सोच में डूब गया।

दस्तावेज़ में लिखा था कि रूस के सर्वोच्च शासक एडमिरल कोल्चाक ने गार्ड के लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूख़ा-ओत्रोक, वदीम निकोलायेविच, को जनरल देनीकिन की कस्पियन सरकार के सम्मुख अपनी ओर से प्रतिनिधित्व करने का उत्तरदायित्व सौंपा है।

पत्र में यह संकेत भी था कि लेफ़्टीनेंट को कुछ गुप्त बातें भी बताई गई हैं जो वह जनरल द्रत्सेन्को को ज़बानी बतायेगा।

येव्स्युकोव ने बड़ी सावधानी से पैकेट को लपेटकर अपनी जाकेट की भीतरवाली जेब में रखा और लेफ़्टीनेन्ट से पूछा—

"हां, तो अफ़सर साहब, क्या हैं आपकी गुप्त बातें? कुछ छिपाये बिना सब कुछ साफ़-साफ़ बता देने में ही तुम्हारी भलाई है। तुम अब लाल फ़ौज के सिपाहियों के

क़ैदी हो और मैं उनका कमांडर, कमिस्सार अर्सेन्ती येव्स्युकोव हूं।"

लेफ़्टीनेन्ट ने अपनी चंचल नीली आंखें येव्स्युकोव की ओर उठाईं।

वह मुस्कराया और खटाक-से अपनी एड़ियां बजाईं।

"बड़ी ख़ुशी हुई आपसे मिलकर, श्रीमान येव्स्युकोव। मगर अफ़सोस है कि मेरी सरकार ने आप जैसी शानदार हस्ती से कूटनीतिक बातचीत करने का अधिकार मुझे नहीं दिया है।"

येव्स्युकोव के बुन्दियों वाले चेहरे का रंग उड़ गया। पूरे दस्ते के सामने यह लेफ़्टीनेन्ट उसका मज़ाक़ उड़ा रहा था।

कमिस्सार ने पिस्तौल निकाल ली।

"सफ़ेद हरामी! बातें न बना। सीधे सीधे सब कुछ बता दे, वरना यह गोली पार हो जायेगी।"

लेफ़्टीनेन्ट ने कंधे झटके।

"बेशक तुम कमिस्सार हो, मगर हो गधे! मार भी डालोगे तो भी कुछ नहीं बताऊंगा!"

कमिस्सार ने भला-बुरा कहते हुए पिस्तौल नीची कर ली।

"मैं तुझे छठी का दूध याद करा दूंगा, कुत्ते के पिल्ले! तू अभी सब कुछ बतायेगा मुझे!" वह बड़बड़ाया।

लेफ़्टीनेन्ट पहले की भांति ही होंठ के एक कोने को दबाकर मुस्कराता रहा।

येव्स्युकोव ने थूका और वहां से हट गया।

"क्यों साथी कमिस्सार, भेज दें इसे दूसरी दुनिया में?" लाल फ़ौज के एक सिपाही ने पूछा।

कमिस्सार ने नाख़ून से अपनी नाक खुजायी।

"नहीं ... इससे काम नहीं चलेगा। वह सख़्त जान है, बहुत सख़्त। इसे जैसे-तैसे कज़ालीन्स्क पहुंचाना होगा। वहां हेड-क्वार्टर में वे इससे सब कुछ उगलवा लेंगे।"

"इसको कहां साथ-साथ लिये फिरेंगे! ख़ुद ही तो पहुंच जायें?"

"क्या सफ़ेद अफ़सरों की भर्ती शुरू कर दी अब?"

येव्स्युकोव तुनककर बोला –

"तुम्हें मतलब? मैं साथ ले चल रहा हूं, मैं ही ज़िम्मेदार हूं। बस ख़त्म।"

जब घूमा तो मर्यूत्का पर नज़र पड़ी।

"सुनो मर्यूत्का! यह अफ़सर साहब तुम्हारी देखरेख में रहेगा। देखो, अपनी आंखें खुली रखना। अगर यह भाग गया तो तुम्हारी खाल खींच लूंगा!"

मर्यूत्का ने चुपचाप बन्दूक़ कंधे पर रख ली। वह बन्दी के पास गई।

"इधर आओ तो! मेरी निगरानी में रहोगे। मगर इस भुलावे में मत रहना कि मैं औरत हूं इसलिये निकल भागोगे। तीन सौ क़दम पर भागते हुए भी तुम्हें गोली से उड़ा दूंगी। एक बार निशाना चूक गया, दोबारा ऐसा नहीं होने का, मछली का हैज़ा!"

लेफ़्टीनेन्ट ने कनखियों से मर्यूत्का को देखा। हंसी के मारे उसके कंधे हिल रहे थे। वह विधिवत झुका।

"ऐसी सुन्दरी का बन्दी होना मेरे लिये गर्व की बात है।"

"क्या? क्या बक रहे हो?" उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए मर्यूत्का ने पूछा। "हराम की खाते हो! माज़ूरका नाच नाचने के सिवा शायद कुछ भी नहीं जानते? बेकार बक-बक मत करो। ज़बान बन्द करो और चलो!"

उन्होंने एक छोटी-सी झील के किनारे रात बिताई।

बर्फ़ की तह के नीचे से खारे पानी से अयोडीन और गली-सड़ी चीज़ों की गन्ध आ रही थी।

ये लोग ख़ूब ही मज़े की नींद सोये। क़िर्ग़ीज़ों के ऊंटों से उन्होंने क़ालीन और नमदे उतारकर अपने चारों ओर लपेट लिये थे। मुर्दों की तरह सोये!

रात के वक़्त मर्यूत्का ने ऊंट की रस्सी से लेफ़्टीनेन्ट के हाथ-पैर कसकर बांध दिये। रस्सी के दूसरे सिरे को अपनी कमर से बांधकर हाथ में लपेट लिया।

सिपाहियों ने जी भरकर मज़ाक़ उड़ाया। फूली-फूली आंखों वाला सेम्यान्नी चिल्लाया—

"अरे भाइयो, मर्यूत्का ने अपने प्रेमी को जादू की डोर से बांध लिया है। अब उसे ऐसी घुट्टी पिलायेगी कि वह लट्टू हो जायेगा।"

इन मनमस्तों को घृणा की दृष्टि से देखते हुए मर्यूत्का ने कहा—

"भौंकते रहो जितना जी चाहे, मछली का हैज़ा! तुम्हें हंसी आती है ... अगर भाग गया तो?"

"उल्लू हो तुम! दो ही तो सिर हैं न उसके? इस रेगिस्तान में भला भागकर वह कहां जायेगा?"

"रेगिस्तान हो या न हो, पर इस तरह अधिक बेहतर है। सो जा तू, सूरमा!"

मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट को नमदे के नीचे धकेल दिया और ख़ुद कुछ हटकर सो गई।

नमदे का कम्बल या चादर ओढ़कर सोने में तो बहुत मज़ा आता है। नमदे से जुलाई की गर्मी, घास और दूर-दूर तक फैले हुए सीमाहीन खेतों की अनुभूति होती है। सुख-चैन की नींद में डूबा हुआ शरीर बिल्कुल गर्म और नर्म हो जाता है।

येव्स्युकोव अपने क़ालीन के नीचे खर्राटे ले रहा था। मर्यूत्का के चेहरे पर स्वप्निल-सी मुस्कान थी। लेफ़्टीनेन्ट

गोवोरूख़ा-ग्रोत्रोक चित लेटा हुग्रा गहरी नींद सो रहा था। उसके पतले-पतले होंठ एक सुन्दर रेखा वना रहे थे।

नहीं सो रहा था तो सिर्फ़ संतरी। वह नमदे के सिरे पर बैठा था ग्रौर बन्दूक़ उसके घुटनों पर रखी थी। बन्दूक़ उसे पत्नी ग्रौर प्रेयसी से भी ग्रधिक प्यारी थी।

संतरी बर्फ़ की सफ़ेद धुंध के बीच से उस तरफ़ नज़र लगाये था जिधर से ऊंटों की घंटियों की धीमी-धीमी टन-टन सुनाई दे रही थी।

चवालीस ऊंट हैं ग्रब। मंज़िल तक पहुंच ही जायेंगे, चाहे कठिनाइयों का सामना भी करना पड़े।

लाल फ़ौज के सिपाहियों के मन में ग्रब डर-संशय नहीं था।

तेज़ हवा के झोंके चीख़ते हुए ग्रा रहे थे ग्रौर संतरी के तन को चीरते चले जा रहे थे। ठण्ड से सिकुड़ते हुए संतरी ने पीठ पर नमदा लपेट लिया। बर्फ़ीली छुरियों ने उसका तन काटना बन्द कर दिया ग्रौर शरीर में गर्मी ग्रा गई।

बर्फ़, धुन्ध, रेत।

ग्रपरिचित एशियाई देश।

"ऊंट कहां हैं? तेरा बेड़ा ग़र्क़ हो, ऊंट कहां हैं? लानत है तुम पर! सो रहा है? सो रहा है, कमबख़्त? यह तू ने क्या कर डाला कमीने? तेरी चमड़ी उधेड़ डालूंगा!"

बग़ल में बूट की ज़ोरदार ठोकर लगने से संतरी का सिर चकरा उठा। वह धुंधलाई-सी नज़र से चारों ओर देखने लगा।

बर्फ़ और धुंध।

हल्का-हल्का धुंधलका, सुबह का धुंधलका। रेत।

ऊंट ग़ायब हैं।

ऊंट जहां खड़े थे वहां ऊंटों और आदमियों के पैरों के निशान थे। वहां निशान थे क़िर्ग़ीज़ों के नुक़ीले जूतों के।

लगता था कि तीन क़िर्ग़ीज़ रात भर दस्ते के पीछे पीछे लगे रहे थे और जैसे ही सन्तरी की आंख लगी थी ऊंटों को ले उड़े थे।

लाल फ़ौज के सिपाही चुपचाप खड़े थे। ऊंट ग़ायब थे। ढूंढ़ा भी जाये तो कहां? रेगिस्तान में खोज लेना सम्भव नहीं ...

"तुझ कुत्ते के पिल्ले को अगर गोली भी मार दी जाये तो वह भी कम है!" येव्स्युकोव ने संतरी से कहा।

संतरी ख़ामोश था। आंसू की बूंदें उसकी आंखों की कोरों में मोतियों की तरह जमकर रह गई थीं।

लेफ़्टीनेन्ट नमदे के नीचे से निकला। इधर-उधर देखकर उसने सीटी बजाई और मज़ाक़ उड़ाते हुए कहा—

"यह रहा सोवियत अनुशासन! भगवान ही मालिक है!"

"चुप रह पाजी!" येव्स्युकोव ग़ुस्से में गरजा और फिर पराई-सी आवाज़ में धीरे-से फुसफुसाया – "यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हो भाइयो, बढ़ चलो!"

अब केवल ग्यारह व्यक्ति एक ही पंक्ति में घसिटते हुए चल रहे थे। वे थककर चूर-चूर हुए पड़े थे और लड़खड़ाते हुए रेतीले टीलों को पार कर रहे थे।

दस सिपाही इस भयानक रास्ते में दम तोड़ चुके थे।

सुबह कोई न कोई बहुत बुरी हालत में आख़िरी बार मुंदी हुई आंखें मुश्किल से खोलता, लकड़ी की तरह सख़्त और सूजे हुए पैर फैलाता और भारी भारी आवाज़ें निकालता।

गुलाबी येव्स्युकोव, लेटे हुए इस व्यक्ति के क़रीब जाता। कमिस्सार का चेहरा अब जाकेट की तरह गुलाबी नहीं रह गया था। वह सूख गया था और दुख-मुसीबतों की छाप साफ़ नज़र आती थी। चेहरे की बुन्दियां तांबे के पुराने सिक्कों जैसी लगती थीं।

कमिस्सार इस सिपाही को ग़ौर से देखता और सिर हिलाता। फिर उसकी पिस्तौल की नली इस आदमी की चिपकी-सूखी कनपटी में एक सूराख़ कर देती। एक काला-सा और लगभग रक्तहीन धब्बा बाक़ी रह जाता।

झटपट उसपर रेत डालकर ये लोग आगे चल देते।

सिपाहियों की जाकेटें और पतलून तार-तार हो चुके थे। बूट टूटकर रास्ते में गिर गये थे। उन्होंने पैरों पर नमदे के टुकड़े और ठण्ड से सुन्न हुई उंगलियों पर चिथड़े लपेट लिये थे।

अब दस आदमी लड़खड़ाते, हवा के झोंकों में डगमगाते हुए आगे बढ़ रहे थे।

हां, एक व्यक्ति था जो बहुत शान्त भाव से तनकर चल रहा था।

यह था गार्ड का लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूखा-ओत्रोक।

लाल फ़ौज के सिपाहियों ने कई बार येव्स्युकोव से कहा –

"साथी कमिस्सार! कब तक इसे इसी तरह साथ-साथ लटकाये फिरेंगे? बेकार ही इसे भी खिलाना पड़ रहा है! फिर इसके कपड़े, इसके जूते भी बढ़िया हैं, उन्हें बांटा जा सकता है।"

मगर येव्स्युकोव ने बहुत कड़ाई से ऐसा करने से मना कर दिया।

"इसे या तो हेड-क्वार्टर में पहुंचाऊंगा या फिर ख़ुद भी इसके साथ ही ख़त्म हो जाऊंगा। वह बहुत-सी बातें बता सकता है। ऐसे आदमी को योंही ख़त्म कर देना ठीक नहीं। उसे उचित सज़ा मिलेगी।"

लेफ़्टीनेन्ट की कुहनियां रस्सी से बंधी हुई थीं और रस्सी का दूसरा सिरा मर्यूत्का की पेटी से। मर्यूत्का बहुत मुश्किल से घसिटती हुई चल रही थी। उसके रक्तहीन और सफ़ेद चेहरे पर बिल्ली जैसी पीली और चमकती हुई आंखें अब और भी अधिक साफ़ नज़र आने लगी थीं।

मगर लेफ़्टीनेन्ट बिल्कुल भला-चंगा था। हां, उसके चेहरे का रंग अवश्य कुछ फीका पड़ गया था।

येव्स्युकोव एक दिन लेफ़्टीनेन्ट के पास गया। उसने उसकी गहरी नीली आंखों में आंखें डालीं और बड़ी कठिनाई से कहा—

"शैतान ही जानता है तुझे! तू आदमी है या कुछ और? शरीर पर मांस नहीं, मगर शक्ति है दो के बराबर! कहां से आई तुझमें इतनी शक्ति?"

लेफ़्टीनेन्ट के होंठों पर सदा की सी चिढ़ानेवाली मुस्कान फैल गई। उसने शान्त भाव से जवाब दिया—

"तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी यह बात। संस्कृति का अन्तर है। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे शरीर की दासी है और मेरा शरीर मेरी आत्मा के इशारे मानता है। मैं अपने शरीर को सभी कुछ सहन करने का आदेश दे सकता हूं।"

"तो यह बात है," कमिस्सार ने शब्दों पर ज़ोर देकर कहा।

दोनों ओर रेतीली पहाड़ियां सिर उठाये खड़ी थीं – नर्म-नर्म, ढालू और लहराती हुई। इनकी चोटियों पर रेत सांपों की तरह तेज़ हवा में फनफना और लहरा रही थी। लगता था कि रेगिस्तान का कभी अन्त नहीं होगा।

जब-तब कोई न कोई दांत भींचकर रेत पर गिर पड़ता। वह हताश होकर कहता –

"अब आगे नहीं चला जाता। मुझे यहीं छोड़ दो। और हिम्मत नहीं रही।"

येव्स्युकोव उसके क़रीब जाता, डांटता-डपटता और धकेलते हुए कहता –

"चल आगे! क्रान्ति को पीठ दिखाते हुए शर्म नहीं आती?"

ये लोग जैसे-तैसे उठते। आगे चल देते। एक दिन एक सिपाही रेंगता हुआ एक पहाड़ी की चोटी पर चढ़ा, अपना सूखा हुआ सिर घुमाकर वह चीख़ उठा –

"भाइयो, अराल समुद्र!"

इतना कहकर वह मुंह के बल गिर पड़ा। येव्स्युकोव अपनी बची-खुची शक्ति समेटकर पहाड़ी पर चढ़ा। उसने अपनी फूली हुई आंखों के सामने चकाचौंध करती हुई नीलिमा देखी। उसने आंखें मूंद लीं और अपनी टेढ़ी उंगलियों से रेत खुरचने लगा।

कमिस्सार ने कोलम्बस का नाम नहीं सुना था। उसे यह भी मालूम नहीं था कि "ज़मीन!" शब्द सुनकर स्पेनी मल्लाह भी अपनी उंगलियों से इसी भांति जहाज़ के डेक को खुरचने लगे थे।

चौथा अध्याय। इसमें मर्यूत्का पहली बार लेफ़्टीनेन्ट से बातचीत करती है और कमिस्सार एक समुद्री अभियान-दल भेजता है

दूसरे दिन तट पर बसी हुई क़िर्ग़ीज़ों की एक बस्ती नज़र आई।

इसकी पहली निशानी थी उपलों के धुएं की तेज़ गन्ध जो रेतीली पहाड़ियों की ओर से आ रही थी। उनके ख़ाली पेटों में बेतहाशा चूहे दौड़ने लगे।

फिर उन्हें ख़ेमों के मटमैले गुम्बज दिखाई दिये। छोटे-छोटे कदवाले, झबरे कुत्ते भौंकते हुए उनकी तरफ़ दौड़े।

क़िर्ग़ीज़ अपने अपने ख़ेमों के दरवाज़े पर जमा हो गये। वे चलते-फिरते मानवीय पंजरों को दया और आश्चर्य की दृष्टि से देख रहे थे।

बैठी हुई नाकवाला एक बूढ़ा अपनी कूची-दाढ़ी सहलाता और फिर छाती पर हाथ फेरता हुआ बोला—

"सलाम-अलैकम। किधर जा रहे हो जवान?"

येव्स्युकोव ने धीरे से हाथ मिलाया।

"हम लाल फ़ौज के सिपाही हैं। कज़ालीन्स्क को जा रहे हैं। कृपया हमें घर ले जाकर खाना खिलाश्रो। सोवियत इसके लिये तुम्हारा श्राभार मानेगी।"

क़िर्ग़ीज़ ने श्रपनी कूची-दाढ़ी हिलाई श्रौर होंठ चबाये –

"श्ररे हुज़ूर ... लाल सिपाही। बोल्शेविक। केन्द्र से श्राये हैं?"

"नहीं बाबा। केन्द्र से नहीं, गूर्येव से श्रा रहे हैं।"

"गुर्येव से? श्ररे हुज़ूर, श्ररे हुज़ूर। क़रा-क़ुम को पार करके श्राये हैं?"

क़िर्ग़ीज़ की तिरछी श्रांखों में इस व्यक्ति के लिये श्रादर श्रौर भय की भावना चमक उठी। यह फ़रवरी महीने की बर्फ़ीली हवाश्रों से लोहा लेता हुश्रा क़रा-क़ुम का भयानक मरुस्थल पैदल पार करके गुर्येव से श्रराल सागर पहुंचा था।

बूढ़े ने ताली बजाई। कुछ श्रौरतें भागती हुई श्राईं। बूढ़े ने घरघराती श्रावाज़ में उन्हें कुछ हुक्म दिया।

उसने कमिस्सार की बांह थामी –

"चलो जवान ख़ेमे में। थोड़ा सो लो! फिर उठकर पुलाव खाना।"

सिपाही मुर्दों की तरह गुड़मुड़ होकर सोये श्रौर रात होने तक उन्होंने करवट भी न ली। क़िर्ग़ीज़ों ने पुलाव

तैयार किया और मेहमानों को खिलाया। उन्होंने सिपाहियों के कन्धों की उभरी हुई हड्डियों को सहानुभूति से थपथपाया।

"खाओ जवान, खाओ! तुम सूख गये हो! खाओ, स्वस्थ हो जाओगे!"

ये लोग खाने पर बस टूट ही पड़े। चर्बीवाले पुलाव से इनके पेट फूल गये और बहुतों की तो तबीयत भी ख़राब हो गयी। वे भागकर मैदान में जाते, गले में उंगलियां डालकर तबीयत हल्की करते और लौटकर फिर खाने लगते। अब उनके पेट भरे हुए थे, तन गर्म थे। वे फिर सो गये।

मगर मर्यूत्का और लेफ़्टीनेन्ट नहीं सोये।

मर्यूत्का अंगीठी में जलते हुए अंगारों के क़रीब बैठी थी। वह बीती हुई मुसीबतों को भूल चुकी थी।

उसने अपने थैले से पेंसिल का एक टुकड़ा निकाला और सचित्र मासिक पत्रिका 'नया ज़माना' के एक पृष्ठ पर कुछ अक्षर लिखे। यह पत्रिका उसने एक क़िर्ग़ीज़ औरत से मांग ली थी। इस पूरे के पूरे पृष्ठ पर वित्त मन्त्री काउन्ट कोकोवत्सेव का चित्र अंकित था। मर्यूत्का ने काउंट के चौड़े माथे और सुनहरी दाढ़ी पर टेढ़े-मेढ़े अक्षर लिखे।

रस्सी अभी भी मर्यूत्का की कमर में बंधी थी और उसका दूसरा सिरा पीठ पर बंधे हुए लेफ़्टीनेन्ट के हाथों से कसकर बंधा हुआ था।

मर्यूत्का ने केवल एक घण्टे के लिये लेफ़्टीनेन्ट के हाथ खोले थे ताकि वह पुलाव खा सके। इसके बाद उसने लेफ़्टीनेन्ट के हाथ फिर कसकर बांध दिये।

लाल फ़ौज के सिपाही मज़ाक़ उड़ाते—

"बिल्कुल ऐसे जैसे ज़ंजीर में कुत्ता बंधा हो!"

"मर्यूत्का, लगता है कि तुम तो दिल दे बैठी हो? बांधकर रखो अपने प्रियतम को। कहीं ऐसा न हो कि परी देश की कोई राजकुमारी उड़न-खटोले पर उड़ती हुई आये और तुम्हारे साजन को उड़ा ले जाये।"

मर्यूत्का चुप्पी साधे रहती।

लेफ़्टीनेन्ट ख़ेमे की एक चोब से टेक लगाये बैठा था। उसकी चंचल नीली आंखें धीरे-धीरे हिलने-डुलनेवाली पेंसिल को बहुत ध्यान से देख रही थीं।

आगे की ओर झुकते हुए उसने पूछा—

"क्या लिख रही हो?"

मर्यूत्का ने अपनी लटकती हुई सुनहरी ज़ुल्फ़ के बीच से उसपर नज़र डाली और कहा—

"तुम्हें मतलब?"

"शायद तुम पत्र लिखना चाहती हो? तुम बोलती जाओ, मैं लिख दूंगा।"

मर्यूत्का ज़रा हंस दी।

"बहुत चालाक बनते हो! मतलब यह कि तुम्हारे हाथ खोल दूं, तुम मुझे एक हाथ जमाओ और नौ दो ग्यारह हो जाओ! ऐसी बुद्धू न समझो तुम मुझे! तुम्हारी मदद की मुझे ज़रूरत नहीं। मैं ख़त नहीं, कविता लिख रही हूं।"

लेफ़्टीनेन्ट की पलकें आश्चर्य से फैल गईं। उसने चोब से पीठ हटाई –

"क-वि-ता? तुम कविता लिखती हो?"

मर्यूत्का ने पेंसिल से लिखना बन्द कर दिया और शर्म से लाल हो गई।

"घूर क्या रहे हो? हैं? तुम क्या समझते हो कि बस तुम ही बड़े हज़रत हो जो माजूर्का नाच नाचना जानते हो और यह कि मैं एक बेवक़ूफ़ देहाती लड़की हूं! तुम से ज़्यादा बेवकूफ़ नहीं हूं!"

"मैं तुम्हें बेवक़ूफ़ नहीं समझता हूं। सिर्फ़ हैरान हो रहा हूं। कविता करने का भला आजकल कौनसा ज़माना है?"

मर्यूत्का ने अपनी पेंसिल एक ओर रख दी और झटके के साथ सिर ऊपर उठाया। उसके हल्के लाल रंग के बाल कंधे पर फैल गये।

"सचमुच बड़े ही अजीब आदमी हो तुम! तुम शायद यही समझते हो कि पंखों के नर्म-नर्म बिस्तर पर

लेटकर ही कविता रची जा सकती है? पर अगर मेरी आत्मा बेक़रार हो कविता करने को तो? कैसे हमने भूखे पेट और ठण्ड से ठिठुरते हुए रेगिस्तान पार किया, मैं इसे शब्दों में व्यक्त करने के सपने देखती हूं। काश, मैं लोगों के दिलों तक अपनी बात पहुंचा सकती! मैं तो अपने दिल के ख़ून से कविता रचती हूं, मगर कोई छापता ही नहीं। मैं बस जमा करती जाती हूं। लोक कहते हैं कि मुझे पढ़ना चाहिये। मगर आजकल पढ़ने का वक़्त ही कहां है? मैं तो सीधे-सीधे ढंग से अपने मन की बात लिखती हूं!"

लेफ़्टीनेन्ट ज़रा-सा मुस्कराया।

"सुनाओ तो! बहुत जिज्ञासा है मुझे। मैं कविता को थोड़ा-बहुत समझता हूं।"

"तेरी समझ में नहीं आयेगी यह। तुम्हारी नसों में अमीरों का ख़ून है, बहुत चिकना-चिकना। तुम फूलों और सुन्दरियों के बारे में रची गई कवितायें पसन्द करते हो और मैं लिखती हूं ग़रीबों के बारे में, क्रान्ति के सम्बन्ध में,"—मर्यूत्का ने दुखी होते हुए कहा।

"समझूंगा क्यों नहीं?"—लेफ़्टीनेन्ट ने जवाब दिया। "बहुत सम्भव है कि उनकी विषय-वस्तु मेरे लिए परायी हो, मगर आदमी, आदमी को समझ तो सकता ही है!"

मर्यूत्का ने कुछ झिझकते हुए कोकोवत्सेव का चित्र उल्टा और आंखें झुका लीं।

"ख़ैर, चाहते हो तो सुनो! मगर हंसना नहीं। तुम्हारे बाप ने तो बीस साल की उम्र तक तुम्हारी देखभाल के लिए धाय रख छोड़ी होगी, मगर मुझे तो अपनी हिम्मत से इस उम्र तक पहुंचना पड़ा था।"

"नहीं हंसूंगा! क़सम खाता हूं।"

"तो सुनो! मैंने सब कुछ ही कविता में लिख डाला है। कैसे हम कज़्ज़ाकों से जूझे, कैसे बचकर रेगिस्तान में पहुंचे।"

मर्यूत्का ने खांसकर गला साफ़ किया। उसने नीची आवाज़ में शब्दों पर ज़ोर दे देकर कविता-पाठ शुरू किया। वह भयानक ढंग से अपनी आंखें नचा रही थी।

आये, आये हम पर कज़्ज़ाक चढ़कर
लिया हमने उनसे लोहा डटकर
दुश्मनों की संख्या थी भारी।
हमने बाज़ी जीती, पर हारी॥
रखकर हथेली पर जान हम लड़े।
थोड़े थे बहुत हम, फिर भी अड़े॥
तेईस हम बचे, और गये मारे!
मोर्चे से हम हटे, बेचारे॥

"बस इससे आगे यह कविता किसी तरह चल ही नहीं पा रही, मछली का हैज़ा! समझ में नहीं आता कि ऊंटों की चर्चा कैसे करूं?" मर्यूत्का ने परेशान होते हुए कहा।

लेफ़्टीनेन्ट की नीली आंखें तो छाया में थीं। केवल आंखों की सफ़ेदी पर अंगीठी की चमकती आग की झलक पड़ रही थी। उसने कुछ देर बाद कहा—

"हां ... ख़ासी अच्छी है! बहुत-सी अनुभूतियां हैं, भावनायें हैं। समझी न? साफ़ पता चलता है कि दिल की गहराई से निकली पंक्तियां हैं।" इतना कहने के बाद उसका सारा शरीर एकबारगी हिला और हिचकी की सी आवाज़ हुई। उसने मानो इस आवाज़ को छिपाते हुए जल्दी से कहा—"देखो बुरा न मानना, मगर कविता के रूप में बहुत कमज़ोर हैं ये पंक्तियां। इन्हें मांजने की ज़रूरत है, इनमें कला की कमी है।"

मर्यूत्का ने उदासी से काग़ज़ अपने घुटनों पर गिरा दिया। वह चुपचाप ख़ेमे की छत ताकने लगी। फिर उसने कंधे झटके।

"मैं भी तो यही कहती हूं कि इसमें भावनायें हैं। जब मैं अपनी भावनायें व्यक्त करती हूं तो मेरे अन्तर की हर चीज़ सिसकने लगती है। रही यह बात कि इन्हें मांजा नहीं गया तो सभी जगह यही सुनने को मिलता है, बिल्कुल इसी तरह जैसे तुमने कहा है—'आपकी कविताओं में

मंजाव नहीं, छापा नहीं जा सकता।' मगर इन्हें मांजा कैसे जाये? क्या गुर है इसका? आप पढ़े-लिखे आदमी हैं, शायद आपको यह गुर मालूम होगा?"

मर्यूत्का भावावेश में लेफ़्टीनेन्ट को आप तक कह गई।

लेफ़्टीनेन्ट कुछ देर चुप रहा और फिर बोला—

"मुश्किल है इस सवाल का जवाब देना। कविता रचना तो, देखो न, एक कला है। हर कला के लिये अध्ययन ज़रूरी है। हर कला के अपने नियम, अपने क़ानून होते हैं। मिसाल के तौर पर अगर इंजीनियर को पुल बनाने के सभी नियम मालूम न हों तो वह या तो पुल बना ही नहीं पायेगा या फिर ऐसा निकम्मा पुल बनायेगा जो किसी काम-काज का नहीं होगा।"

"यह तो पुल की बात हुई। इसके लिये तो हिसाब और समझ-बूझ की दूसरी बहुत-सी बातों की जानकारी ज़रूरी है। मगर कविता तो मेरे मन में बसी है, जन्मजात है। हो सकता है कि यह प्रतिभा ही हो?"

"प्रतिभा हो तो भी क्या बात है? अध्ययन से प्रतिभा का भी विकास होता है। इंजीनियर इसीलिये इंजीनियर है, डाक्टर नहीं कि उसमें जन्म से ही इंजीनियरिंग की ओर रुझान था। लेकिन अगर वह पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी न लेता तो उसका कुछ भी न बनता-बनाता।"

"अच्छा? हां, ऐसा ही लगता है, मछली का हैज़ा! लड़ाई ख़त्म होते ही ऐसे स्कूल में भर्ती हो जाऊंगी जहां कविता लिखना सिखाते हैं। ऐसे स्कूल भी तो होते होंगे न?"

"शायद होते ही होंगे,"—लेफ़्टीनेन्ट ने सोचते हुए कहा।

"ज़रूर जाऊंगी ऐसे स्कूल में पढ़ने। कविता तो मेरा जीवन बनकर रह गई है। मेरी आत्मा तड़पती है अपनी कविताओं को किताब के रूप में छपा हुए देखने को और बेचैन रहती है हर कविता के नीचे 'मरीया बासोवा' यह नाम देख पाने को।"

अंगीठी बुझ चुकी थी। अन्धेरे में ख़ेमे से टकराती हुई हवा की सरसराहट सुनाई दे रही थी।

"सुनो तो," मर्यूत्का ने अचानक कहा। "रस्सी से तो तुम्हारे हाथों में दर्द होता होगा न?"

"नहीं, बहुत तो नहीं। थोड़े, सिर्फ़ थोड़े सुन्न हो गये हैं।"

"अच्छा देखो, तुम क़सम खाओ कि भागोगे नहीं। मैं तुम्हारे हाथ खोल दूंगी।"

"मैं भागकर जा ही कहां सकता हूं? रेगिस्तान में ताकि गीदड़ मुझे नोच खायें। मैं ऐसा बेवक़ूफ़ नहीं हूं।"

"ख़ैर फिर भी क़सम खाओ। दोहराओ मेरे पीछे-पीछे ये शब्द—'अपने अधिकारों के लिये लड़नेवाले

सर्वहारा की क़सम खाकर लाल फ़ौजी मरीया बासोवा से कहता हूं कि मैं भागना नहीं चाहता हूं।'"

लेफ़्टीनेन्ट ने क़सम दोहराई।

मर्यूत्का ने रस्सी की गांठ ढीली कर दी, फूली हुई कलाइयों को निजात मिली। लेफ़्टीनेन्ट ने आराम से अपनी उंगलियां हिलाईं-डुलाईं।

"अच्छा, अब सो जाओ," मर्यूत्का ने जम्हाई ली। "अब भी अगर भागोगे तो दुनिया में सबसे कमीने आदमी होगे। यह लो, नमदा, ओढ़ लो।"

"धन्यवाद, मैं अपना कोट ओढ़ लूंगा। शुभ रात्रि, मरीया ..."

"मरीया फ़िलातोव्ना," मर्यूत्का ने बड़े गर्व से लेफ़्टीनेन्ट को अपना पूरा नाम बताया और नमदे के नीचे दुबक गई।

येव्स्युकोव को हेड-क्वार्टर तक अपनी ख़बर पहुंचाने की जल्दी पड़ी थी।

मगर बस्ती में कुछ दिनों तक आराम करना, ठिठुरन से छुट्टी पाना और पेट भर कर खाना ज़रूरी था। एक सप्ताह बाद उसने तट के साथ-साथ चलते हुए अराल्स्क की बस्ती तक पहुंचने और फिर वहां से कज़ालीन्स्क जाने का निर्णय किया।

दूसरे सप्ताह में कमिस्सार को उधर से गुज़रनेवाले क़िर्ग़ीज़ों की ज़बानी यह मालूम हुआ कि पतझर के तूफ़ान ने किसी मछुए की नाव को चार कोस की दूरी पर एक खाड़ी में ला पटका है। क़िर्ग़ीज़ों ने बताया कि नाव बिल्कुल सही-सलामत है। वह बिना किसी दावेदार के ऐसे ही पड़ी है और मछुए सम्भवत: डूब गये हैं।

कमिस्सार नाव को देखने गया।

नाव लगभग नई थी, शाह-बलूत की मज़बूत पीली लकड़ी की बनी हुई। तूफ़ान से उसको कोई हानि नहीं पहुंची थी। केवल पाल फट गया था और पतवार टूट गई थी।

येव्स्युकोव ने लाल फ़ौज के सिपाहियों से सलाह-मशविरा किया। उसने समुद्र के रास्ते सिर-दरिया के दहाने तक तत्काल एक टोली भेजने का फ़ैसला किया। नाव में आसानी से चार आदमी बैठ सकते थे और थोड़ी रसद भी भेजी जा सकती थी।

"ऐसा करना बेहतर होगा," कमिस्सार ने कहा। "इस तरह क़ैदी को जल्दी से वहां पहुंचाया जा सकेगा। कौन जाने पैदल सफ़र में क्या हो जाये! इसे हेड-क्वार्टर तक पहुंचाना ज़रूरी है। दूसरे हेड-क्वार्टर को हमारी ख़बर मिल जायेगी। वहां से घुड़सवारों के ज़रिये हमें कपड़े और कुछ दूसरी चीज़ें मिल जायेंगी।"

अनुकूल हवा होने पर तो नाव द्वारा तीन-चार दिनों में अराल को पार करके पांचवें दिन कज़ालीन्स्क पहुंचा जा सकता है।

येव्स्युकोव ने रिपोर्ट लिखकर तैयार की। लेफ़्टीनेन्ट से हासिल हुई दस्तावेज़ के साथ उसने उसे कन्वास के एक थैले में सी दिया। यह दस्तावेज़ वह हर समय अपनी जाकेट की अन्दरवाली जेब में सम्भालकर रखता था।

क़िर्ग़ीज़ नारियों ने पाल की मरम्मत की और स्वयं कमिस्सार ने टूटे हुए तख़्तों से पतवार बनाई।

फ़रवरी की एक ठण्डी सुबह थी। विस्तृत और समतल नीली सतह पर नीचा सूरज पालिश किये हुए पीतल के थाल की तरह लटक रहा था। कई ऊंट नाव को घसीटकर बर्फ़ की सीमा तक लाये।

उन्होंने नाव को खुले समुद्र में डाला और मुसाफ़िर इसपर सवार हुए।

येव्स्युकोव ने मर्यूत्का से कहा—

"तुम इस दल की नेत्री होगी। तुमपर सारी ज़िम्मेदारी होगी। इस अफ़सर का ध्यान रखना। अगर यह निकल भागा तो तुम्हारे जीने पर लानत। इसे ज़िन्दा या मुर्दा हेड-क्वार्टर तक पहुंचाना ही है। अगर कहीं सफ़ेद गार्डों के हत्थे चढ़ जाओ तो इसे ज़िन्दा मत रहने देना। अच्छा जाओ!"

पांचवां अध्याय। यह सारा अध्याय डान्याल डेफ़ो के उपन्यास 'राबिनसन क्रूसो' से चुराया गया है। हां, इतना अन्तर अवश्य है कि इसमें राबिनसन को फ़ायडे के लिये बहुत देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है

अराल दिलचस्प सागर नहीं है।

तट एकदम सपाट हैं जिनपर झाड़ियां उगी हुई हैं, रेत और रेत की चलती-फिरती पहाड़ियां हैं।

अराल के द्वीप कड़ाही में रखे समोसों की तरह नज़र आते हैं। वे ऐसे सपाट हैं मानो उनपर पालिश कर दी गई हो। वे एकदम निर्जीव प्रतीत होते हैं।

यहां न हरियाली है, न परिन्दे और न कोई दूसरे जीव-जन्तु। इन्सान यहां सिर्फ़ गर्मियों में नज़र आते हैं।

अराल का सबसे बड़ा द्वीप है बारसा-केलमेस।

इसका क्या मतलब है, कोई नहीं जानता। मगर क़िर्ग़ीज़ इसका अर्थ "इन्सान की मौत" बताते हैं।

गर्मियों में अराल्स्क की बस्ती से मछुए इस द्वीप पर आते हैं। बारसा-केलमेस में ख़ूब मछलियां हाथ आती हैं, समुद्र मछलियों से अटा पड़ा रहता है।

मगर पतझर में जैसे ही समुद्र की सतह पर सफ़ेद झाग की टोपियां नज़र आने लगती हैं, मछुए अराल्स्क बस्ती की शान्त खाड़ी में लौट जाते हैं और फिर वसन्त तक वहां नज़र नहीं आते।

अगर तूफ़ान शुरू होने के पहले-पहले मछुए सारी मछलियां तट तक ले जाने में सफल नहीं हो जाते तो वे जाड़े भर के लिये नमक लगी मछलियां लकड़ी के बाड़ों में द्वीप पर ही छोड़ देते हैं।

सख़्त जाड़े में जब समुद्र चेर्नीशोव खलीज से बारसा द्वीप तक जम जाता है तो गीदड़ों की तो ख़ूब बन आती है। वे दौड़ते हुए द्वीप पर पहुंचते हैं और नमकीन मछलियां इतनी अधिक मात्रा में खाते हैं कि उनके लिये हिलना-डुलना भी मुश्किल हो जाता है और वहीं मर जाते हैं।

वसन्त आता है तो सिर-दरिया की पीली बाढ़ बर्फ़ की चादर को तोड़ती है। तब मछुए द्वीप पर लौटते हैं। मगर पतझर में वहां छोड़ी हुई मछलियां ग़ायब पाते हैं।

नवम्बर से फ़रवरी तक इस समुद्र में बड़ी हलचल रहती है सभी ओर ज़ोरों के तूफ़ान आते हैं। बाक़ी समय में थोड़ी हवा चलती है और गर्मियों में अराल सागर दर्पण की तरह शान्त और समतल हो जाता है।

अराल ऊब पैदा करनेवाला समुद्र है।

अराल में केवल एक ही दिलकश चीज़ है – उसकी नीलिमा, असाधारण नीलिमा।

गहरी नीलाहट, मख़मली-मुलायम नीलाहट, अथाह नीलिमा।

भूगोल की सभी पुस्तकों में इसी तरह से वर्णन किया गया है इस सागर का।

मर्यूत्का और लेफ़्टीनेन्ट को रवाना करते हुए कमिस्सार को यह आशा थी कि आगामी सप्ताह में मौसम शान्त रहेगा। बस्ती के क़िर्ग़ीज़ बुज़ुर्गों ने भी यही कहा था कि शान्त मौसम के चिह्न हैं।

इस तरह मर्यूत्का, लेफ़्टीनेन्ट और दो सिपाहियों—सेम्यान्नी और व्याख़िर—को समुद्री रास्ते से कज़ालीन्स्क की ओर ले जानेवाली नाव अपने सफ़र पर रवाना हो गई। सेम्यान्नी और व्याख़िर का चुनाव इसलिये किया गया था कि उन्हें नौ-चालन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी थी।

अनुकूल हवा से पाल फूल रहा था, पानी में प्यारी-प्यारी लहरियां पैदा हो रही थीं। पतवार की छपछप लोरियां दे रही थी। नाव के दोनों ओर गाढ़ा-गाढ़ा फेन पैदा हो रहा था।

मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट के हाथ बिल्कुल खोल दिये। नाव से भला वह कहां भागकर जायेगा? लेफ़्टीनेन्ट अब नाव चलाने में सेम्यान्नी और व्याख़िर का हाथ बंटाने लगा।

वह ख़ुद अपने को क़ैदख़ाने की तरफ़ ले जा रहा था।

जब उसकी बारी न होती तो वह नमदा ओढ़कर नाव के तल में जा लेटता। किन्हीं गुप्त-गहरे रहस्यों का ध्यान

करके जिन्हें उसके सिवा कोई दूसरा नहीं जानता था, वह मुस्कराता रहता।

मर्यूत्का उसके इस अन्दाज़ से परेशान हो उठती।

"क्यों यह हर समय दांत निकालता रहता है? जैसे कि अपने घर को जा रहा हो। उसका अन्त तो बिल्कुल स्पष्ट है—हेड-क्वार्टर में पहुंचेगा, वहां उससे पूछ-ताछ होगी और उसके बाद खेल ख़त्म। ज़रूर इसके पेच कुछ ढीले हैं!"

मगर लेफ़्टीनेन्ट मर्यूत्का के विचारों से बिल्कुल अनजान पहले की तरह मुस्कराता रहा।

मर्यूत्का जब सब्र न कर पाई तो उसने पूछ ही लिया—

"तुमने नाव चलाना कहां सीखा?"

गोवोरूखा-ओत्रोक ने सोचकर जवाब दिया—

"पीटर्सबर्ग में... मेरा अपना यॉट था... बड़ा-सा। मैं उसमें समुद्र में जाता था।"

"यह यॉट क्या बला होता है?"

"ऐसा... पालवाला बजरा।"

"ओह! ऐसे बजरे से तो मैं अच्छी तरह परिचित हूं। अस्त्रख़ान के क्लब में बुर्जुवा लोगों के ऐसे बहुत-से बजरे मैंने देखे हैं। ढेरों थे उनके पास! सभी हंसों की तरह सफ़ेद और ख़ासे बड़े-बड़े। मगर मेरा सवाल दूसरा था। क्या नाम था उसका?"

"नेल्ली।"

"यह क्या नाम हुग्रा?"

"मेरी बहन का नाम था यह। उसी के नाम पर मैंने यॉट का नाम रखा था।"

"ईसाइयों के तो ऐसे नाम नहीं होते।"

"उसका नाम तो था येलेना... मगर अंग्रेज़ी ढंग से – नेल्ली।"

मर्यूत्का चुप हो गई। वह सफ़ेद सूरज को देखने लगी जिसकी ठण्डी ग्रौर सफ़ेद मिठास हर चीज़ को मधुमय बना रही थी। वह पानी की नीलिमा को ग्रपनी बांहों में कसने को नीचे उतर रहा था।

मर्यूत्का ने फिर बात चलाई –

"यह पानी, कितना नीला है! कास्पियन का पानी हरा है। ग्रौर यहां देखो तो कैसा नीला है!"

लेफ़्टीनेन्ट ने कुछ ऐसे जवाब दिया मानो ग्रपने से बात कर रहा हो, ख़ुद ही को जवाब दे रहा हो –

"फ़ोरेल के ग्रनुसार इसका लगभग तीसरा नम्बर है।"

"क्या?" मर्यूत्का चौंककर उसकी ग्रोर घूमी।

"यह तो मैं ग्रपने से ही कुछ कह रहा था। पानी के बारे में। मैंने हाइड्रोग्राफ़ी की एक किताब में पढ़ा था कि इस समुद्र का पानी बहुत चमकता हुग्रा नीला है। फ़ोरेल नामक एक वैज्ञानिक ने विभिन्न समुद्रों के पानी की एक तालिका

बनाई है। सबसे अधिक नीला पानी शान्त महासागर का है। इस तालिका के अनुसार इस समुद्र का स्थान तीसरा है।"

मर्यूत्का ने अपनी आंखें कुछ मूंद लीं मानो पानी की नीलिमा व्यक्त करनेवाली तालिका को अपनी कल्पना में देख रही हो।

"बहुत ही नीला है यह पानी। किसी दूसरी चीज़ से इसकी तुलना करना सम्भव नहीं। यह ऐसा नीला है जैसे कि..." अचानक उसकी बिल्ली जैसी पीली आंखें लेफ़्टीनेन्ट की नीली आंखों पर जमकर रह गईं। वह आगे को झुकी, उसका पूरा शरीर इस तरह सिहरा मानो उसने असाधारण बात खोज ली हो। उसके होंठ आश्चर्य से खुले रह गये। वह फुसफुसाई–"ऊई मां! तुम्हारी आंखें भी तो बिल्कुल ऐसी ही नीली हैं, इस पानी जैसी! यही तो मैं सोच रही थी कि इनमें कोई जानी-पहचानी चीज़ है। मछली का हैज़ा!"

लेफ़्टीनेन्ट ख़ामोश रहा।

क्षितिज नारंगी रंग में डूब गया। दूरी पर पानी में काले धब्बे नज़र आ रहे थे। बर्फ़ीली हवा सागर की सतह में हलचल पैदा करने लगी थी।

"पूर्वी हवा है," सेम्यान्नी ने अपनी फटी वर्दी को लपेटते हुए कहा।

"शायद तूफ़ान आयेगा," व्याख़िर बोला।

"आता है तो आये। दो घण्टे और नाव चलायेंगे तो बारसा नज़र आने लगेगा। तेज़ हवा चलेगी तो रात को वहीं ठहर जायेंगे।"

चुप्पी छा गई। उठती हुई काली-काली लहरों पर नाव हिचकोले खाने लगी।

आकाश में बड़े-बड़े काले बादल दिखाई देने लगे।

"बेशक ऐसा ही है। तूफ़ान आ रहा है।"

"बारसा द्वीप जल्द ही नज़र आयेगा। बाईं ओर को होगा वह। अजीब ऊल-जलूल जगह है यह बारसा भी। उसपर जहां भी चाहे चले जाओ, सभी जगह रेत ही रेत है। बस हवा फर्राटे भरती रहती है... अरे पाल को ढीला करो, जल्दी करो! यह तुम्हारे जनरल का पतलून नहीं है!"

लेफ़्टीनेन्ट समय पर पाल ढीला न कर पाया। नाव ने एक पहलू से पानी में धचका खाया और फेन ने मुसाफ़िरों के चेहरों पर अपना हाथ जमाया।

"मुझ पर क्यों बरस रहे हो? मरीया फ़िलातोव्ना से भूल हो गयी थी।"

"मुझ से भूल हुई? क्या कह रहे हो, मछली का हैज़ा! पांच साल की उम्र से पतवार पर मेरा हाथ रहा है!"

ऊंची-ऊंची काली लहरें नाव का पीछा कर रही थीं। वे मुंह फाड़े हुए अजगरों जैसी दिखाई दे रही थीं। वे नाव के पहलुओं पर टूटी पड़ रही थीं।

"हाय मां! कब आयेगा यह कम्बख़्त बारसा! अन्धरा कैसा है, हाथ को हाथ नहीं सूझता।"

व्याख़िर ने बाईं ओर नज़र दौड़ाई। वह ख़ुशी से चिल्ला उठा—

"वह रहा, वह रहा, कम्बख़्त कहीं का!"

झाग और धुंध के बीच एक सफ़ेद तट-रेखा साफ़ चमक रही थी।

"ज़ोर लगाकर बढ़ाओ तट की ओर," सेम्यान्नी चिल्लाया। "भगवान ने चाहा तो वहां पहुंच जायेंगे!"

नाव के पिछले हिस्से चरचराये, बल्लियां भी कराहीं। एक लहर तो उछलकर नाव के पहलू से भीतर आ घुसी और मुसाफ़िर टखनों-घुटनों तक पानी में डूबे।

"पानी निकालो!" मर्यूत्का उछलकर खड़ी हो गई और चिल्लाई।

"पानी निकालो? मगर किससे, अपने सिर से!"

"टोपियों से!"

सेम्यान्नी और व्याख़िर ने झटपट टोपियां उतारीं और तेज़ी से पानी निकालने लगे।

लेफ़्टीनेन्ट घड़ी भर को हिचका, फिर उसने भी अपनी फ़र की टोपी उतारी और पानी निकालने में उनका साथ देने लगा।

वह नीची और सफ़ेद तट-रेखा तेज़ी से नाव के निकट आ रही थी। वह बर्फ़ से ढके हुए तट जैसी लग रही थी। उबलते हुए फेन के कारण वह और भी अधिक सफ़ेद दिखाई दे रही थी।

हवा गरजती और फुंकारती हुई आती और लहरों को और ऊंचा उठा देती।

एक तूफ़ानी झोंका पाल पर झपटा जो तोंद की तरह बाहर को निकल पड़ा।

कन्वास का पुराना पाल तोप के गोले की तरह फटा।

सेम्यान्नी और व्याख़िर मस्तूल की तरफ़ भागे।

"रस्से को थामो," पतवार पर पूरी तरह झुकते हुए मर्यूत्का चिल्लाई।

हहराती और गरजती हुई एक बड़ी लहर पीछे की ओर से आई। नाव पहलू के बल हो गई और ठण्डी-ठण्डी तथा चमकती हुई मोटी-सी धार इसके ऊपर से गुज़र गई।

नाव जब सीधी हुई तो ऊपर तक पानी से भरी हुई थी और सेम्यान्नी और व्याख़िर का कहीं अता-पता नहीं था। पानी से सराबोर और फटे हुए पाल के टुकड़े हवा में लहरा रहे थे।

लेफ़्टीनेन्ट कमर-कमर तक पानी में बैठा हुआ अपने ऊपर जल्दी-जल्दी सलीब बना रहा था।

"शैतान! लानत तुझ पर! पानी निकाल!" मर्यूत्का ने अपने जीवन में पहली बार बहुत-सी मोटी-मोटी और भद्दी गालियां दीं।

लेफ़्टीनेन्ट भीगे पिल्ले की तरह उछलकर खड़ा हो गया और पानी बाहर निकालने लगा।

मर्यूत्का रात के अन्धकार, शोर और हवा में पुकार रही थी –

"से-म्या-आ-न्नी-ई! व्या-आ-ख़ि-इर!"

फेन का थपेड़ा मुंह पर लगा। कोई जवाब नहीं मिला।

"डूब गये, शैतान!"

हवा ने तूफ़ान की लपेट में आई हुई नाव को तट की ओर धकेल दिया। इर्द-गिर्द का पानी तो जैसे उबल रहा था। पीछे से एक और लहर आई और नाव की तह ज़मीन से जा टकराई।

"चलो बाहर!" नाव से बाहर छलांग लगाते हुए मर्यूत्का चिल्लाई। लेफ़्टीनेन्ट उसके पीछे-पीछे कूदकर बाहर आ गया।

"नाव को घसीट लो।"

पानी के ज़ोरदार छींटे और थपेड़े आंखों को चकाचौंध कर रहे थे। ऐसे में उन्होंने नाव को रस्से से बाहर खींचा। वह रेत में मज़बूती से जम गई। मर्यूत्का ने बन्दूक़ें सम्भालीं।

"रसद के बोरे निकाल लाओ!"

लेफ़्टीनेन्ट ने चुपचाप मर्यूत्का का हुक्म बजाया। ख़ुश्क जगह देखकर मर्यूत्का ने बन्दूकें रेत पर डाल दीं। लेफ़्टीनेन्ट ने बोरे रख दिये।

मर्यूत्का ने एक बार फिर अन्धकार में पुकारा–

"सेम्या-न्नी! व्याख़ि-इर!"

कोई जवाब नहीं मिला।

मर्यूत्का बोरों पर बैठकर औरतों की तरह रो पड़ी।

लेफ़्टीनेन्ट उसके पीछे खड़ा था। उसके दांत बज रहे थे।

उसने अपने कंधे झटके और मानो हवा से कहा–

"बेड़ा ग़र्क़! यह तो बिल्कुल कहानी ही है! राबिनसन क्रूसो और फ़ायडे की।"

छठा अध्याय। दूसरी बातचीत की रिपोर्ट और इस बात का स्पष्टीकरण कि शून्य से दो दर्जे ऊपर सेन्टीग्रेड वाले समुद्र के पानी में नहाने से क्या हानि होती है

लेफ़्टीनेन्ट ने मर्यूत्का का कंधा छुआ।

उसने कई बार कुछ कहने की कोशिश की, मगर ज़ोरों से बजते हुए उसके जबड़े ने उसे कुछ कहने न दिया। उसने मुट्ठी रखकर जबड़े को ज़ोर से दबाया और अपनी बात कही–

"रोने से कुछ हासिल नहीं होगा! चलना चाहिये! यहीं तो बैठे नहीं रहना है! जम जायेंगे!"

मर्यूत्का ने सिर ऊपर उठाया। हताश होते हुए उसने कहा –

"जायेंगे भी तो कहां! हम द्वीप पर हैं। हमारे चारों ओर पानी है।"

"फिर भी चलना चाहिये। मैं जानता हूं कि यहां झोंपड़ियां हैं!"

"तुझे कहां से मालूम है? तू क्या आया है कभी यहां?"

"नहीं, आया तो कभी नहीं। जिन दिनों हाई स्कूल में पढ़ता था उन्हीं दिनों मैंने पढ़ा था कि मछुए मछलियां रखने के लिये यहां झोंपड़ियां बनाते हैं। हमें कोई झोंपड़ी खोजनी चाहिये।"

"अच्छा मान लो कि झोंपड़ी मिल जाती है। इसके बाद?"

"यह सुबह देखा जायेगा। उठो, फ़ायडे।"

मर्यूत्का ने सहमकर लेफ़्टीनेन्ट की ओर देखा।

"तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं चल निकला? हे भगवान! क्या करूंगी मैं तुम्हारा? आज फ़ायडे नहीं, बुद्ध है।"

"ख़ैर सब ठीक है! तुम मेरी बातों की ओर ध्यान न दो। हम इसकी बाद में चर्चा करेंगे। अब उठो!"

मर्यूत्का उसकी बात मानते हुए चुपचाप खड़ी हो गई। लेफ़्टीनेन्ट बन्दूकें उठाने के लिये झुका मगर मर्यूत्का ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"रुको! गड़बड़ नहीं करो! तुमने वचन दिया है कि भागोगे नहीं।"

लेफ़्टीनेन्ट ने हाथ पीछे हटा लिया, ज़ोर से चीख़ा और ठहाके लगाने लगा—

"लगता है कि मेरा नहीं, तुम्हारा दिमाग़ चल निकला है। ज़रा सोचो तो क्या मैं इस समय भागने की बात सोच भी सकता हूं। बन्दूक़ें इसलिये उठाना चाहता था कि तुम्हें इन्हें उठाने में तकलीफ़ होगी।"

मर्यूत्का शान्त हो गई, मगर मधुर और गम्भीर ढंग से उसने कहा—

"सहायता के लिये धन्यवाद! मगर मुझे हुक्म दिया गया है कि तुम्हें हेड-क्वार्टर तक पहुंचा दूं... इसलिये ज़ाहिर है कि तुम्हें बन्दूक़ें नहीं दे सकती, मुझपर तुम्हारी ज़िम्मेदारी है।"

लेफ़्टीनेन्ट ने कंधे झटके और बोरे उठा लिये। वह आगे-आगे चल दिया।

बर्फ़ मिली रेत उनके पैरों के नीचे चरमरा रही थी। नीचे, सुनसान और समतल तट का कोई ओर-छोर नहीं था।

दूरी पर कोई भूरी चीज़ बर्फ़ से ढकी हुई नज़र आई।

मर्यूत्का तीन बन्दूक़ों के बोझ से दबी जा रही थी।

"कोई बात नहीं मरीया फ़िलातोव्ना, थोड़ी और हिम्मत रखो! ज़रूर यह झोंपड़ी ही है!"

"काश कि झोंपड़ी ही हो! मेरा तो दम निकला जा रहा है। ठण्ड से बिल्कुल अकड़ गई हूं।"

वे झुककर झोंपड़ी में दाख़िल हुए। भीतर घुप अन्धेरा था। सभी ओर नमक लगी मछली और ज़ंग लगे नमक की सड़ायंध फैली हुई थी।

लेफ़टीनेन्ट ने मछली के ढेर को हाथ से छुआ।

"ओह! मछली है! कम से कम भूखों मरने की नौबत नहीं आयेगी।"

"काश रोशनी होती! फिर भी सभी ओर खोज करनी चाहिए! शायद हवा से बचने के लिये कोई कोना मिल जाय!" मर्यूत्का ने आह भर कर कहा।

"बिजली की आशा तो यहां नहीं की जा सकती।"

"मछली जलाई जाये... देखो तो इनमें कितनी चर्बी है।"

लेफ़टीनेन्ट ने फिर ठहाका लगाया।

"मछली जलाई जाये? तुम तो सचमुच पागल हो गई हो!"

"वह भला क्यों?" मर्यूत्का ने खीझकर कहा। "वोल्गा तट पर हमारे यहां तो बहुत जलाई जाती हैं। लकड़ियों से बेहतर जलती हैं!"

"पहली बार सुन रहा हूं... मगर जलायेंगे कैसे? मेरे पास चक़माक़ तो है किन्तु चैलियां कहां से..."

"वाह रे सूरमा! समझ गयी कि मां के घाघरे की

छाया में ही उम्र गुज़ारी है। लो ये कार्तूस फाड़ो और मैं दीवार से कुछ चैलियां छुड़ाती हूं।"

बुरी तरह ठिठुरी हुई उंगलियों से लेफ़्टीनेन्ट ने बहुत कठिनाई से तीन कार्तूस फाड़े। चैलियां लाते हुए मर्यूत्का उसपर गिरते-गिरते बची।

"बारूद यहां छिड़को! एक ही जगह पर... चक़माक़ निकालो!"

चक़माक़ से नारंगी शोला निकला। मर्यूत्का ने उसे बारूद के ढेर में घुसेड़ दिया। एक फुंकार-सी हुई फिर धीरे-से पीली चिंगारियों की फुलझड़ी-सी छूटी और सूखी चैलियों में आग लगनी शुरू हुई।

"जल गई आग," मर्यूत्का ख़ुशी से चिल्लाई। "मछली लाओ... सबसे अधिक चर्बीवाली।"

जलती हुई चैलियों पर उन्होंने ढंग से मछलियां जमाईं। शुरू में उनसे सूं-सूं की आवाज़ हुई और फिर उनसे चमकदार और गर्म-गर्म चिंगारियां निकलने लगीं।

"अब इस आग में सिर्फ़ ईंधन ही डालते जाना होगा। छः महीने तक मछलियां काफ़ी रहेगी!"

मर्यूत्का ने सभी ओर नज़र दौड़ाई। मछलियों के बड़े-बड़े ढेरों पर चिंगारियों की नाचती हुई परछाइयां पड़ रही थीं। झोंपड़ी की लकड़ी की दीवारों में अनगिनत दरार और सूराख़ थे।

मर्यूत्का ने झोंपड़ी का निरीक्षण किया। वह एक कोने से चिल्लाई –

"यहां एक सही-सलामत कोना है। ग्राग में मछली ग्रौर डाल दो कि बुझ न जाये। मैं यहां चारों ग्रोर ग्रोट कर दूंगी। तब यह बिल्कुल कमरे जैसा कोना बन जायेगा।"

लेफ़्टीनेन्ट ग्राग के पास बैठा था। उसके कंधे झुके हुए थे, उसके शरीर में गर्मी दौड़ रही थी। मर्यूत्का कोने से मछलियां उठा-उठाकर फेंक रही थी। ग्राख़िर उसने पुकारकर कहा –

"सब तैयार हो गया! रोशनी लाग्रो!"

लेफ़्टीनेन्ट ने जलती हुई मछली दुम से पकड़कर उठाई। वह कोने में पहुंचा। मर्यूत्का ने तीन ग्रोर से मछलियों की दीवार बना दी थी ग्रौर बीच में थोड़ी-सी ख़ाली जगह रह गई थी।

"वहां बैठकर ग्राग जला लो। मैंने बीच में मछलियों का ढेर लगा दिया है। मैं तब तक रसद लाती हूं।"

लेफ़्टीनेन्ट ने एक जलती हुई मछली मछलियों के ढेर के बीच टिका दी। ग्राग बहुत धीरे-धीरे ग्रौर मानो मन मारकर जली। मर्यूत्का वापस ग्राई। उसने बन्दूक़ें कोने में खड़ी कर दीं ग्रौर बोरे ज़मीन पर रख दिये।

"ग्रोह, मछली का हैज़ा! साथियों के लिये ग्रफ़सोस होता है। बेकार ही डूब गये।"

"हमें कपड़े सुखा लेने चाहिये। वरना ठण्ड लग जायेगी।"

"तो सुखाते क्यों नहीं? मछलियों की आग ख़ूब तेज़ है। उतारो कपड़े, सुखाओ!"

लेफ़्टीनेन्ट झिझका।

"पहले तुम सुखा लो मरीया फ़िलातोव्ना। मैं तब तक वहां इन्तज़ार करता हूं। फिर मैं अपने कपड़े सुखा लूंगा।"

लेफ़्टीनेन्ट का कांपता हुआ चेहरा देखकर मर्यूत्का को उसपर तरस आया।

"देख रही हूं कि तुम बिल्कुल बुद्धू हो। असली बुर्जुवा हो। तुम्हें डर किस बात का लगता है? क्या कभी कोई नंगी औरत नहीं देखी?"

"नहीं यह बात नहीं है... मैंने सोचा कि शायद तुम्हें अच्छा न लगे।"

"बकवास है! हम सभी एक जैसे हाड-मांस के बने हुए हैं। फ़र्क़ ही क्या है! कपड़े उतारो बुद्धू!" वह चीख़ उठी। "तुम्हारे दांत तो मशीनगन की तरह किटकिटा रहे हैं। तुम तो मेरे लिये बिल्कुल मुसीबत हो!"

बन्दूक़ों पर लटके हुए कपड़ों से भाप उठ रही थी।

लेफ़्टीनेन्ट और मर्यूत्का आग के सामने, एक दूसरे के सम्मुख बैठे थे और अपने को गर्मा रहे थे।

मर्यूत्का, लेफ़्टीनेन्ट की गोरी-गोरी, कोमल और पतली-सी पीठ को बहुत ध्यान से और टकटकी बांधकर देख रही थी। वह हुमकी।

"तुम ऐसे गोरे क्यों हो, मछली का हैज़ा! लगता है कि तुम्हें मलाई मलमलकर नहलाया जाता रहा है।"

लेफ़्टीनेन्ट का चेहरा बिल्कुल सुर्ख़ हो उठा। उसने मर्यूत्का की ओर देखा। उसने कुछ कहना चाहा, मगर मर्यूत्का की गोल-गोल छाती पर आग की पीली परछाइयां नाचती देखकर उसने अपनी नीली-नीली आंखें झुका लीं।

कपड़े सूख गये। मर्यूत्का ने अपने कंधे पर चमड़े की जाकेट डाल ली।

"अब सोना चाहिये। हो सकता है कि कल तक तूफ़ान ख़त्म हो जाये। यही ख़ुशक़िस्मती है कि नाव नहीं डूबी। शायद कभी न कभी सिर-दरिया तक पहुंच ही जायेंगे। वहां मछुए मिल जायेंगे। तुम सो जाओ, मैं आग की देखभाल करूंगी। जब नींद से मेरी आंखें छुटने लगेंगी तो तुम्हें जगा दूंगी। इसी तरह हम बारी-बारी से आग की रखवाली करेंगे।"

लेफ़्टीनेन्ट ने अपने कपड़े नीचे बिछाये और ऊपर से कोट ओढ़ लिया। वह गहरी नींद सो गया और नींद में बड़बड़ाता रहा। मर्यूत्का उसे टकटकी बांधकर देखती रही।

फिर उसने कंधे झटके।

"यह तो मेरे सिर आ पड़ा है। बड़ा ही नाज़ुक है! कहीं ठण्ड न लग गई हो इसे! घर पर तो शायद मख़मल में ही लिपटा रहता होगा। ओह क्या चीज़ है यह ज़िन्दगी, मछली का हैज़ा!"

सुबह को जब छत की दरारों से रोशनी झांकने लगी तो मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट को जगाया।

"देखो, तुम आग का ध्यान करो और मैं तट की ओर जाती हूं। देखकर आती हूं कि कहीं हमारे साथी तैरकर निकल ही न आये हों और तट पर बैठे हों।"

लेफ़्टीनेन्ट बड़ी मुश्किल से उठा। सिर हाथों में थामकर उसने डूबती-सी आवाज़ में कहा—

"सिर में दर्द है।"

"कोई बात नहीं... यह तो धुएं और थकान का नतीजा है। ठीक हो जायेगा। बोरे से रोटी निकाल लो, मछली भून लो और खा लो।"

मर्यूत्का ने बन्दूक़ उठाई, जाकेट से साफ़ की और चल दी।

लेफ़्टीनेन्ट घुटनों के बल रेंगकर आग के पास पहुंचा। उसने बोरे से समुद्र के पानी में भीगी हुई रोटी निकाली। उसने रोटी का टुकड़ा काटा, थोड़ा-सा चबाया और बाक़ी उसके हाथ से नीचे गिर गया। लेफ़्टीनेन्ट आग के क़रीब फ़र्श पर ही ढह पड़ा।

मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट का कंधा झकझोरा और चीख़कर कहा –

"उठो! बेड़ा ग़र्क़! मुसीबत!"

लेफ़्टीनेन्ट की आंखें फैल गईं, होंठ खुले रह गये।

"उठो, कह रही हूं! मुसीबत आ गई! नाव बह गई। हम तो अब कहीं के न रहे।"

लेफ़्टीनेन्ट उसका मुंह ताकता हुआ ख़ामोश रहा।

मर्यूत्का ने उसे बहुत ध्यान से देखा और आह भरी।

लेफ़्टीनेन्ट की नीली आंखें धुंधली-धुंधली और खाली-खाली-सी नज़र आ रही थीं। बदहवासी में उसका गाल मर्यूत्का के हाथ पर आ रहा। लेफ़्टीनेन्ट का गाल अंगारे की तरह जल रहा था।

"अरे, हिम्मत हारनेवाले, तो तुझे ठण्ड लग ही गई! अब मैं करूंगी तो क्या?"

लेफ़्टीनेन्ट के होंठ फुसफुसाये।

मर्यूत्का झुककर सुनने लगी –

"मिख़ाइल इवानोविच . . . मुझे बुरे अंक नहीं दीजियेगा . . . मैं पाठ याद नहीं कर पाया . . . कल तैयार कर लूंगा . . ."

"यह तुम क्या बक रहे हो?" मर्यूत्का ने तनिक झिझकते हुए पूछा।

"अरे . . . लेना इसे . . . जंगली मुर्ग़ . . ." लेफ़्टीनेन्ट अचानक चिल्लाया और एकबारगी उछल पड़ा।

मर्यूत्का पीछे हट गई और उसने हाथों से मुंह ढक लिया।

लेफ़्टीनेन्ट फिर गिर गया और उंगलियों से रेत खुरचने लगा।

वह जल्दी-जल्दी कुछ अंट-शंट बके जा रहा था।

मर्यूत्का ने निराशा से चारों ओर नज़र दौड़ाई।

उसने जाकेट उतारकर ज़मीन पर फेंक दी और लेफ़्टीनेन्ट के चेतनाहीन शरीर को बड़ी कठिनाई से घसीट-कर जाकेट पर लाई। मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट को उसका कोट ओढ़ा दिया।

वह अपने को सर्वथा असहाय अनुभव करती हुई झुककर उसके निकट बैठ गई। उसके दुबले-पतले गालों पर धीरे-धीरे आंसू लुढ़कने लगे।

लेफ़्टीनेन्ट करवटें लेता हुआ कोट को बार-बार उतारकर फेंक देता था। मगर मर्यूत्का हर बार उसे ठोड़ी तक ढक देती थी।

मर्यूका ने देखा कि लेफ़्टीनेन्ट का सिर एक तरफ़ को ढलक गया है। उसने उसके सिर के नीचे बोरे रख दिये।

उसने ऊपर की ओर देखा मानो आकाश को सम्बोधित कर रही हो और दर्दभरी आवाज़ में कहा—

"अगर यह मर गया... तो मैं येव्स्युकोव को क्या जवाब दूंगी? हाय, क्या मुसीबत है!"

वह बुख़ार से जलते हुए लेफ़्टीनेन्ट के शरीर पर झुक गई और उसने उसकी धुंधलाई हुई नीली आंखों में झांका।

मर्यूत्का के दिल को ठेस लगी। उसने हाथ बढ़ाकर लेफ़्टीनेन्ट के उलझे हुए घुंघराले बालों को धीरे से सहलाया। उसका सिर अपने हाथों में लेकर वह कोमल स्वर में फुसफुसाई –

"अरे नीली आंखों वाले मेरे बुद्धू!"

सातवां अध्याय। शुरू में पहेली, अन्त में बिल्कुल साफ़

चांदी की नफ़ीरियां, नफ़ीरियों पर लगी हुई घंटियां।

नफ़ीरियां बजती हैं, घंटियां टनटनाती हैं, बर्फ़ जैसी कोमल टनटनाहट पैदा करती हुई –

टन, टनाटन, टन

टन, टनाटन, टन

नफ़ीरियां गूंजती हैं –

तू-तू-तू-तड़्, तू-तू-तू-तड़्।

यह साफ़ तौर पर फ़ौजी मार्च है। बेशक मार्च है, वही जो हमेशा परेड के समय होती है।

मैदान भी वही है जिसमें मेपल के वृक्षों की हरी-हरी रेशमी पत्तियों में से छनकर आनेवाली धूप फैली हुई है।

बैंडमास्टर बैंड का निर्देशन कर रहा है।

बैंडमास्टर बैंड की तरफ़ पीठ करके खड़ा है और उसके

लम्बे कोट की काट से दुम बाहर निकली हुई है, लोमड़ी की सी बड़ी लाल दुम। दुम के सिरे पर सुनहरा गेंद है और गेंद में कामेरटोन लगा है।

दुम इधर-उधर हिल-डुल रही है, कामेरटोन बाजों को संकेत देता है और यह भी बताता है कि ताशे और बिगुल कब बजें। जब कोई वादक जम्हाई लेता है तो उसके माथे पर तड़ से कामेरटोन लगता है।

बैंडवाले अपनी पूरी कोशिश से बैंड बजा रहे हैं। बैंडवाले बहुत अजीब-से हैं।

बैंड बजानेवाले मामूली और विभिन्न रेजिमेन्टों के सिपाही हैं। यह पूरी फ़ौज का बैंड है।

मगर बैंड बजानेवालों के मुंह नहीं हैं... उनकी नाकों के नीचे बिल्कुल सपाट जगह है। नफ़ीरियां उनके बायें नथनों में घुसी हुई हैं।

वे दायें नथनों से सांस लेते हैं, बायें नथनों से नफ़ीरियां बजाते हैं। नफ़ीरियों से विशेष प्रकार की आवाज़ निकलती है, झनझनाती हुई और मन को बहलाती हुई।

"अटेन्शन!"

"बन्दूक़ – कांधे पर!"

"रेजिमेन्ट!"

"बटालियन!"

"कम्पनी!"

"बटालियन नम्बर एक--फ़ारवर्ड मार्च!"

नफ़ीरियां – तू-तू-तू-तड़्। घंटियां – टन-टन-टन।

काले चमकदार जूते पहने हुए कप्तान श्वेत्सोव बड़ी शान से नाचता है। कप्तान के कसे हुए और चिकने कूल्हे सूअर के लोथड़े के समान हैं। उसके पांव ताल दे रहे हैं – धप, धप।

"बहुत ख़ूब जवानो!"

"ढम, ढमाढम!"

"लेफ़्टीनेन्ट!"

"लेफ़्टीनेन्ट! जनरल साहब आप को याद कर रहे हैं।"

"किस लेफ़्टीनेन्ट को?"

"तीसरी कम्पनी के! लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूख़ा-ओत्रोक को जनरल साहब याद कर रहे हैं।"

जनरल घोड़े पर सवार है, घोड़ा चौक के बीचोंबीच खड़ा है। उसका चेहरा लाल और मूंछें पकी हुई हैं।

"लेफ़्टीनेन्ट, यह क्या हिमाकत है?"

"ही-ही-ही! हा-हा-हा!"

"क्या दिमाग़ चल निकला है? हंसने की जुर्रत? मैं तुम्हारा दिमाग़ ठिकाने कर... तुम किससे बात कर रहे हो?"

"हो-हो-हो! अरे हां, आप जनरल नहीं, बिल्ला हैं हुज़ूर!"

जनरल घोड़े पर सवार है। जनरल कमर तक तो जनरल

है और उसके नीचे का धड़ बिल्ले का है। किसी अच्छी नसल के बिल्ले का भी नहीं, हर घर के पिछवाड़े में नज़र आनेवाले साधारण नसल के मटमैले और धारीदार बिल्ले का।

वह अपने पंजों से रकाबों को दबाये है।

"मैं तुम्हारा कोर्ट-मार्शल करूंगा लेफ़्टीनेन्ट! कैसी अनसुनी बात है! गार्ड का अफ़सर और उसकी आंतें बाहर निकली हुई हों!"

लेफ़्टीनेन्ट ने नज़र झुकाकर देखा और उसका मानो दम निकल गया। इसके कमरबंद के नीचे से आंतें बाहर निकली हुई थीं, पतली-पतली और हरी-हरी। ये आंतें आश्चर्यचकित करनेवाली तेज़ी से घूम रही थीं... उसने अपनी आंतें पकड़ीं, मगर वे फिसल गईं।

"गिरफ़्तार कर लो इसे! इसने शपथ की अवहेलना की है!"

जनरल ने रकाब से पंजा निकाला, नाख़ून खोले और लेफ़्टीनेन्ट की तरफ़ बढ़ाये। पंजे में रुपहली एड़ लगी हुई थी और उसकी एक कड़ी की जगह एक आंख जड़ी हुई थी।

साधारण आंख। गोल, पीली पुतली और ऐसी पैनी कि लेफ़्टीनेन्ट के दिल में उतरती चली गई।

इस आंख ने प्यार से आंख मारी और लगी कहने। आंख कैसे बोलने लगी, यह कोई नहीं जानता, मगर वह बोल रही थी–

"नहीं डरो! नहीं डरो! आख़िर होश में आ गया!"

एक हाथ ने लेफ़्टीनेन्ट का सिर ऊपर उठाया। लेफ़्टीनेन्ट ने आंखें खोल दीं। उसने एक दुबला-पतला-सा चेहरा देखा जिसपर लाल लटें लटकी हुई थीं। और आंख, प्यार भरी और पीली थी, बिल्कुल वैसी ही जैसी कि उसने एड़ में जड़ी हुई देखी थी।

"अरे ज़ालिम, तुमने तो मुझे बिल्कुल डरा ही दिया था। पूरे हफ़्ते-भर से तुम्हारे सिरहाने बैठी परेशान हो रही हूं। मुझे तो लग रहा था कि तुम चल बसोगे। इस द्वीप पर हम एकदम एकाकी हैं। न कोई दवा-दारु है, न किसी तरह की कोई मदद। सिर्फ़ उबलते पानी का सहारा था। शुरू में तो तुम वह भी उगल देते थे। ख़राब, नमकीन पानी को अन्तड़ियां स्वीकार नहीं करती थीं।"

लेफ़्टीनेन्ट बहुत ही कठिनाई से प्यार और चिन्ता के ये शब्द समझ पाया।

उसने सिर उठाया और इस तरह इधर-उधर देखा मानो कुछ भी समझ न पा रहा हो।

सभी ओर मछलियों के ढेर थे। आग जल रही थी, गज़ पर केतली लटक रही थी, पानी उबल रहा था।

"यह सब क्या है? कहां हूं मैं?"

"अरे, भूल गये? नहीं पहचानते? मैं मर्यूत्का हूं!"

लेफ़्टीनेन्ट ने अपने नाज़ुक और पीले हाथ से माथे को रगड़ा।

उसे सब कुछ याद हो आया, वह धीरे से मुस्कराया और फुसफुसाया–

"हां... याद आया। राबिन्सन और फ़ायडे!"

"लो फिर बहक चले? यह फ़ायडे तो तुम्हारे दिमाग़ में जमकर बैठ गया है। मालूम नहीं कि आज कौनसा दिन है। मैं तो इनका हिसाब ही भूल गई हूं।"

लेफ़्टीनेन्ट फिर मुस्कराया।

"दिन नहीं! यह तो नाम है... ऐसी एक कहानी है कि जहाज़ टूट जाने के बाद एक आदमी एक वीरान द्वीप पर जा पहुंचा। वहां उसका एक दोस्त बना। उसका नाम था फ़ायडे। कभी नहीं पढ़ी यह कहानी तुमने?" वह जाकेट पर ढह पड़ा और खांसने लगा।

"नहीं...कहानियां तो बहुत पढ़ी हैं, मगर यह नहीं। तुम आराम से लेटे रहो, हिलो-डुलो नहीं। वरना फिर से बीमार हो जाओगे। मैं कुछ मछलियां उबालती हूं। खाने से बदन में जान आ जायेगी। पूरे हफ़्ते भर, पानी के सिवा तुम्हारे मुंह में एक दाना भी तो नहीं गया। देखो तो तुम्हारे बदन में ज़रा भी ख़ून नहीं रह गया, बिल्कुल सफ़ेद हो गये हो, मोम की तरह। लेट जाओ!"

लेफ़्टीनेन्ट ने कमज़ोरी अनुभव करते हुए आंखें बन्द कर लीं। उसके सिर में धीरे-धीरे बिल्लौरी घंटियां बज रही थीं। उसे बिल्लौरी घंटियोंवाली नफ़ीरियों की याद हो आई। वह धीरे से हंस दिया।

"क्या बात है?" मर्यूत्का ने पूछा।

"ऐसे ही याद आ गया... सरसामी की हालत में एक अजीब-सा सापना देखा था।"

"तुम सपने में कुछ चिल्लाते रहे थे। तुम लगातार आर्डर देते थे, डांटते-डपटते थे... क्या कुछ नहीं हुआ। हवा सीटियां बजाती थी, सभी ओर वीराना था और मैं द्वीप पर तुम्हारे साथ अकेली थी और तुम होश में नहीं थे। डर के मारे मेरा दम निकला जा रहा था।"—वह सिहर उठी। "समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं।"

"तो कैसे तुमने काम चलाया?"

"बस जैसे-तैसे चला ही लिया काम। सबसे ज़्यादा डर तो मुझे इस बात का था कि तुम भूख से मर जाओगे। पानी के सिवा कुछ भी तो नहीं था। बची-बचायी रोटी को ही पानी में उबालकर तुम्हें पिलाती रही। अब तो सिर्फ़ मछली ही बच रही है। नमकीन मछली बीमार के लिये क्या मानी रखती है? मगर जैसे ही यह देखा कि तुम होश में आ रहे हो और आंखें खोल रहे हो तो मेरे मन का बोझ हल्का हुआ।"

लेफ़्टीनेन्ट ने अपना हाथ बढ़ाया। धूल-मिट्टी से लथपथ होने के बावजूद सुन्दर और पतली-पतली उंगलियां उसने मर्यूत्का की बांह पर रख दीं। धीरे से उसकी बांह थपथपाते हुए लेफ़्टीनेन्ट ने कहा–

"धन्यवाद, प्यारी!"

मर्यूत्का के चेहरे पर लाली दौड़ गयी और उसने लेफ़्टीनेन्ट का हाथ हटा दिया।

"आभार प्रकट नहीं करो! धन्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं। तुम क्या सोचते हो कि अपनी आंखों के सामने आदमी को मरने दिया जा सकता है? मैं जानवर हूं या इन्सान?"

"मगर मैं तो फ़ौजी हूं... तुम्हारा दुश्मन हूं। मुझे बचाने की तुम्हें क्या पड़ी थी? ख़ुद तुम में जान नहीं रह गई।"

मर्यूत्का घड़ी भर को चुप रही, उलझन में उलझी हुई सी। फिर उसने हाथ हिलाया और हंस दी।

"तुम दुश्मन? हाथ तक तो उठा नहीं सकते। बड़े आये दुश्मन! मेरी क़िस्मत में यही लिखा था। गोली तुम पर सीधी नहीं बैठी। निशाना चूक गया, सो भी ज़िन्दगी में पहली बार। अब ज़िन्दगी-भर तुम्हारे लिये परेशान होना पड़ेगा। लो, खाओ!"

मर्यूत्का ने लेफ़्टीनेन्ट की ओर पतीली बढ़ाई। उसमें चर्बीवाली सुनहरी मछली तैर रही थी। मांस की हल्की-हल्की और प्यारी-प्यारी गन्ध आ रही थी।

लेफ़्टीनेन्ट ने पतीली से मछली का टुकड़ा निकाला। मज़े लेते हुए वह उसे खाने लगा।

"बेहद नमकीन है। गला जला जा रहा है।"

"कुछ भी तो इलाज नहीं इसका। अगर मीठा पानी होता तो मछली को उसमें डालकर नमक निकाल लिया जाता। मगर बदक़िस्मती कि वह भी नहीं है। मछली नमकीन – पानी भी नमकीन! कैसी मुसीबत है, मछली का हैज़ा!"

लेफ़्टीनेन्ट ने पतीली एक तरफ़ हटा दी।

"क्या हुआ? और नहीं खाओगे क्या?"

"नहीं। मैं खा चुका। तुम खाओ!"

"गोली मारो इसे! हफ़्ते-भर यही तो खाती रही हूं। गले में अटककर रह जायेगी यह मेरे।"

लेफ़्टीनेन्ट कोहनी के बल लेट गया।

"काश... कि सिगरेट होती!" उसने आह भरकर कहा।

"सिगरेट? तो कहा क्यों नहीं मुझसे। सेम्यात्नी के थैले से मुझे कुछ तम्बाकू मिला है। थोड़ा भीग गया था, मैंने उसे सुखा लिया है। जानती थी कि तुम तम्बाकूनोशी करना चाहोगे। बीमारी के बाद सिगरेट पीने की चाह और भी बढ़ जाती है। यह लो।"

लेफ़्टीनेन्ट के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने कांपती उंगलियों से तम्बाकू की थैली ले ली।

"तुम तो हीरा हो, माशा! धाय से बढ़कर हो!"

"शायद धाय के बिना जी नहीं सकते," उसने रुखाई से जवाब दिया और उसके गाल लाल हो गये।

"अब सिगरेट लपेटने के लिये काग़ज़ नहीं। तेरे इस गुलाबी मुंहे ने मेरे सभी काग़ज़ छीन लिये थे और पाइप मैं खो बैठा हूं।"

"काग़ज़ ..." मर्यूत्का सोचने लगी।

फिर निर्णायक झटके के साथ उस जाकेट की ओर मुड़ी जो लेफ़्टीनेन्ट ओढ़े था। उसने जाकेट की जेब में हाथ डालकर छोटा-सा एक बंडल निकाला।

उसने बंडल खोलकर उसमें से कुछ काग़ज़ निकाले और लेफ़्टीनेन्ट की ओर बढ़ाये।

"यह लो।"

लेफ़्टीनेन्ट ने काग़ज़ लिये और उन्हें ध्यान से देखा। फिर मर्यूत्का की ओर नज़र उठाई। उसकी आंखों की नीलिमा में हैरानी-परेशानी चमक रही थी।

"ये तो तुम्हारी कवितायें हैं! तुम्हारा दिमाग़ चल निकला है क्या? मैं नहीं लूंगा!"

"ले लो, तुम पर शैतान की मार! मेरा दिल नहीं दुखाओ, मछली का हैज़ा!" मर्यूत्का चिल्लाई।

लेफ़्टीनेन्ट ने ग़ौर से उसकी तरफ़ देखा।

"धन्यवाद! मैं यह कभी नहीं भूलूंगा!"

उसने काग़ज़ के सिरे से एक छोटा-सा टुकड़ा फाड़ा, तम्बाकू लपेटकर सिगरेट बनाई और धुआं उड़ाने लगा। फिर वह लेटकर सिगरेट के नीले धुएं के घेरे के बीच से कहीं दूर देखने लगा।

मर्यूत्का उसे टकटकी बांधकर देखती रही। फिर अप्रत्यांशित ही उसने कहा –

"मैं तुम्हें देखती हूं और एक बात किसी तरह भी समझ नहीं पाती हूं। तुम्हारी आंखें ऐसी नीली क्यों हैं? ज़िन्दगी में कभी ऐसी आंखें नहीं देखीं। ऐसी नीली हैं तुम्हारी आंखें कि आदमी इनमें डूब सकता है।"

"मालूम नहीं," लेफ़्टीनेन्ट ने जवाब दिया। "जन्म से ही ऐसी हैं। बहुत-से लोगों ने मुझ से कहा है कि इनका रंग असाधारण है।"

"हां, यह सच है! तुम्हारे क़ैदी बनाये जाने के कुछ ही देर बाद मैंने सोचा कि इसकी आंखें ऐसी क्यों हैं। ये ख़तरनाक हैं!"

"किस के लिये?"

"औरतों के लिये। अनजाने ही मन में उतर जाती हैं। उसे मोह लेती हैं।"

"तुम्हें भी मोह लिया क्या?"

मर्यूत्का भड़क उठी।

"देखो तो शैतान को! राज़ जानना चाहता है। लेट जाओ, मैं पानी लेने जा रही हूं।"

मर्यूत्का उठी, उसने लापरवाही से केतली उठाई, मगर मछलियों के ढेर से आगे जाकर चंचलता से हंसते हुए मुड़ी और पहले की भांति बोली—

"अरे, मेरे प्यारे बुद्धू, नीली आंखोंवाले!"

आठवां अध्याय जिसके लिये किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं

मार्च की धूप है—वातावरण में वसन्त का रंग।

मार्च की धूप अराल सागर पर फैली हुई है—नज़र की हद तक नीली मख़मल पर। चिलचिलाती धूप अपने तेज़ दांतों से काटती-सी लगती है, आदमी का ख़ून मानो उबल-उबल पड़ता है।

अब तीन दिनों से लेफ़्टीनेन्ट बाहर निकलता है।

वह झोंपड़ी के बाहर बैठकर धूप सेंकता है, अपने चारों ओर देखता है। उसकी आंखों में अब ख़ुशी झलकती है, उनमें चमक आ गई है और वे नीले सागर की तरह नीली नज़र आती हैं। इसी बीच मर्यूत्का ने सारा द्वीप छान डाला है।

अपने इसी छान-बीन के काम के आख़िरी दिन वह सूर्यास्त के समय ख़ुश-ख़ुश लौटी।

"सुनते हो! कल हम यहां से जा रहे हैं!"

"कहां ?"

"वहां, कुछ दूरी पर! यहां से कोई आठ कोस के फ़ासले पर।"

"वहां क्या है?"

"मछुओं की झोंपड़ी मिल गई है। यूं समझो कि बस महल है! बिल्कुल ख़ुश्क और ठीक-ठाक है। खिड़कियों का मज़बूत शीशा तक सही-सलामत है। उसमें तन्दूर और मिट्टी के कुछ टूटे-फूटे बर्तन भी हैं। वे सब काम आ जायेंगे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सोने के लिये तख़्ते लगे हुए हैं। अब ज़मीन पर लोटने-पोटने की ज़रूरत नहीं रहेगी। हमें तो शुरू में ही वहां जाना चाहिये था।"

"मगर यह मालूम ही किसे था?"

"यही तो बात है! इतना ही नहीं एक और खोज कर डाली है मैंने। बढ़िया खोज!"

"वह क्या है?"

"तन्दूर के पीछे खाने-पीने का कुछ सामान भी है। रसद छिपी हुई है। बहुत नहीं है। चावल हैं और कोई आठ-दस सेर आटा। आटा कुछ ख़राब हो गया है, मगर ख़ैर खाया जा सकता है। लगता है कि पतझर में जैसे ही तूफ़ान आता देखा होगा, मछुओं ने वहां से भागने की जल्दी की होगी और हड़बड़ी में रसद समेटनी भूल गये होंगे। अब ख़ूब मज़े रहेंगे हमारे!"

अगली सुबह वे नई जगह के लिये चल दिये। ऊंट की तरह लदी-लदायी मर्यूत्का आगे-आगे चल रही थी। उसने सभी कुछ अपने ऊपर लाद लिया था, लेफ़्टीनेन्ट को कुछ भी नहीं उठाने दिया था।

"नहीं, नहीं, तुम नहीं उठाओगे! फिर बीमार पड़ जाओगे। लेने के देने पड़ जायेंगे। तुम कोई फ़िक्र नहीं करो! देखने में बेशक दुबली-पतली, मगर मज़बूत हूं!"

दोपहर तक वे दोनों अपनी मंज़िल पर पहुंच गये। उन्होंने बर्फ़ हटाई और दरवाज़े को क़ब्ज़ों में लगाकर खड़ा किया। उन्होंने तन्दूर को मछलियों से भरकर जलाया और आग तापने लगे। उनके चेहरों पर सुखद मुस्कान खेल रही थी।

"वाह... क्या शाही ठाठ हैं!"

"बहुत ख़ूब हो तुम माशा! उम्र भर तुम्हारा एहसान मानूंगा... तुम न होती तो दम निकल गया होता।"

"सो तो ज़ाहिर है मेरे नाज़ुक बदन!"

वह चुप होकर आग पर हाथ तापने लगी।

"गर्म है, ख़ूब गर्म है... हां तो अब हम आगे क्या करेंगे?"

"क्या करेंगे? इन्तज़ार!"

"किस चीज़ का?"

"वसन्त का। थोड़ा ही समय रह गया है। आधा मार्च गुज़र चुका है। बस यही कोई दो हफ़्तों की और देर है – सम्भवतः तब मछुए यहां अपनी मछलियों के लिये आयेंगे और हमें उस पार पहुंचायेंगे।"

"काश, ऐसा ही हो। मछलियों और सड़े हुए आटे के सहारे हम बहुत दिनों तक ज़िन्दा नहीं रह सकेंगे। दो हफ़्ते और जी लेंगे, और तब यह सब कुछ हमारे लिये मछली का हैज़ा हो जायेगा!"

"यह तुम क्या मुहावरा बोला करती हो हर वक़्त – 'मछली का हैज़ा'? कहां सीखा तुमने इसे?"

"अपने अस्त्रख़ान में। मछुए इसी तरह बातचीत करते हैं। गाली-गलौज की जगह मैं इसी से काम चलाती हूं। गाली-वाली देना मुझे पसन्द नहीं। जब कभी ग़ुस्सा आता है तो यही कहकर दिल की भड़ास निकाल लेती हूं।"

उसने बन्दूक़ के गज़ से तन्दूर में मछलियां हिलाईं और पूछा –

"अरे हां, तुमने कभी मुझ से एक कहानी की चर्चा की थी, किसी द्वीप के बारे में... फ़ायडे के सम्बन्ध में। योंही ठाली बैठे रहने से यही अच्छा है कि वह कहानी सुनाओ। दीवानी हूं मैं तो कहानियों की! ऐसा होता था कि गांव की औरतें मेरी मौसी के घर जमा होती थीं और गुगनीख़ा नाम की एक बुढ़िया को भी अपने साथ लाती थीं।

सौ बरस की या शायद इससे भी ज़्यादा उम्र थी उसकी। नेपोलियन के रूस आने तक की याद थी उसे। जैसे ही वह कहानी कहना शुरू करती, मैं इसी तरह कोने में गुड़-मुड़ होकर बैठ जाती। सांस तक न लेती कि कहीं कोई शब्द न छूट जाये।"

"तुम राबिन्सन क्रूसो की कहानी सुनाने को कह रही हो न? आधी कहानी तो मैं भूल चुका हूं। एक ज़माने पहले पढ़ी थी।"

"तुम याद करने की कोशिश करो। जितनी याद आ जाये उतनी ही सुना दो।"

"अच्छा, कोशिश करता हूं।"

लेफ़्टीनेन्ट ने कुछ कुछ आंखें मूंद लीं और कहानी याद करने लगा।

मर्यूत्का ने सोनेवाले तख़्ते पर अपनी चमड़े की जाकेट बिछा ली और तन्दूर के निकटवाले कोने में बैठ गई।

"यहां आ जाओ, यह कोना ज़्यादा गर्म है।"

लेफ़्टीनेन्ट कोने में जा बैठा। तन्दूर ख़ूब गर्म हो चुका था और उससे सुखद गर्मी आ रही थी।

"अरे, तुम शुरू करो न। जान देती हूं मैं इन कहानियों पर!"

लेफ़्टीनेन्ट ने ठुड्डी पर हाथ रखा और कहानी कहना शुरू की—

"लिवरपूल नगर में एक अमीर आदमी रहता था। उसका नाम था राबिन्सन क्रूसो..."

"यह नगर कहां है?"

"इंगलैंड में... हां, वहां एक धनी रहता था राबिन्सन क्रूसो..."

"ज़रा रुको! अमीर आदमी कहा न तुम ने? ये सारी कहानियां अमीरों और बादशाहों के बारे में ही क्यों होती हैं? ग़रीबों के बारे में कहानियां क्यों नहीं होतीं?"

"मालूम नहीं," लेफ़्टीनेन्ट ने हतप्रभ होते हुए जवाब दिया। "मैंने कभी इसके बारे में सोचा नहीं।"

"ज़रूर इसीलिये ऐसा है कि अमीरों ने ही ये कहानियां लिखी हैं। मुझ ही को ले लो। कविता रचना चाहती हूं, मगर इसके लिये मेरे पास ज्ञान की कमी है। ख़ूब बढ़िया ढंग से लिखती मैं ग़रीबों के बारे में! ख़ैर कोई बात नहीं। पढ़-लिख जाऊंगी, तब लिखूंगी।"

"हां तो... इस राबिन्सन क्रूसो के दिमाग़ में दुनिया के गिर्द चक्कर लगाने की बात आई। वह देखना चाहता था कि और लोग कैसे रहते-सहते हैं। वह पालोंवाले एक बड़े जहाज़ में अपने नगर से चला..."

तन्दूर में आग चटक रही थी, लेफ़्टीनेन्ट रवानी से कहानी कह रहा था।

धीरे-धीरे उसे सारी कहानी, छोटी-छोटी तफ़सील भी याद आती जा रही थी।

मर्यूत्का दम साधे बैठी थी। कहानी के सबसे प्रभावपूर्ण अंशों पर वह गहरी सांस लेती।

लेफ़्टीनेन्ट ने जब राबिन्सन क्रूसो के जहाज़ की दुर्घटना की चर्चा की तो मर्यूत्का ने घृणा से कंधे झटके और पूछा –

"इसका मतलब यह है कि राबिन्सन क्रूसो के सभी साथी मर गये?"

"हां, सभी।"

"तब तो ज़रूर जहाज़ के कप्तान के भेजे में भूसा भरा था या फिर दुर्घटना के पहले वह बहुत पी गया था। मैं तो हरगिज़ यह मानने को तैयार नहीं कि कोई अच्छा कप्तान अपने जहाज़ियों को इस तरह मरने देगा। कैस्पियन सागर में कई बार हमारे जहाज़ इसी तरह दुर्घटना के शिकार हुए हैं और दो-तीन से ज़्यादा आदमी कभी नहीं डूबे, बाक़ी सभी को बचा लिया गया।"

"यह तुम कैसे कह सकती हो? हमारे सेम्यान्नी और व्याख़िर भी तो डूब गये हैं न! इसका मतलब यह है कि तुम बहुत घटिया कप्तान हो या फिर दुर्घटना के पहले तुमने बहुत चढ़ा ली थी?"

मर्यूत्का ने गहरी सांस ली।

"चारों शाने चित कर दिया तुमने, मछली का हैज़ा! अच्छा, सुनाओ कहानी!"

फ़ायडे से भेंट होने का जब ज़िक्र आया तो मर्यूत्का ने फिर टोका—

"हां तो अब समझी कि क्यों तुमने मुझे फ़ायडे कहा था? तुम ख़ुद तो मानो राबिन्सन ही हो न? तुमने कहा न कि फ़ायडे काला था? हब्शी? मैंने हब्शी देखा था। हां, अस्त्रख़ान की सरकस में आया था।"

जब समुद्री डाकुओं के हमले का ज़िक्र आया तो मर्यूत्का की आंखें चमक उठीं और उसने लेफ़्टीनेन्ट से कहा—

"एक पर दस टूट पड़े? बहुत बुरी बात थी न यह तो, मछली का हैज़ा!"

लेफ़्टीनेन्ट ने आख़िर कहानी ख़त्म की।

मर्यूत्का लेफ़्टीनेन्ट के कंधे से टेक लगाये हुए मानो जादू में बंधी-सी बैठी रही। उसने जैसे कि स्वप्न देखते हुए कहा—

"ख़ूब कहानी थी। सम्भवतः बहुत कहानियां जानते हो? हर दिन एक कहानी कहा करो।"

"क्या सचमुच तुम्हें अच्छी लगी?"

"बहुत ही अच्छी। हर शाम इस तरह जल्दी-जल्दी बीत जायेगी। समय का पता भी नहीं लगेगा।"

लेफ़्टीनेन्ट ने जम्हाई ली।

"नींद आ रही है क्या?"

"नहीं... बीमारी के बाद कमज़ोर हो गया हूं।"

"हाय, बेचारा!"

मर्यूत्का ने फिर प्यार से उसके बाल थपथपाये। लेफ़्टीनेन्ट ने हैरान होकर अपनी नीली आंखें उसकी ओर उठाईं।

उन आंखों में कुछ ऐसी गर्मी थी जो मर्यूत्का के हृदय की गहराइयों तक को छू गई। वह अपनी सुध-बुध भूल गई। वह झुकी और उसने अपने ख़ुश्क तथा फटे हुए होंठ लेफ़्टीनेन्ट के कमज़ोर और खूंटियों से भरे हुए गाल पर रख दिये।

नौवां अध्याय जो यह प्रमाणित करता है कि हृदय यद्यपि किसी नियम-क़ानून को नहीं मानता तथापि मनुष्य की चेतना यथार्थ से मुंह नहीं मोड़ सकती

मर्यूत्का के अचूक निशाने के शिकार होनेवालों की सूची में सफ़ेद गार्ड के लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूख़ा-ओत्रोक का नम्बर इकतालीसवां होना चाहिये था।

मगर हुआ यह कि मर्यूत्का की ख़ुशियों की सूची में उसका स्थान पहला हो गया।

मर्यूत्का जी-जान से लेफ़्टीनेन्ट पर मर मिटी, उसके पतले-पतले हाथों पर, उसकी प्यारी-मधुर आवाज़ पर और सबसे ज़्यादा तो उसकी नीली आंखों पर।

उन आंखों से, उनकी नीलिमा से मर्यूत्का की ज़िन्दगी जगमगा उठी।

वह अराल सागर की ऊब भूल गई, बेहद नमकीन मछली और सड़े हुए आटे के उबकाई लानेवाले ज़ायक़े का भी उसे ध्यान नहीं रहा। काले विस्तार के पार जाकर जीवन की रेल-पेल में हिस्सा लेने की अदम्य और तीव्र चाह भी अब मिट गई। दिन के समय वह साधारण काम-काज करती—रोटियां पकाती और उबकाई पैदा करनेवाली मछली उबालती जिसकी वजह से उनके मूसड़े सूज गये थे। कभी-कभी वह तट पर जाकर यह भी देख लेती कि लहरों पर कहीं वह पाल तो उनकी ओर नहीं आ रहा जिसका इन्तज़ार था।

शाम को जब वसन्त के आकाश से कंजूस सूरज अपना किरणजाल समेटने लगता तो वह अपने कोनेवाले तख़्ते पर बैठती। वह लेफ़्टीनेन्ट के कंधे पर अपना सिर टिका देती और कहानी सुनती।

बहुत-सी कहानियां सुनाईं लेफ़्टीनेन्ट ने। अच्छा कमाल हासिल था उसे कहानियां कहने में।

दिन बीतते गये लहरों की तरह धीरे-धीरे, बोझिल बोझिल-से।

एक दिन लेफ़्टीनेन्ट झोंपड़ी की देहली पर बैठा, धूप सेंकता हुआ मर्यूत्का की उंगलियां की ओर देखा रहा था

जो अभ्यस्त होने के कारण बड़ी फुर्ती से एक मोटी मछली को साफ़ कर रही थीं। लेफ़्टीनेन्ट ने आंखें झपकायीं और कंधे झटककर कहा –

"हुम... बिल्कुल बकवास है! जहन्नुम में जाये!"

"क्या हुआ प्यारे?"

"मैं कहता हूं सब बकवास है... सारी ज़िन्दगी ही फ़ुज़ूल है। शुरू शुरू के संस्कार, लादे गये विचार! बिल्कुल बकवास! तरह-तरह के रस्मी नाम, उपाधियां! गार्ड का लेफ़्टीनेन्ट? भाड़ में जाये गार्ड का लेफ़्टीनेन्ट! मैं जीना चाहता हूं। सत्ताईस बरस तक जी चुका लेकिन सच यह है कि जीकर तो बिल्कुल देखा ही नहीं। बेतहाशा दौलत लुटाई, किसी आदर्श की खोज में देश-विदेश भटका, मगर मेरे हृदय में किसी कमी, किसी असन्तोष की जानलेवा आग धधकती रही। अब सोचता हूं कि अगर तब कोई मुझे यह कहता कि अपने जीवन के सबसे भरपूर दिन मैं इस बेहूदा सागर के बीच, इस समोसे की शक्लवाले द्वीत पर गुज़ारूंगा तो मैं कभी विश्वास न करता।"

"क्या कहा तुमने, कैसे दिन?"

"सबसे ज़्यादा भरपूर। नहीं समझी? कैसे कहूं, कि तुम आसानी से समझ जाओ? ऐसे दिन, जबकि सारी दुनिया के विरुद्ध मैं अपने को एकाकी ही मोर्चा लेता हुआ अनुभव नहीं कर रहा हूं, जबकि मुझे अकेले ही संघर्ष करना होता

है। मैं इस समूचे वातावरण में खोकर रह गया हूं।" उसने अपनी बाहें फैलाकर मानो समूचे वातावरण को उसमें समेट लिया। "ऐसे लगता है मानो मैं इस सारे वातावरण का अभिन्न अंग बन गया हूं। इसकी सांसें, मेरी सांसें हैं। ये देखो ये मौजें सांसें ले रही हैं... सांय... सांय... ये मौजें नहीं, मेरी सांसें हैं, मेरी आत्मा की सांसें हैं, यह मैं हूं।"

मर्यूत्का ने चाकू रख दिया।

"देखो तुम तो विद्वान की भाषा में बातें करते हो। तुम्हारी सभी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं तो सीधे-सादे ढंग से यह कहती हूं—मैं अब अपने को सौभग्यशालिनी अनुभव करती हूं।"

"शब्द अलग-अलग हैं, मगर भाव एक ही है। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि अगर इस बेहूदा गर्म रेत को छोड़कर कहीं न जाया जाये, हमेशा के लिये यहीं रहा जाये, इस फैली हुई गर्म धूप की गर्मी में घुलमिल जाया जाये, जानवर की तरह सन्तोष का जीवन बिताया जाये, तो कहीं अच्छा हो।"

मर्यूत्का टकटकी बांधे रेत को देखती रही मानो कोई ज़रूरी बात याद कर रही हो। फिर उसके होंठों पर एक अपराधी की और हल्की-सी मुस्कान नज़र आई।

"नहीं... बिल्कुल नहीं! मैं तो कभी यहां न रहती। आलसी बनकर रहना खटकने लगता है, ऐसे तो आदमी धीरे-धीरे ख़त्म हो जाता है। ऐसा भी तो कोई नहीं जिसके

सामने अपनी ख़ुशी ज़ाहिर की जा सके। सभी ओर मुर्दा मछलियां हैं। अच्छा हो अगर मछुए जल्द ही मछलियां मारने के लिये आ जायें। अरे हां, अब तो मार्च ख़त्म होनेवाला है। मैं तो ज़िन्दा लोगों के बीच जाने के लिये तड़प रही हूं।"

"तो क्या हम ज़िन्दा लोग नहीं?"

"हां, हैं तो! मगर जैसे ही सड़ा-सड़ाया और बचा-खुचा आटा एक हफ़्ते बाद ख़त्म हो जायेगा और जब कोई भयानक बीमारी सारे जिस्म पर धावा बोलेगी, तब देखूंगी कि तुम कैसी तान अलापोगे? फिर प्यारे तुम्हें यह भी तो भूलना नहीं चाहिये कि आज तन्दूर से लगकर बैठने का ज़माना नहीं है। देखो न, वहां हमारे साथी मोर्चा ले रहे हैं, अपना ख़ून बहा रहे हैं। एक-एक आदमी मानी रखता है। ऐसे समय में मैं आराम से बैठकर मज़े नहीं उड़ा सकती। बेकार ही तो मैंने फ़ौज में भर्ती होते वक़्त क़सम नहीं खाई थी।"

लेफ़्टीनेन्ट की आंखों में आश्चर्य की चमक झलक उठी।

"क्या मतलब है तुम्हारा? फिर से फ़ौज में लौटने का इरादा रखती हो?"

"तो और क्या?"

लेफ़्टीनेन्ट दरवाज़े की चौखट से तोड़े हुए लकड़ी के एक टुकड़े से चुपचाप खेलता रहा। फिर उसने गहरे चश्मे की सी गहरी आवाज़ में कहा—

"अजीब लड़की हो तुम! देखो, तुम्हें यह कहना चाहता था माशा! मैं तंग आ गया हूं इस सारी बकवास से! कितने बरस हो गये ख़ून बहते हुए, नफ़रत की आग जलते हुए। जन्म से ही मैं सिपाही नहीं था। कभी तो मेरी भी इन्सान के जैसी, अच्छी ज़िन्दगी थी। जर्मनी से युद्ध होने के पहले मैं विद्यार्थी था, भाषा और साहित्य पढ़ता था, अपनी प्यारी और विश्वसनीय किताबों की दुनिया में रहता था। ढेरों किताबें थीं मेरे पास। मेरे कमरे की तीन तरफ़ की दीवारें नीचे से ऊपर तक किताबों से अटी पड़ी थीं। उन दिनों कभी-कभी ऐसा होता कि पीटर्सबर्ग में शाम को कुहासा सड़क के राहगीरों को अपने पंजे में दबोच लेता, उन्हें मानो निगल जाता। तब मेरे कमरे में अंगीठी ख़ूब गर्म होती, नीले शेडवाला लैम्प जलता होता। आराम-कुर्सी में किताब लेकर बैठा हुआ मैं अपने को बिल्कुल ऐसे ही अनुभव करता जैसे कि इस समय – सभी तरह की चिन्ताओं से मुक्त। आत्मा खिल उठती, उसके चटकने तक की आवाज़ भी सुनाई देती। वसन्त में बादाम के पेड़ की तरह उसमें फूल खिलते। समझती हो?"

"हम ..." मर्यूत्का के कान खड़े हो गये थे।

"फिर क़िस्मत का लिखा वह दिन आया जब यह सब कुछ ख़त्म हो गया, टुकड़े-टुकड़े हो गया, तार-तार

होकर हवा में उड़ गया ... वह दिन मुझे ऐसे याद है मानो कल की ही बात हो। मैं अपने देहाती बंगले के बरामदे में बैठा था और मुझे यह तक याद है कि कोई किताब पढ़ रहा था। सूर्यास्त हो रहा था, सभी ओर लाल रक्त फैला हुआ था। गाड़ी द्वारा पिता शहर से आये। उनके हाथ में अख़बार था, ख़ुद परेशान थे। उन्होंने सिर्फ़ एक शब्द कहा, मगर वह एक शब्द ही पारे की तरह भारी, मौत की तरह भयानक था ... जंग। यह था वह शब्द – सूर्यास्त की लाली की तरह ख़ूनी। पिता ने इतना और कहा – 'वादिम, परदादा, दादा और पिता ने देश की पुकार के सम्मुख सदा सिर झुकाया। आशा करता हूं कि तुम भी?' पिता की आशा, निराशा नहीं हुई। मैंने किताबों से विदा ली। तब मैंने सच्चे दिल से ही ऐसा निर्णय किया था ... "

"एकदम हिमाकत!" मर्यूत्का कंधे झटककर चिलाई। "यह तो बिल्कुल वही बात हुई कि अगर मेरा बाप नशे में धुत्त होकर दीवार से अपना सिर दे मारे तो मुझे भी ज़रूर ऐसा ही करना चाहिये? मेरी समझ में यह बात नहीं आती।"

लेफ़्टीनेन्ट ने गहरी सांस ली।

"हां ... तुम यह नहीं समझ पाओगी। कभी तुम्हें अपनी छाती पर यह बोझ नहीं उठाना पड़ा। कुल का

नाम, मान-प्रतिष्ठा, कर्त्तव्य ... हमें बहुत एहसास था इसका।"

"तो क्या हुआ? मैं भी अपने दिवंगत पिता को बहुत प्यार करती थी। पर यदि उसका दिमाग़ चल निकलता तो मेरे लिये उसके क़दमों पर चलना ज़रूरी नहीं था। तुम्हें चाहिये था कि उन्हें उनका रास्ता दिखा देते।"

लेफ़्टीनेन्ट मुंह बनाकर कटुता से मुस्कराया।

"नहीं दिखाया उन्हें उनका रास्ता। लड़ाई ने ही मुझे अपने ख़ूनी रास्ते पर घसीट लिया। अपने हाथों से मैंने अपना यह मानवता प्रिय हृदय बदबू के ढेर में, विश्व-मरघट में दफ़ना दिया। फिर क्रान्ति हुई। मैंने उस पर प्रियतमा की भांति विश्वास किया ... मगर उसने ... मैं कितने ही बरसों तक ज़ार की फ़ौज में अफ़सर रह चुका था, मगर कभी मैंने किसी सिपाही पर उंगली तक नहीं उठाई थी। फिर भी मुझे गोमेल स्टेशन पर भगोड़ों ने पकड़ लिया, मेरे पद-चिह्न फाड़ डाले, मेरे मुंह पर थूका, चेहरे पर गन्दगी पोत दी। भला क्यों? मैं भागा और उराल जा पहुंचा। मातृभूमि पर मेरा विश्वास तब भी बाक़ी था। मैं फिर से लड़ने लगा – रौंदी गयी मातृभूमि के लिये, उन पद-चिह्नों के लिये, जिनका इतना अपमान किया गया था। लड़ा और यह अनुभव किया कि मेरी कोई मातृभूमि नहीं रही, कि मातृभूमि भी क्रान्ति

की भांति ढोल में पोल है। दोनों ही ख़ून के प्यासे हैं। पद-चिह्नों के लिये लड़ने में कोई तुक नहीं था। मुझे याद आई सच्ची, एकमात्र मानवीयतापूर्ण मातृभूमि की – विचारों की। किताबों की याद हो आई मुझे। यही चाहता हूं कि उनके पास लौट जाऊं, उनसे क्षमा मांगूं, उन्हीं के साथ रहूं और मानवजाति को उसकी मातृभूमि, क्रान्ति, उसके रक्तपात के कारण ठोकर मार दूं।"

"समझी! मतलब यह है कि दुनिया टूककर दो टुकड़े हुई जा रही है, लोग सच की तलाश कर रहे हैं, ख़ून बहा रहे हैं और तुम नर्म-नर्म सोफ़े पर क़िस्से-कहानियां पढ़ोगे?"

"मैं नहीं जानता ... और जानना भी नहीं चाहता," लेफ़्टीनेन्ट परेशान होकर चिल्लाया और उछलकर खड़ा हो गया। "सिर्फ़ इतना जानता हूं कि प्रलय की घड़ी नज़दीक है। तुमने ठीक ही कहा है कि पृथ्वी टूटकर दो टुकड़े हुई जा रही है। टुकड़े-टुकड़े हुई जा रही है बुढ़िया कहीं की! वह सड़-गल चुकी है, खण्ड-खण्ड हो रही है। वह एकदम ख़ाली है, उसकी सारी दौलत लूट ली जा चुकी है। वह इसी खोखलेपन की वजह से ख़त्म हुई जा रही है। कभी वह जवान थी, लहकती-महकती थी, उसमें बहुत कुछ छिपा पड़ा था। उसमें नये-नये देशों की खोज, अनजाने धन-दौलत को ढूंढ़ पाने का आकर्षण था।

वह सब कुछ ख़त्म हो चुका, उसमें से कुछ नया खोजने को बाक़ी नहीं रहा। आज मानवजाति की सारी समझ-बूझ इसी बात में लगी हुई है कि जो कुछ उसके पास है उसे ही बचाकर रख सके, जैसे-तैसे एक शताब्दी, और एक वर्ष, और एक घड़ी बीत जाये। तकनीक। मुर्दा गणित। और विचार जिन्हें गणित ने दीवालिया बना दिया है, ये सभी मानव के विनाश की समस्याओं के समाधान में लगे हुए हैं। अधिक से अधिक लोगों का नाश ज़रूरी है ताकि बाक़ी लोग अपनी तोंदें और जेबें अधिक फुला सकें। भाड़ में जाये यह सब! अपने सत्य के सिवा, किसी दूसरे सत्य की मुझे ज़रूरत नहीं। तुम्हारे बोल्शेविकों ने ही भला कौनसा सत्य खोज निकाला है? इन्सान की जीती-जागती आत्मा को क्या आर्डर और राशन में नहीं बदल डाला? बस, बहुत हो चुका! मैं इससे भर पाया! अब अपने हाथों पर ख़ून के और धब्बे नहीं लगाना चाहता!"

"वाह रे, दूध के धोये? हाथ पर हाथ धरकर बैठनेवाले? तुम यही चाहते हो न कि तुम्हारी जगह दूसरे लोग रास्ते का कूड़ा-करकट साफ़ करें?"

"हां! बेशक करें! जहन्नुम में जाये यह सब! जिन्हें यह पसन्द है वे इस पचड़े में पड़ें। सुनो माशा! जैसे ही यहां से छुटकारा पायेंगे, सीधे काकेशिया जायेंगे। सुख़ूमी के क़रीब मेरा एक छोटा-सा बंगला है। वहां

पहुंचूंगा और किताबें लेकर बैठ जाऊंगा। और बस जहन्नुम में जाये दुनिया! चुपचाप और शान्तिपूर्ण जीवन बिताऊंगा। मुझे अब सच की और ज़रूरत नहीं – मैं अमन चाहता हूं। और तुम पढ़ो-लिखोगी। तुम तो पढ़ना चाहती हो न? तुम्हीं तो शिकायत करती हो कि पढ़ नहीं पाईं। अब पढ़ना। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करूंगा। तुमने मुझे मौत के मुंह से निकाला है, मैं यह तो नहीं भूल सकता।"

मर्यूत्का उछलकर खड़ी हो गई। तीरों की तरह उसने शब्दों की झड़ी लगा दी –

"तो मैं तुम्हारे शब्दों का यह मतलब समझूं कि पंखोंवाले नर्म-नर्म बिस्तर पर तुम्हारी बगल में लेटी रहूंगी जबकि दूसरे लोग सच के लिये अपना ख़ून बहाते रहे होंगे। मैं मिठाइयां ढकोसती रहूंगी जबकि हर मिठाई पर किसी के ख़ून के धब्बे होंगे? यही कहना चाहते हो न तुम?"

"ऐसे रूखेपन की क्या ज़रूरत है?" लेफ़्टीनेन्ट ने दुखी होकर कहा।

"रूखापन? तुम्हें तो हर चीज़ नर्म-नाज़ुक चाहिये न, मिसरी की तरह मीठी-मीठी! नहीं, यह नहीं हो सकता। ज़रा सुनो! तुम बोल्शेविकों के सत्य पर नाक-भौं चढ़ाते हो। कहते हो कि तुम उस सच को जानना नहीं

चाहते। मगर उस सत्य को तुमने कभी जाना भी? जानते हो वह किस चीज़ से तर-ब-तर है? किस तरह लोगों के पसीने और आंसुओं से भीगा हुआ है?"

"नहीं जानता," लेफ़्टीनेन्ट ने मुरझाये हुए ढंग से उत्तर दिया। "मगर मुझे सिर्फ़ यह ज़रूर अजीब-सी बात लगती है कि तुम लड़की होकर ऐसी कठोर, ऐसी उजड्ड हो गई हो कि इन नशे में धुत्त और गन्दे-मन्दे आवारागर्दों के साथ मार-काट में हिस्सा लेना चाहती हो।"

मर्यूत्का ने कूल्हे पर हाथ रख लिये। वह फट पड़ी—

"उनके तन गन्दे हो सकते हैं, मगर तुम्हारी तो आत्मा गन्दी है। मुझे शर्म आती है कि ऐसे आदमी पर लुट गई। बहुत कमीने, बहुत बुज़दिल हो तुम। प्यारी माशा, हम तुम सुख-चैन से टांगें फैलाकर बिस्तर पर लेटेंगे," उसने चिढ़ाते हुए कहा। "दूसरे ख़ून-पसीना एक करके धरती की काया पलट रहे हैं, और तुम? तुम कुत्ते के पिल्ले हो!"

लेफ़्टीनेन्ट का चेहरा सुर्ख़ हो गया। उसके पतले होंठ भिंचकर एक रेखा जैसे बन गये।

"ज़बान को लगाम दो! अपने को भूल रही हो तुम ... कमीनी औरत!"

मर्यूत्का एक क़दम आगे बढ़ी, उसने हाथ उठाया और लेफ़्टीनेन्ट के खूंटियों से भरे, कमज़ोर-से चेहरे पर कसकर तमाचा जड़ दिया।

लेफ़्टीनेन्ट पीछे हटा, वह कांप रहा था और उसकी मुट्ठियां कसी हुई थीं। उसने फुंकारते हुए कहा—

"ख़ुशक़िस्मती समझो कि औरत हो! फूटी आंखों तुम्हें नहीं देखना चाहता ... नीच कहीं की!"

वह झोंपड़ी में चला गया।

भौचक्की-सी मर्यूत्का अपनी दर्द करती हुई हथेली को देखती रही, फिर उसने हाथ झटका और मानो अपने आप से ही कहा—

"बड़ा आया नवाबज़ादा! मछली का हैज़ा!"

दसवां अध्याय जिसमें लेफ़्टीनेन्ट गोवोरूख़ा-ओत्रोक ज़मीन को हिला देनेवाला धमाका सुनता है और कहानीकार कहानी के अन्त की ज़िम्मेदारी से किनारा कर लेता है

झगड़ा होने के तीन दिन बाद तक लेफ़्टीनेन्ट और मर्यूत्का के बीच कोई बातचीत न हुई। मगर सुनसान द्वीप पर उनके लिये एक दूसरे से अलग रहना संभव नहीं था। फिर वसन्त भी आ गया था, सो भी एकदम ही और ख़ासी गर्मी लेकर।

द्वीप को बर्फ़ की जो पतली सी तह ढके हुए थी वह कई दिन पहले ही वसन्त के नन्हे-मुन्ने और सुनहरे पैरों तले

रौंदी जा चुकी थी। सागर के ग़हरे नीले दर्पण की पृष्ठभूमि में अब तट ने पीला रंग धारण कर लिया था।

दोपहर के समय रेत जलने लगती। उसे छूने से हथेलियां जल उठतीं।

सूरज गहरे-नीले आकाश में सोने के थाल की तरह घूमता। वसन्ती हवाओं ने उस पर पालिश करके उसे जगमगा दिया था।

द्वीप पर ये दो व्यक्ति थे, धूप, हवाओं और बीमारी के सताये हुए। ये सब उन्हें बेहद परेशान कर रहे थे। ऐसे में लड़ाई-झगड़ा करने में कोई नहीं था।

वे दोनों सुबह से शाम तक रेत पर लेटे रहते, टकटकी बांधकर उस गहरे नीले दर्पण को देखते रहते, उनकी सूजी हुई आंखें किसी पाल के निशान को ढूंढ़ती रहतीं।

"मैं अब और बर्दाश्त नहीं कर सकती! अगर तीन दिन तक मछुए नहीं आये तो क़सम खाकर कहती हूं कि मैं एक गोली अपने सिर के पार कर दूंगी!" मर्यूत्का ने एक दिन निराश होकर अन्यमनस्क नीले सागर की ओर देखते हुए कहा था।

लेफ़्टीनेन्ट ने धीरे से सीटी बजाई।

"मुझे तो कमीना और बुज़दिल कहा था और अब तुम देखती हो कि ख़ुद क्या हो! थोड़ा और सब्र करो—

सरदार बन जाओगी। तुम्हारा रास्ता बिल्कुल सीधा है– आवारागर्दों के किसी टोले की सरदार बन जाओगी।"

"तुम फिर क्यों ये बीती हुई बातें ले बैठे हो? वही पुराना पचड़ा! ठीक है कि मुझे गुस्सा आ गया था। इसीलिये तुम्हें भला-बुरा कहा था क्योंकि ऐसा करना ज़रूरी था। यह जानकर मेरे दिल को गहरी चोट लगी थी कि तुम बिल्कुल निकम्मे हो, बिल्कुल कायर हो। मुझे दुख होता है कि तुम ऐसे हो। तुमने तो मेरे दिल में घर कर लिया है। मेरा दिमाग़ ख़राब कर डाला है, नीली आंखोंवाले शैतान!"

लेफ़्टीनेन्ट ने ज़ोर का ठहाका लगाया और गर्म रेत पर चित लेटकर हवा में अपनी टांगें लहराने लगा।

"क्या तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं चल निकला?" मर्यूत्का ने कहा।

लेफ़्टीनेन्ट ने फिर ज़ोर का ठहाका लगाया।

"अरे ओ, गूंगे! कुछ बोलता क्यों नहीं!"

लेकिन लेफ़्टीनेन्ट तब तक अपने ठहाके लगाता रहा जब तक कि मर्यूत्का ने उसकी पसलियों में अपनी उंगलियां नहीं चुभोईं।

लेफ़्टीनेन्ट उठा और उसने हंसी के कारण आंखों में आ जाने वाले आंसुओं की बूंदें साफ़ कीं।

"यह तुम ठहाके किस बात पर लगा रहे हो?"

"ख़ूब लड़की हो तुम, मरीया फ़िलातोव्ना, किसी को भी इस तरह हंसा सकती हो। मुर्दा भी तुम्हारे साथ नाचने लगेगा!"

"क्यों नहीं? तुम्हारे ख़्याल के मुताबिक तो उस लट्टू की तरह भंवर में चक्कर लगाना अच्छा है जो न एक किनारे हो, न दूसरे? ख़ुद भी चक्कर में रहे और दूसरे को भी चक्कर में डाल दे?"

लेफ़्टीनेन्ट ने फिर से क़हक़हा लगाया। उसने मर्यूत्का का कन्धा थपथपाया।

"तुम्हारी जय हो, नारियों की महारानी। मेरी प्यारी फ़ायडे! तुमने तो मेरी दुनिया ही बदल डाली, मेरी रगों में अमृत का प्रभाव पैदा कर दिया है। तुम्हारी उपमा के अनुसार मैं अब किसी भंवर में लट्टू की तरह चक्कर खाना नहीं चाहता। मैं ख़ुद महसूस कर रहा हूं कि अभी किताबों की दुनिया में जाने का वक़्त नहीं आया। नहीं, मुझे अभी और जीना है। अपने दांत और मज़बूत करने हैं, भेड़िये की तरह काटते फिरना है ताकि मेरे इर्द-गिर्द के लोग मेरे दांतों से डर जायें!"

"क्या मतलब? क्या सचमुच तुम्हारी अक़्ल ठिकाने आ गई?"

"हां, मेरी अक़्ल ठिकाने आ गई, प्यारी! ठिकाने आ गई मेरी अक़्ल! धन्यवाद, तुमने कुछ रास्ता दिखा

दिया। अगर हम किताबें लेकर बैठ जायेंगे और तुम्हें सारी दुनिया की बागडोर सौंप देंगे तो तुम लोग वह बेड़ा ग़र्क करोगे कि पांच पीढ़ियां ख़ून के आंसू रोयेंगी। बिल्कुल जाहिल हो तुम मेरी प्यारी। जब दो संस्कृतियों की टक्कर हो रही है तो बात एक किनारे होनी ही चाहिये। जब तक ..."

उसने बात बीच में ही छोड़ दी।

उसकी गहरी नीली आंखें क्षितिज पर जमी हुई थीं, उनमें ख़ुशी की चिंगारियां नाच रही थीं।

उसने समुद्र की ओर इशारा किया और धीमी तथा कांपती हुई आवाज़ में कहा—

"पाल।"

मर्यूत्का इस तरह उछलकर खड़ी हुई मानों उसमें बिजली दौड़ गई हो। उसने देखा—

दूर, बहुत दूर, क्षितिज की गहरी नीली रेखा पर एक सफ़ेद बिन्दु सा चमक रहा था, झलमला रहा था—एक पाल हवा में लहरा रहा था।

मर्यूत्का ने हथेलियों से अपनी छाती दबा ली। चिरप्रतीक्षित इस पाल पर विश्वास न करते हुए उसने उसपर अपनी आंखें गड़ा दीं।

लेफ़्टीनेन्ट उसकी बग़ल में आ गया। उसने मर्यूत्का के हाथ पकड़ लिये, खींचकर उन्हें छाती से अलग किया,

नाचने लगा और मर्यूत्का को अपने चारों ओर चक्कर देने लगा।

वह नाच रहा था, फटी पतलून में से अपनी पतली-पतली टांगों को ऊपर की ओर उछालता हुआ और अपनी कर्णकटु आवाज़ में गा रहा था—

"श्वेतपाल, श्वेतपाल, ए-का-की
सागर गहरा नीला है।
डां-डां-डां! डां-डां-डां!"

"बन्द करो यह बकवास!" मर्यूत्का ने ख़ुशी से हंसते हुए कहा।

"माशा मेरी प्यारी! पगली! सुन्दरियों की महारानी! अब जान बचने की सूरत निकल आई! अब हम बच गये!"

"शैतान, कम्बख़्त! देखते हो न कि तुम्हें भी इस द्वीप से इन्सानों की दुनिया में जाने की प्रबल चाह है!"

"है, प्रबल चाह है! कह तो चुका हूं मैं तुमसे कि मुझे इसकी बहुत चाह है!"

"ज़रा ठहरो... हमें उन्हें संकेत करना चाहिये। उन्हें इस तरफ़ बुलाना चाहिये!"

"इसकी क्या ज़रूरत है? वे ख़ुद ही इधर आ रहे हैं।"

"और अगर अचानक किसी दूसरे द्वीप की तरफ़ मुड़ गये तो? क़िर्ग़ीज़ों ने तो कहा था न कि यहां

अनगिनत द्वीप हैं। हो सकता है कि हमारे क़रीब से निकल जायें। जाओ झोंपड़ी में से एक बन्दूक़ उठा लाओ।"

लेफ़्टीनेन्ट झपटकर झोंपड़ी में गया। वह बन्दूक़ को हवा में ऊंचा उछालता हुआ फ़ौरन वापस आया।

"यह खेल बन्द करो!" मर्यूत्का चिल्लाई। "तीन गोलियां दाग़ दो।"

लेफ़्टीनेन्ट ने बन्दूक़ का कुन्दा कन्धे से लगाया। शीशे की सी ख़ामोशी को चीरती हुई तीन आवाज़ें हवा में गूंज गईं। हर गोली के दग़ने पर लेफ़्टीनेन्ट लड़खड़ाया। अब उसे इस बात का एहसास हुआ कि वह बहुत कमज़ोर हो गया है।

पाल अब साफ़ नज़र आने लगा था। वह बड़ा, कुछ कुछ गुलाबी और पीला था। वह मस्त पक्षी के पानी पर तैरते हुए पंख की भांति मालूम होता था।

"यह क्या बला है?" नाव को ध्यान से देखते हुए मर्यूत्का बड़बड़ाई। "कैसी नाव है यह? मछुओं की नाव जैसी तो बिल्कुल नहीं। उनसे तो बहुत बड़ी है।"

नाववालों ने गोलियों की आवाज़ सुन ली थी। पाल लहराकर दूसरी ओर झुक गया और नाव मुड़कर सीधी तट की ओर आने लगी।

गुलाबी-पीले पाल के नीचे, नीले सागर की पृष्ठभूमि में यह नाव काले धब्बे जैसी दिखाई दे रही थी।

"यह नाव तो मछलियों के इन्सपेक्टर की सी लगती है। मगर वे आजकल यहां किसलिये आये हैं, समझ में नहीं आ रहा," मर्यूत्का धीरे धीरे बड़बड़ाई।

नाव जब कोई सौ मीटर की दूरी पर रह गई तो वह बाईं ओर को घूमी। उसपर एक आदमी दिखाई दिया। उसने अपने दोनों हाथों का प्याला सा बनाकर मुंह के सामने किया और ज़ोर से पुकारकर कुछ कहा।

लेफ़्टीनेन्ट चौकन्ना हुआ। उसने अपने कानों पर ज़ोर दिया, बन्दूक़ को रेत पर फेंक दिया और दो ही छलांगों में पानी तक जा पहुंचा। उसने अपने हाथ फैलाये और ख़ुशी से मस्त होकर चिल्ला उठा – "हुर्रा! ये तो हमारे आदमी हैं! जल्दी कीजिये श्रीमान! जल्दी कीजिये!"

मर्यूत्का ने बहुत ध्यान से नाव को देखा। उसने पाया कि पतवार पर बैठे व्यक्ति के कन्धों पर सुनहरी फ़ीतियां झलमला रही हैं।

मर्यूत्का एक डरी-सहमी चिड़िया की तरह फड़फड़ाई।

उसके स्मृतिपट पर एक चित्र उभरा। चित्र यह था–

बर्फ़ ... नीला पानी ... येव्स्युकोव का चेहरा। उसके शब्द – "अगर सफ़ेद गार्डों के हत्थे चढ़ जाओ तो इसे ज़िन्दा उनके हवाले न करना।"

उसने आह भरी, अपने होंठ काटे और झपटकर बन्दूक़ उठा ली।

वह बदहवास सी चिल्ला उठी—"अरे, कम्बख़्त अफ़सर! लौट वापिस! मैं तुम्हें कहती हूं ... लौट आओ, कम्बख़्त!"

लेफ़्टीनेन्ट टखनों तक पानी में खड़ा हुआ हाथ हिलाता रहा।

अचानक उसे अपने पीछे ज़मीन फटने के समान ज़ोर का धमाका सुनाई दिया। ऐसा धमाका मानो आग और तूफ़ान एक साथ पृथ्वी पर टूट पड़े हों। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह इस मुसीबत से बचने के लिये एक तरफ़ को उछला और टुकड़े टुकड़े हुई जा रही पृथ्वी का धमाका ही वह आख़िरी आवाज़ थी जो उसने सुनी।

मर्यूत्का भौचक्की सी गिरे हुए जवान को देख रही थी। अनजाने ही वह अपना बायां पांव अकारण ही ज़मीन पर लगातार पटक रही थी।

लेफ़्टीनेन्ट सिर के बल पानी में जा गिरा। उसके फटे हुए सिर से लाल धारें बह-बहकर समुद्र के दर्पण में घुलमिल रही थीं।

मर्यूत्का एक क़दम आगे बढ़ी, फिर झुकी। वह चीत्कारकर उठी, उसने अपनी वर्दी को छाती से फाड़ डाला और बन्दूक़ नीचे गिरा दी।

पानी में रग के कोमल धागे के साथ लटकी हुई आंख तैर रही थी। उसमें आश्चर्य और दुख की झलक थी। समुद्र सी नीली आंख मर्यूत्का को देख रही थी।

वह घुटनों के बल पानी में गिर पड़ी। उसने बेजान और भुरकस हुए सिर को उठाने की कोशिश की और अचानक लाश पर ढह पड़ी। वह तड़पने लगी, उसने अपना चेहरा ख़ून से लथपथ कर लिया और दुखभरी आवाज़ में चिल्लाने लगी—

"मेरे प्यारे! यह क्या कर डाला मैंने? आंखें खोलो! मेरी तरफ़ देखो मेरे प्यारे! अरे ओ, नीली आंखों वाले!"

नाव रेत में पहुंचकर रुक गई। इसमें सवार लोग उन्हें ऐसे देख रहे थे मानो उन्हें काठ मार गया हो।

१९२४

कोन्स्तानतीन फ़ेदिन (जन्म १८९२) एक प्रमुख सोवियत लेखक और सामाजिक कार्यकर्त्ता। आपको ज़बान पर बहुत कमाल हासिल है। आप की 'पहली ख़ुशियां' और 'असाधारण गर्मी' नामक दो खंडों वाली रचना बहुत ख्याति प्राप्त कर चुकी है। इन रचनाओं में क्रान्ति और गृह-युद्ध के वर्षों का चित्र-चित्रण किया गया है।

'लेनिन का चित्र', यह कहानी १९३६ में लिखी गई।

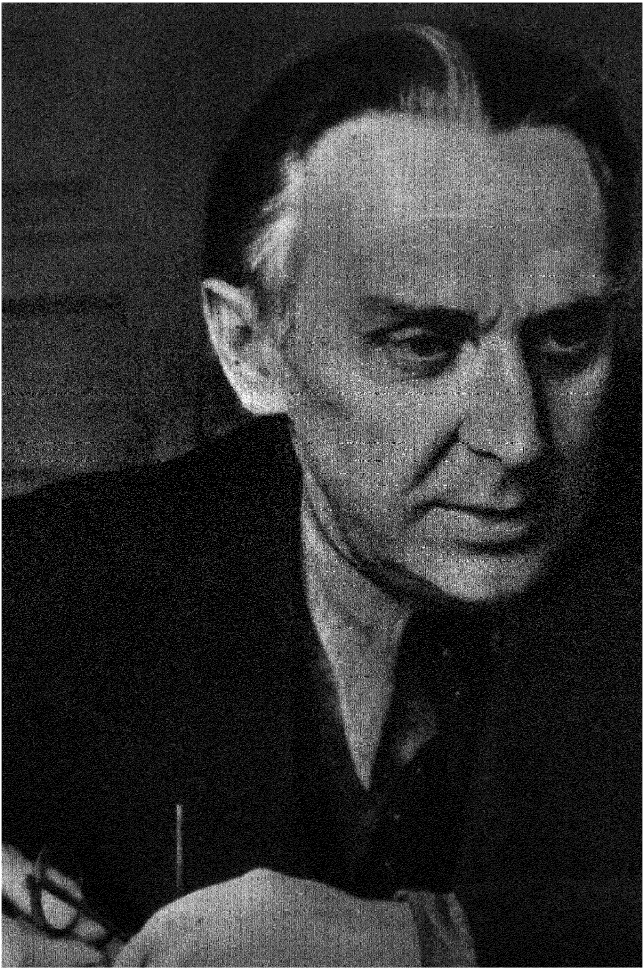

कोन्स्तानतीन फ़ेदिन

लेनिन का चित्र

१

गर्मियों की एक दोपहर को युवा चित्रकार सेर्गेई शुमीलिन को एक समाचारपत्र के कार्यालय से टेलीफ़ोन पर यह सन्देश मिला – "हमारे कार्यालय में चले आइये, काम-काज के सिलसिले में कुछ बातचीत करनी है।" चित्रकार ने तूलिका एक तरफ़ रखी, हाथ धोये, ट्यूनिक की जेब में एक नोटबुक और पेंसिलें डालीं और चल दिया।

दूकानों की खिड़कियों में लाल कपड़े के फ़्रेमों से सुसज्जित लेनिन के छविचित्र शोभा दे रहे थे। जिधर भी नज़र उठती थी उधर ही मोटे-मोटे अक्षरों में यह लिखा हुआ नज़र आ रहा था – "तीसरी कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ज़िन्दाबाद!" सेर्गेई खिड़कियों की ओर देखता हुआ मन ही मन सोच रहा था – शायद यह ठीक ही है कि लेनिन वास्तव में जैसे हैं फ़ोटो में हू-ब-हू वैसे ही नज़र आते हैं। मगर चित्रकार की बात दूसरी ही होती है। वह चेहरे की विशेषताओं की बारीकियों को, उतार-चढ़ाव को कहीं अधिक अच्छे ढंग से स्पष्ट कर सकता है। उसे ख़्याल आया कि अगर लेनिन को सामने बिठाकर उनका चित्र बनाने का अवसर कभी हाथ लग जाये, तब तो मज़ा ही आ जाये।

समाचारपत्र के कार्यालय में उससे कहा गया –

"देखिये काम यह है कि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कांग्रेस में बहुत-से विदेशी प्रतिनिधि भी हिस्सा ले रहे हैं। वे लोग आज 'श्रम-प्रासाद' में जमा हो रहे हैं, आप वहां चले जायें। इनमें से किसी एक का चित्र बना दीजिये। कहिये, राज़ी हैं?"

"हां।"

"कल हम आपको कांग्रेस के उद्घाटन-समारोह का

अनुमतिपत्र दे देंगे। जिस भी प्रतिनिधि का चाहें चित्र बना डालें और अगर लेनिन दिखाई पड़ जायें तो उनका . . ."

"लेनिन का?" झटपट टोकते हुए सेर्गेई ने कहा। उसे कुछ ही क्षण पहले दिमाग़ में आनेवाले ख़्याल का ध्यान हो आया और वह मुस्करा दिया। "इसे कहते हैं क़िस्मत का खेल! कैसे अजीब ढंग से मेरी चाह पूरी हो रही है," उसने सोचा।

"हां, अगर ऐसा सम्भव हो जाये तो हमारे लिये लेनिन का चित्र बना दीजिये।"

"ठीक है," सेर्गेई ने जवाब दिया।

प्रसन्न चित्रकार ट्राम में बैठकर 'श्रम-प्रासाद' की ओर चल दिया। ट्राम की खुली खिड़कियों में से जब कहीं उसे लेनिन का फ़ोटो नज़र आता वह फिर से उस असाधारण संयोग के बारे में सोच कर आश्चर्यचकित रह जाता। रास्ते में, अपनी कल्पना में ही उसने लेनिन का पूरा चित्र बना डाला। वह कैसी सुन्दर-सधी हुई रेखायें खींचेगा, प्रेरणा की तरंगों में बहकर चित्र बनायेगा, निखरी हुई और सजीव होंगी उसकी रेखायें। उसने यह भी तय कर लिया कि अपने साथ कौनसी एल्बम ले जायेगा, किन पेंसिलों की उसे ज़रूरत होगी और इस रेखाचित्र के आधार पर कैसे वह बाद में बड़ा-सा छविचित्र तैयार करेगा।

२

चित्रकार 'श्रम-प्रासाद' में पहुंचा। वहां बेहद शोर था। सीढ़ियों में, दालानों में, सभी जगह विदेशी मेहमान नज़र आ रहे थे। रूसी उन्हें घेरे हुए थे, उन्हें सोवियत जनतन्त्र के जीवन के बारे में बता रहे थे।

पोलैंड से जंग चल रही थी। पोलिश फ़ौजों के दांत खट्टे किये जा चुके थे। लाल फ़ौज, पीठ दिखाकर भागनेवाली पोलिश सेना का पीछा कर रही थी। क्रीमिया में सफ़ेद गार्डों के मुखिया व्रांगेल का भी अन्त किया जा चुका था। मगर शान्ति की मंज़िल अभी बहुत दूर थी। दुश्मनों ने सभी ओर से सोवियतों की युवा धरती की नाकाबंन्दी कर रखी थी। विदेशों से पेत्रोग्राद पहुंचना बहुत कठिन था। विदेशी मेहमान स्कैंडिनेविया का चक्कर काटकर समुद्री रास्ते से कांग्रेस में हिस्सा लेने के लिये आये। रास्ते में उन्हें तरह तरह की कठिनाइयों और क़दम-क़दम पर ख़तरों से दो-चार होना पड़ा। मगर सोवियतों की धरती को देखने की तीव्र आकांक्षा उन्हें बरबस यहां खींच लाई थी, सभी तरह की कठिनाइयों से जूझते हुए वे यहां पहुंचे थे। संसार के कोने-कोने से लोग यहां आये थे।

सेर्गेई एक जर्मन प्रतिनिधि से मिला – नाटा, कूबड़ निकला हुआ, चेहरे पर एक ख़ास शान बरसती हुई और

धीमी चाल। वह ब्राऊनश्वेग का वासी और पेशे से दर्ज़ी था। जर्मनी की क्रान्ति के समय उसने तीन दिन तक ब्राऊनश्वेग के "स्वतन्त्र" जनतन्त्र का नेतृत्व किया था। बाद में जर्मन सामाजिक-जनवादियों ने विश्वासघात करके इस जनतन्त्र का अन्त कर दिया था।

चित्रकार ने अपना इरादा ज़ाहिर किया और यह प्रतिनिधि उसी समय 'पोज़' बनाने को राज़ी हो गया। मगर वह सोवियत सत्ता से सम्बन्धित विवरणों के वाद-विवाद में लगातार उलझा रहा। यह बात किसी तरह भी उसकी समझ में नहीं आ रही थी कि सभी तरह के व्यापार का अन्त करना और मालों के विभाजन को अपने हाथ में लेना, सोवियत सत्ता के लिये क्यों ज़रूरी था।

ये लोग छज्जे में खड़े थे। इनके सामने 'श्रम-प्रासाद' के सामनेवाला चौक बड़ी अस्त-व्यस्त हालत में दिखाई पड़ रहा था। वहां इस बात के बहुत-से चिह्न नज़र आ रहे थे कि जनरल युदेनिच की चढ़ाई के वक़्त कैसे सिर-धड़ की बाज़ी लगाकर पेत्रोग्राद की रक्षा की गई थी। सड़क पर जल्दी में खोदी गई ख़न्दकें क़ायम थीं, बुलवार में बेरीकेड की बची-बचायी चीज़ें पड़ी थीं – लट्ठे और रेत की बोरियां। सेर्गेई ने कहा –

"दुश्मनों का दल का दल हम पर टूट पड़ा है। हमारे दिमाग़ों में बस एक ही बात है – हमें उनका मुंह तोड़ना है।"

"यह मैं समझता हूं, समझता हूं," ब्राऊनश्वेगवासी ने अपनी श्रेष्ठता जताते और कंधों के बीच धंसे हुए अपने सिर को एक ही अन्दाज़ में हिलाते हुए कहा। "मगर आपके यहां तो फुटकर मालों की छोटी-छोटी दूकानें भी बन्द पड़ी हैं। इसमें भला क्या तुक है?"

"दूकानदार, हमारे दुश्मनों का साथ दे रहे हैं।"

"यह मैं समझता हूं, समझता हूं। पर अगर मेरा बटन टूट जाये तो कहां ख़रीद पाऊंगा?"

लगता था कि इस बहस का कभी अन्त नहीं हो सकेगा। सेर्गेई को अचानक ऊब-सी अनुभव हुई। उसे महसूस हुआ कि अगर वह ब्राऊनश्वेगवासी का रेखाचित्र बनाने बैठ भी गया तो बात कुछ बने-बनायेगी नहीं।

"देखिये, मैं कल कांग्रेस के समय आपका चित्र बनाऊंगा," सेर्गेई ने कहा।

जर्मन बड़े मधुर ढंग से इसके लिये राज़ी हो गया। चित्रकार विदा लेकर झटपट वहां से चल दिया।

३

अगले दिन जेब में अनुमतिपत्र डाले हुए सेर्गेई ने कांग्रेस के उद्घाटन में पहुंचने की जल्दी की। मगर 'उरीत्स्की-प्रासाद' में पहुंचकर उसने प्रासाद के हॉल को

खचाखच भरा हुआ पाया। गैलरियों में जीते-जागते सिरों की पांतें हिल-डुल रही थीं। बातचीत की धीमी गूंज चारों ओर सुनाई दे रही थी। सभी ओर पक्षियों के सफ़ेद पंखों की भांति अख़बार फैले हुए थे। बड़ी उमस अनुभव हो रही थी। एम्फ़ीथियेटर में लोग बराबर अपने कोट उतारते जा रहे थे, अख़बारों और रूमालों से हवा कर रहे थे। असंख्य बिन्दुओं के हिलने-डुलने से आंखें चकाचौंध हुई जा रही थीं। प्रतीक्षा के कारण वातावरण में एक तनाव-सा था।

सेर्गेई को मंच के सामने पत्रकारों के बॉक्स में जगह मिल गई। यहां से सभापतिमंडल के मंच की सीटें बिल्कुल साफ़ नज़र आती थीं। उसने एल्बम खोली और चित्र बनाने के लिए तैयार होना शुरू किया।

अचानक गैलरी का शोर बढ़ गया, तालियों की गड़गड़ाहट में सभी आवाज़ें डूब गईं और तालियों का यह ग्लैशियर नीचे की ओर फिसलने लगा। सेर्गेई ज़रा उठा, उसने पूरे हॉल पर उड़ती-सी एक नज़र डाली और फिर मंच की ओर देखा। मगर वहां उसे कोई भी दिखाई न दिया। फिर से उसने हॉल की ओर देखा, सहसा एल्बम उसके हाथ से छूट गई और वह तालियां बजाने लगा।

सेर्गेई ने देखा कि उसके सामने, हॉल के बीचोंबीच से, भिन्न-भिन्न जातियों के प्रतिनिधियों के आगे-आगे लेनिन

जा रहे हैं। वे सिर झुकाये हुए जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ा रहे थे। ऐसा लगता था मानो वे अपनी ओर आते हुए हवा के लहरे को सिर से चीरना चाहते हों, जल्दी से जल्दी लोगों की नज़रों की ओट में हो जाना चाहते हों ताकि तालियों की उमड़ती हुई बाढ़ थम जाये। लेनिन मंच पर चढ़े और जब तक तालियां बजती रहीं, वे लोगों की नज़रों से बचने की कोशिश करते रहे।

लेनिन की झलक मिलते ही हॉल के सभी दरवाज़े खुल गये। छज्जों-गैलरियों में लाल-लाल फूलों से भरी हुई बड़ी-बड़ी झाबियां लाई गईं। फूल हाथों हाथ आगे बढ़ते चले गये, बेंचों की लम्बी-लम्बी क़तारों के आख़िरी सिरे तक पहुंच गये और लाल झण्डों तथा लाल रंग की अन्य सजावटी चीज़ों से मिलकर एकरंग हो गये।

सेर्गेई ने हॉल में नज़र डाली तो क़रीब ही दो बुज़ुर्ग चित्रकारों को बैठे पाया। कुछ ही समय पहले तक वह उनका शागिर्द रह चुका था। वे अपनी सीटों पर बैठ भी चुके थे, पर सेर्गेई अभी तक खड़ा था। कुछ सोचकर उसने एल्बम खोली और पेंसिल हाथ में ली।

अचानक जब ख़ामोशी छा गई तो सेर्गेई ने लेनिन को फिर से देखा। लेनिन एम्फ़ीथियेटर की सीटों के बीच जल्दी से ऊपर को उठे थे। फ़ौरन ही लोगों की नज़र उन पर नहीं पड़ी। मगर नज़र पड़ने की देर थी कि फिर से

तालियां गूंजने लगीं। लेनिन, सीटों के बीच से जिस संकरे मार्ग पर लगभग भागते हुए जा रहे थे, वहां लोगों की भीड़ जमा हो गई। लेनिन एक व्यक्ति के बिल्कुल क़रीब जा पहुंचे और उन्होंने मुस्कराते हुए अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। यह व्यक्ति लेनिन से मिलने के लिये उठा। उसने बहुत शान्त भाव से लेनिन को नमस्कार किया। उसका एक किसान जैसा सधा हुआ अन्दाज़ था और वह आदर और संयम से मुस्करा रहा था। वे बातचीत जारी रखने के लिए एक दूसरे की ओर अधिकाधिक झुकने के लिए मजबूर होते गये क्योंकि तालियों का ज़ोर बढ़ गया था और लोगों ने सभी ओर से उन्हें घेर लिया था।

"अरे, यह तो जार्जियाई कम्युनिस्ट मीख़ा त्सख़ाकाया है," सेर्गेई ने सुना। "वह स्विटज़रलैंड में लेनिन के साथ रह चुका है!"

इनके गिर्द लोगों का घेरा तंग होने लगा। लेनिन ने अपने साथी का हाथ दबाया और रास्ता न देनेवाली भीड़ को चीरते हुए नीचे की ओर झपटे ताकि वापस जा सकें। यह स्पष्ट था कि उन्हें तालियों का शोर और लोगों की रेल-पेल अच्छी नहीं लग रही थी।

सेर्गेई, लेनिन के एक-एक क़दम को बहुत ध्यान से देख रहा था। उसे लगा कि वह दरमियाने क़द के और फुर्तीले लेनिन की गतिविधि की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण

विशेषताओं को अपने स्मृति-पट पर अंकित करने में सफल हो गया है। इतना ही नहीं, वह तो उन्हें काग़ज़ पर अंकित हुआ भी देख पाया है।

लेनिन सभापतिमण्डल की कुर्सियोंवाले मंच पर पहुंचे। वे घड़ी भर को आंखों से ओझल हुए और फिर से दिखाई दिये। सेर्गेई ने देखा कि कैसे उन्होंने जेब से काग़ज़ों का पुलिन्दा निकाला और रास्ते की सीढ़ियों पर बैठ गये। यह सब कुछ आन की आन में, अचानक और बहुत साधारण ढंग से हुआ। इससे बेहतर पोज़ की आशा करना बेकार था। सेर्गेई ने अनुभव किया कि उसके पास बैठे हुए चित्रकार तो रेखाचित्र बना भी रहे हैं। सेर्गेई ने उंगलियों के बीच पेंसिल जमाई, मगर लेनिन के चेहरे से अपनी दृष्टि नहीं हटा पाया।

लेनिन का सिर बहुत ही अच्छी तरह नज़र आ रहा था – बड़ा-सा, असाधारण, घड़ी भर में दिल-दिमाग़ पर अपनी छाप अंकित करनेवाला। लेनिन ने काग़ज़ अपने घुटने पर टिका लिये। उन्हें पढ़ते हुए उनका सिर कुछ और झुक गया। उनके ललाट की बनावट, उनकी चंदिया, उनकी गुद्दी पर के घुंघराले भूरे-पीले बाल, जो कालर को छूते थे, अजीब ढंग से लेनिन के समूचे व्यक्तित्व पर छाये हुए थे। सेर्गेई ने चाहा कि किसी ऐतिहासिक या सामायिक हस्ती में लेनिन की समानता खोज निकाले,

मगर नहीं, लेनिन सबसे एकदम भिन्न थे। उनके नाक-नक़्शे की हर विशेषता सर्वथा अनोखी, एकदम निराली ही थी।

आख़िर सेर्गेई ने काग़ज़ पर पेंसिल चलाई। पेंसिल धीरे से हिली-डुली और पलक झपकते में लेनिन के सिर की बनावट काग़ज़ पर उभर आई। सेर्गेई ने सिर ऊपर उठाया। लेनिन वहां नहीं थे।

४

सेर्गेई ने लेनिन को फिर उस समय देखा जब वे भाषण देने के लिए मंच पर आये।

लेनिन के मंच पर आते ही लोग बड़े उत्साह से, ज़ोर-शोर से तालियां बजाने लगे। इस शोर के ख़त्म होने तक उन्हें इन्तज़ार करना पड़ा। वे मंच पर खड़े हुए देर तक अपने काग़ज़ उलटते-पलटते रहे। उन्होंने हाथ ऊंचा उठाकर इशारा किया ताकि हॉल में किसी तरह शान्ति हो। फिर उन्होंने मानो चेतावनी देते हुए सभी ओर कड़ी नज़र से देखा। मगर लोगों के उमड़ते स्नेह के शोर में वे विवश एकाकी ही खड़े रहे। फिर सहसा उन्होंने जेब से घड़ी निकाली और खीझते हुए अंकों पर उंगलियां घुमाकर, घड़ी लोगों को दिखाई। मगर यह तदबीर भी काम न आई।

तब तंग आकर वे फिर काग़ज़ उलटने-पलटने लगे। वे तब तक यही करते रहे जब तक कि हॉल में जमा लोग, मानो अपना पूरा जोश निकालकर, शान्त नहीं हो गये और ख़ामोशी नहीं छा गई।

लेनिन ने भाषण शुरू किया।

सेर्गेई ने लेनिन को ऐसी हरकत में देखा, जो उनके भाषण के सार को व्यक्त करती थी। चित्रकार इसी बात का तो सपना देख रहा था, इसी रूप को तो वह काग़ज़ पर उतारना चाहता था। कुछ ही मिनट पहले उसने लेनिन की जिस मुखमुद्रा को बिल्कुल सही रूप में देखा था, वह भाषण देते हुए मानो बिल्कुल बदल गई और अब उसकी जगह नई, निरन्तर बदलती हुई मुखाकृति उभरने लगी। सेर्गेई एक के बाद एक ऐसी आकृति को अपने स्मृति-पट पर अंकित करता चला गया। लेनिन के चेहरे का एक के बाद एक नया रूप सामने आता गया, निरन्तर बदलता गया। सेर्गेई को इस बात का डर था कि लेनिन की मुखमुद्राओं को मन में उतारने का यह अवसर कहीं हाथ से न निकल जाये और इसलिये वह रेखाचित्र बनाने का निर्णय ही नहीं कर पाया। अब यह कहना भी मुश्किल हो गया था कि वह लेनिन के अन्दाज़, उनकी मुखाकृति को मानस-पट पर अंकित कर रहा था या भाषण सुन रहा था।

लेनिन की मुखाकृति और अन्दाज़ और उनके शब्दों में ऐसी एकरूपता थी कि सेर्गेई भौचक्का-सा रह गया। सारे शरीर की लचक भाषण के सार को व्यक्त कर रही थी। सेर्गेई को ऐसे अनुभव हुआ मानो तरल धातु को नये-नये सांचे में ढाला जा रहा हो। लेनिन के अन्दाज़, अंगों के हिलने-डुलने, और उनके शब्दों के बीच ऐसी एकरूपता थी कि श्रोताओं को उनके विचारों की आंच की गर्मी ज़ोरों से अनुभव हो रही थी।

लेनिन अपने भाषण में इंगलैंड का पर्दाफ़ाश कर रहे थे जो सहसा और अप्रत्याशित ही शान्ति का उपासक बन बैठा था। वह पराजित पोलैंड और सफ़ेद गार्डों के जनरल व्रांगेल को बचाने की फ़िक्र करते हुए इनके और सोवियत जनतन्त्र के बीच मध्यस्थ बनने का सुझाव रखा था। जब लेनिन ने पूरे हॉल से यह सवाल किया कि सारी दुनिया में वह "बेचैनी" क्यों फैल गई है जिसे इंगलैंड की बुर्जुवा सरकार ने व्यक्त किया है। तो उनका सारा शरीर इस व्यंग्यात्मक ढंग से हिला-डुला कि बुर्जुवा की "बेचैनी" और उसकी विश्व-सम्बन्धी राजनीति सभी की नज़रों में एक व्यंग्यपूर्ण चित्र बनकर रह गई।

लेनिन बार बार अपनी टिप्पणियों पर नज़र डालते। उन्होंने बहुत से आंकड़े भी प्रस्तुत किये, मगर ऐसा करते हुए घड़ी भर को भी वे ऊबा देनेवाले प्रोफ़ेसर जैसे प्रतीत

नहीं हुए। वे पूरे वक़्त श्रोताओं को अपनी गिरफ़्त में लिये रहे। उनकी ऊंची आवाज़ में थकान की झलक तक नहीं थी, उनकी भाषा सरल थी, उच्चारण कोमल था। वे कभी-कभी "र" की ध्वनि को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाते थे। इससे उनके भाषण में मानवता का और अधिक पुट आ जाता था, उसमें वास्तविक जीवन का रंग झलकने लगता था और वह श्रोताओं के हृदय को और अधिक छू लेता था।

कुछ ऐसे अनुभव करते हुए मानो वह भाषण का एक-एक शब्द सुन रहा है, सेर्गेई ने रेखाचित्र बनाना शुरू किया। उसने लेनिन का तनिक-सा ऊपर उठा हुआ सिर, फैले हुए हाथ, कमर की सीधी, मज़बूत और तनी हुई रेखा और गोल और उभरी हुई छाती, काग़ज़ पर उतारी। उसने एक रेखाचित्र एक तरफ़ रख दिया, दूसरा शुरू कर दिया, फिर तीसरा शुरू किया। मगर कभी तो लेनिन का चेहरा ढंग से नहीं बना तो कभी हाथ और कभी धड़ काग़ज़ पर नहीं उभरा। उसने हर बार पहले से अधिक कोशिश की, उस चीज़ पर ज़्यादा ज़ोर दिया जो उससे पहले के रेखाचित्र में बाक़ी रह गई थी। उसने, एक के बाद एक, एल्बम के अनेक पृष्ठों पर अपना हाथ आज़माया। आख़िर उसने डरते-डरते यह अनुभव किया कि वह अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाया है, उससे दूर जा पड़ा है।

सेर्गेई ने अपने उस्तादों की ओर नज़र डाली। उनमें से एक सिर झुकाये, बने हुए रेखाचित्र को रबड़ से मिटाने में व्यस्त था। उसकी चांद लाल हो रही थी। सेर्गेई को याद आया कि वह चित्रकार जब कोई चित्र बनाने में असफल रहता था तो सदा लाल हो उठता था। दूसरा चित्रकार पत्रकारों के बॉक्स से उठकर जा चुका था। उसने मंच के सामनेवाली क़तार में अपने लिए जगह ढूंढ़ ली थी और रेखाचित्र बनाने का इरादा छोड़-छाड़कर, लेनिन का भाषण सुन रहा था।

सेर्गेई के मन को अचानक इस डर ने आ दबोचा कि इस समय प्राप्त क्षण वह सदा के लिए गंवा बैठेगा। लेनिन का भाषण ख़त्म हो जायेगा और उसकी एल्बम में एक भी पूरा रेखाचित्र नहीं बन सकेगा। वह बॉक्स से बाहर आया और रेल-पेल करते हुए उसने दरवाज़े में से रास्ता बनाया। वहां लोग कंधे से कंधा जोड़े खड़े थे। वह नीचे जाकर मंच के सामनेवाली खुले स्थान पर खड़ा हो गया। वहां से लेनिन ज़्यादा अच्छी तरह और ऊंचे नज़र आ रहे थे। उसने मन ही मन तय किया कि यह सबसे अधिक उचित जगह है। मगर यहां बड़े-बड़े लैम्पों की रोशनी बाधा डाल रही थी। चित्रकारों के साथ साथ फ़ोटो कैमरे और सिने-कैमरे पकड़ में न आनेवाले, जीते-जागते लेनिन को किसी तरह गिरफ़्त में लेने को परेशान थे। चकाचौंध

करनेवाली तेज़ रोशनी, पल-पल बाद नज़र को चौंधियाये दे रही थी। सेर्गेई मंच के दूसरी ओर पहुंचा। वहां से लेनिन की छायाकृति ही नज़र आ रही थी क्योंकि पीछे से उनपर तेज़ प्रकाश पड़ रहा था। नहीं, पहलेवाली जगह ही सबसे अच्छी थी। जल्दी, बहुत जल्दी बॉक्स में ही लौटना चाहिए।

सेर्गेई की सीट पर कोई दूसरा व्यक्ति बैठ गया था, इसलिये उसे खड़े रहना पड़ा। मगर खड़े रहकर उसने अचानक यह देखा कि लेनिन सिर से पांव तक पूरे के पूरे नज़र आ रहे हैं। अब उनका वह पूरा व्यक्तित्व आंखों के सामने था जिसे आंखें ढूंढ़ रही थीं और जिसके बिना लेनिन का पूरा चित्र नहीं बन सकता था। सेर्गेई झटपट नया रेखाचित्र बनाने में जुट गया। उसे महसूस हुआ कि उसने जितनी तैयारी की थी, वह केवल अभी उसके लिए कारगार हो रही थी। उसने अभी तक जो रेखाचित्र बनाये थे, जो उल्टी-सीधी रेखायें खींची थीं, सिर के हिलने-डुलने और मुखाकृति के जो अधूरे ख़ाके बनाये थे वे अब मिल-जुलकर एक-दूसरे की पूर्ति करते थे। वे एक सच्चे रेखाचित्र का रूप धारण करते, जीते-जागते लेनिन के अधिकाधिक अनुरूप होते जाते थे। अब उसकी आंखें रेखाचित्र पर ही जमकर रह गई थीं। वह अब जल्दी-जल्दी और प्रयास के बिना ही रेखाचित्र बनाता जा रहा था।

हॉल में बहुत ज़ोर का शोर हुआ। सेर्गेई का ध्यान उस ओर खिंचा। उसने देखा कि लेनिन फटाफट काग़ज़ समेटकर, फुर्ती के साथ मंच से नीचे जा रहे हैं।

सेर्गेई ने झट से एल्बम बन्द कर दी।

अधिवेशन जब ख़त्म हुआ तो प्रतिनिधियों की भारी और उमड़ती भीड़ में लेनिन, गोर्की के साथ प्रासाद से बाहर निकले। हल्की पीली और कम रोशनीवाले हॉल से बाहर आने पर धूप खिली हुई मिली, आंखें चौंधियाने लगीं और गर्मी अनुभव होने लगी। भीड़ के कारण दरवाज़े पर ही रुकना पड़ा। फ़ोटोग्राफ़र तो प्रतिनिधियों पर सभी ओर से टूट पड़े। प्रकाश बहुत काफ़ी था, वे इसी ख़ुशी में खटाखट कैमरों के बटन दबाये जा रहे थे। लेनिन और गोर्की पर भीड़ इस तरह टूटी कि वे प्रासाद के ओसारे के एक स्तम्भ से चिपककर ही रह गये। इनके लगातार फ़ोटो लिये जा रहे थे। गोर्की का बारीक मुंडा हुआ, चिकना और धूप में ख़ूब चमकता हुआ सिर दूर से ही नज़र आ रहा था। सभी लोगों की ज़बान पर गोर्की का नाम था। लेनिन, गोर्की के आगे, उनसे नीचे खड़े थे। लेनिन भी नंगे सिर थे।

सेर्गेई उनके निकट ही खड़ा था। वह रेखाचित्र बनाने की फ़िक्र में था। मगर भीड़ ने उसे पीस डाला। वह तो

हिल-डुल भी नहीं सकता था—इतने क़रीब से उसने लेनिन को दिन भर में एक बार भी नहीं देखा था। सेर्गेई को महसूस हुआ कि वह मुस्करा रहा है और शायद उसकी मुस्कान असंगत भी है, मगर वह हठात् क़ायम थी, बरबस बनी थी। ज़ाहिर है कि उसे इस बात की ख़ुशी नहीं हो सकती थी कि फ़ोटोग्राफ़र दर्जनों गन्दे-मन्दे फ़ोटो खींचे चले जा रहे थे। मगर फिर भी उसे ईर्ष्या हो रही थी उनके निश्चिन्त पेशे के फुर्तीलेपन से।

जुलूस रवाना हुआ। झंडों के बीच, तीन मीटर का फूलमालाचक्र सिरों पर उठाये हुए कुछ लोग आगे आगे चले। यह फूलमालाचक्र शाह बलूत की टहनियों का बना हुआ था जिसके बीच लाल गुलाब के फूल सजे हुए थे। सामूहिक क़ब्र पर यह फूलमालाचक्र चढ़ाने के लिए जुलूस क्रान्ति के बलिदानों के चौक की ओर बढ़ा।

लेनिन कांग्रेस के प्रतिनिधियों के आगे-आगे थे। उनके साथ साथ चलनेवाले लोग लगातार बदलते रहे। कभी विदेशी उनके साथ दिखाई देते तो कभी रूसी, कभी बुज़ुर्ग तो कभी जवान। वे कभी एक से बात करते तो कभी दूसरे से और फिर तीसरे से।

लेनिन ओवरकोट के बिना थे, कोट के बटन भी खुले थे। वे अपने हाथ कभी तो पीठ के पीछे बांध लेते और कभी पतलून की जेबों में डाल लेते। ऐसा प्रतीत

होता था कि वे इस समय सड़क पर नहीं हैं, जहां बहुत बड़ी, बहुत भारी इमारतें खड़ी हो रही हैं, बल्कि घर के जाने-पहचाने कक्ष में हैं। इतनी भारी भीड़ जो उन्हें घेरे हुए थी उसमें उन्हें कोई असाधारण बात अनुभव नहीं हो रही थी। लगातार अपनी ओर खिंचनेवाली, उमड़नेवाली भीड़ में वे अपने को बहुत सरल, बहुत स्वतन्त्र अनुभव कर रहे थे।

सेर्गेई, लेनिन के क़रीब-क़रीब ही चल रहा था। अचानक उसे एक जानी-पहचानी सूरत नज़र आई। यह व्यक्ति लोगों की भीड़ में से रेल-पेल करता हुआ आगे बढ़ा आ रहा था। घड़ी भर बाद वह लेनिन के बराबर आ गया। यह वही ब्राऊनश्वेगवासी था। अपना तफ़सीली परिचय देकर उसने लेनिन से हाथ मिलाया, और जैसा कि स्पष्ट था, अच्छी तरह से तैयार किया हुआ अपना भाषण शुरू कर दिया।

लेनिन ने अपना सिर उसकी ओर झुका दिया ताकि इस नाटे व्यक्ति की बातचीत अच्छी तरह सुन सकें। ब्राऊनश्वेगवासी बड़ी शान से लम्बा हाथ हिला-डुलाकर अपनी बात कह रहा था। वह अपने क़ीमती शब्दों पर गर्व करता-सा दिखाई दे रहा था। साथ ही उसे इस बात की भी चिन्ता थी कि कोई अनुचित बात उसके मुंह से न निकल जाये। शुरू में तो लेनिन गम्भीर रहे। फिर उनके चेहरे पर मुस्कान आ गई, उन्होंने आंखें सिकोड़ लीं और हल्के

से सिर झटका। फिर लेनिन ठिठके और उन्होंने ऐसा मुंह बनाकर हाथ झटका मानो कह रहे हों–"यह क्या बकवास है! बिल्कुल बेतुकी बात है!" ब्राऊनश्वेगवासी अपने हाथों से इशारे करते हुए कुछ सिद्ध करने पर तुल गया। लेनिन ने उसकी बांह थाम ली और दो-तीन संक्षिप्त वाक्य कहे, अन्तिम और निर्णायक रूप से। इस पर ब्राऊनश्वेगवासी ने बुरा मानते हुए ज़ोर से एतराज़ किया। तब लेनिन ने अचानक धीरे से उसका कंधा थपथपाया, हाथ वास्कट में डाले और खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसी के मारे उनका शरीर झूल रहा था। उन्होंने क़दम तेज़ कर दिया और फिर मुड़कर उस व्यक्ति की ओर नहीं देखा जिसने उन्हें इस बुरी तरह हंसा दिया था।

यह बदक़िस्मत ब्राऊनश्वेगवासी कहीं बटन वाला क़िस्सा तो नहीं छेड़ बैठा था? बहुत सम्भव है, ऐसा ही हुआ होगा। वह जर्मन जब लेनिन से पीछे रह गया और भीड़ में कहीं खो गया तो सेर्गेई को भी हंसी आ गई। इस घटना से सेर्गेई को एक अजीब-सी अनुभूति हुई। यह सही है कि सेर्गेई ने मूक रूप से ही इस घटना को देखा था, मगर इसमें बड़ी जान थी। बहुत उग्र रूप में वह यह देख पाया था कि लेनिन में कितनी सादगी, कितना खुलापन है, उन तक पहुंच पाना कितना आसान है और हास्यास्पद बातों के प्रति वह कितने अनुभूतिशील हैं। सेर्गेई

ने लेनिन को पूरी मस्ती में और खुले दिल से क़हक़हा लगाते देखा, उनके बहस करने के तरीक़े को आंका। उसने देखा कि लेनिन के चेहरे के भाव कैसे जल्दी-जल्दी बदलते हैं, कैसे तेज़ी से वे आंखें झपकते हैं और उनके इशारों में कैसा खुलापन और कैसा जोश होता है। ब्राऊनश्वेगवासी के क़िस्से ने लेनिन के बारे में सेर्गेई के स्मृति-पट पर ऐसे चिह्न अंकित किये जिन से वह इसके पहले सर्वथा अपरिचित था।

"ये दो नेता हैं," सेर्गेई ने मुस्कराते हुए सोचा और मानो दो अलग-अलग व्यक्ति उसके सामने आकर खड़े हो गये, "एक नेता है ब्राऊनश्वेग की तीन दिनी सरकार का जो हवा के एक तेज़ झोंके में ही तिनकों की तरह बिखर गई। दूसरा नेता है उस सरकार का जो तीन साल से क़ायम है और हमेशा क़ायम रहेगी।"

सेर्गेई को अपने समूचे बदन में गर्व की एक अनजानी-सी सिहरन अनुभव हुई। मगर उसी क्षण खीझ और एक उत्तेजक और साहसपूर्ण चाह के कारण उसका दिल ज़ोर से धड़कने लगा। आख़िर क्यों है ऐसा, क्यों है ऐसा, कि इतने लोग लेनिन के पास आते हैं और वह सभी के लिए समय निकाल लेते हैं। एक मैं हूं, चित्रकार हूं, मेरा यह उत्तरदायित्व है, कर्त्तव्य है, मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि सैकड़ों-हज़ारों लोगों तक पहुंचाने को लेनिन को सदा-सदा के लिए काग़ज़ पर उतार लूं। क्यों मैं एक-एक पल के

लिए तरस रहा हूं कि उनका चेहरा देख लूं, उनकी मुस्कान को आंखों में बसा लूं, किसी तरह उनकी नज़र की एक झलक पा लूं?

सेर्गेई ने एल्बम खोली। उसने जो रेखाचित्र बनाया था वह निश्चय ही लेनिन की मुखाकृति के अनुरूप था। भाग-दौड़ में और चलते-चलाते उसने जो नाक-नक़्शा बनाया था, जो मुखमुद्रा काग़ज़ पर उतारी थी, वह दंग करनेवाली नहीं थी। मगर यदि स्वयं लेनिन इसे देखें तो क्या कहें?

भीड़ ने सेर्गेई को आगे की ओर धकेल दिया। बहुत सम्भव है कि उसे ऐसा अनुभव हुआ हो – हो सकता है कि वह रेल-पेल करके स्वयं ही पहली पंक्ति में जा पहुंचा हो और लेनिन के बराबर चलने लगा हो। यही कुशल हुई कि उसका दम घुटते घुटते रह गया। सिर्फ़ एक क़दम ही वह पीछे था अपनी मंज़िल से। यह सोचे-समझे बिना कि उसमें पर्याप्त शक्ति है कि नहीं, वह क़दम बढ़ाकर आगे आ गया।

वह लेनिन के क़रीब पहुंचा।

"मैं चाहता हूं ..." सेर्गेई ने कहा और पहले से सोचा हुआ वाक्य बीच में ही टूटकर रह गया। "व्लादीमिर इल्यीच, आपकी राय में कैसा है यह चित्र?"

लेनिन ने सेर्गेई की ओर सरसरी नज़र से देखा, सिरे से एल्बम थामी और ज़रा सिर झुकाकर रेखाचित्र को

देखने लगे। फिर उन्होंने एल्बम सामने से हटाई और ख़ुशमिज़ाजी से सेर्गेई की ओर बढ़ाते हुए बोले—

"आपको पसन्द है?" उन्होंने स्नेहपूर्ण ढंग से पूछा।

"नहीं," सेर्गेई ने उत्तर दिया। "मगर कुछ समानता अवश्य दिखाई पड़ती है ..."

"मैं परख नहीं सकता, चित्रकार तो नहीं हूं न!" जल्दी से लेनिन ने जवाब दिया।

लेनिन की आंखों में चंचलता की झलक थी। उन्होंने सिर पीछे को किया, प्रोत्साहन देने के अन्दाज़ में सेर्गेई को सिर से इशारा किया और दूसरी तरफ़ को मुड़ गये—कोई दूसरा व्यक्ति उनसे बात करने लगा था।

रेल-पेल ने सेर्गेई को पहली पंक्ति से पीछे हटा दिया, वह दूसरी में भी अपने पांव जमाये न रख सका। उसे हैरानी हुई कि कैसे वह इस वक़्त तक जुलूस में अपने लिए अच्छी जगह बनाये रहा और क्यों एकदम उसे खो बैठा! अफ़सोस? कड़वाहट? सेर्गेई फिर से अपने को उसी रंग में लाया जो उसने कुछ ही समय पहले अनुभव किया था। लेनिन की आवाज़ में, उनकी नज़र में कुछ भी तो ऐसा नहीं झलका जो परेशानी का कारण होता। मगर मुझे यह सूझी क्या कि लेनिन को भद्दा-सा चित्र दिखाने चला गया? यह उसका छोटापन था। सेर्गेई ने एल्बम खोली और उसी

क्षण ज़ोर से बन्द कर दी—किसी काम का नहीं बना यह रेखाचित्र !

इसी वक़्त किसी ने सेर्गेई की बांह थामी और नीचे को खींची। सेर्गेई ने मुड़कर देखा। ब्राऊनश्वेगवासी कसकर उसका बाज़ू थामे था।

"आप तो मेरा चित्र बनाने का इरादा रखते थे न," उसने ऊंची आवाज़ में कहा। "आज आपको समय नहीं मिला, पर ख़ैर मैं कल आपके लिए समय निकाल सकता हूं।"

अपना सूखा लम्बा हाथ सिर के ऊपर उठाकर उसने सेर्गेई का कंधा थपथपाया।

"आज तो बहुत ही सख़्त गर्मी है! आपकी रूस-मां के बिल्कुल अनुरूप नहीं।"

"देखिये, बात यह है," सेर्गेई ने कहा, "मैंने अपना इरादा बदल लिया है। मैं आपका चित्र नहीं बनाऊंगा।"

"ओह, बड़ी मेहरबानी," सेर्गेई भीड़ में अपना रास्ता बना रहा था जब पीछे से जर्मन के उपरोक्त शब्द सुनाई पड़े।

फ़ौरन इस जर्मन का ख़्याल सेर्गेई के दिमाग़ से निकल गया। अगले ही क्षण उसने किसी के स्नेहपूर्ण हाथ का स्पर्श अनुभव किया। यह हाथ उसके उस्ताद का था। वह भी सेर्गेई के क़रीब बॉक्स में बैठा हुआ लेनिन का चित्र बनाता

रहा था। उसने जानी-पहचानी सहानुभूति और सोच में डूबी हुई आवाज़ में धीरे से कहा –

"सुनते हो भाई? अपने से तो लेनिन का चित्र बन नहीं पाया। तुम्हारा क्या हाल रहा?"

"मेरा भी यही हाल रहा," सेर्गेई ने जवाब दिया। फिर अचानक इस स्नेहपूर्ण हाथ को अपनी छाती से लगाते हुए उसने जोश के साथ कहा –

"आपको वचन देता हूं, क़सम खाकर कहता हूं आपसे कि यह चित्र बनाकर ही रहूंगा!"

१६३६

वेरा इन्बेर (जन्म १८६०) सुविख्यात सोवियत कवयित्री। आपकी कई पुस्तकें साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। बहुत अर्से तक पूरब में रहीं। 'नूर-बीबी का जुर्म', यह कहानी १६३४ में लिखी गई और सोवियत साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में इसकी गिनती होती है।

वेरा ईन्बेर

नूर-बीबी का जुर्म

१

नूर-बीबी पालने में लेटी थी। मां लोरी गा रही थी–

सो, मेरी बेटी , सो
कि तू जब बड़ी हो, अरी, चांद मेरी
सिलाई की दो दो मशीनें हों तेरी
कि तू हाथ से एक को तो चलाये
चले पैर से दूसरी तब मज़ा हो
सो, मेरी बेटी, सो।

कि तू जागती है कि या सोयी बेटी?
कि पलकों को मूंदे हुए यों ही लेटी
कि किशमिश सी काली तुम्हारी हो चोटी
प्लेटों में खाना सजाया गया हो
सो, मेरी बेटी, सो।

खिलाओ-पिलाओ कि बच्चों को बढ़िया
कि हलवा या मीठा सा फिर कोई दलिया
न मेरी तरह ज़िन्दगी हो तुम्हारी
कि फ़ाक़ों में बीते, कि मुश्किल बसर हो
सो, मेरी बेटी, सो।

कि भर पेट खाकर तुम्हारे खिलौने
फिरें नाचते, खेलते जैसे छौने
कभी दम न तोड़ें, कभी इस तरह वे
कि जैसे गये लाल मेरे कई खो
सो, मेरी बेटी, सो।

नूर-बीबी के अब्बा समरक़न्द के बाज़ार में छोटी छोटी तूंबियां बेचते थे। इन तूंबियों में घोड़े के बालों का काग लगा रहता था। ये नसवार की डिबियों का काम देती थीं। लोग इनमें पिसा हुआ खाने का तम्बाकू भी रखते थे।

तूंबी अभी बहुत छोटी और नर्म ही होती कि इसके

गिर्द एक रस्सी बांध दी जाती। इस तरह इसे मनमानी शक्ल दे दी जाती।

"तूंबी का भी हम इन्सानों जैसा ही हाल है," नूर-बीबी के अब्बा अक्सर कहते। "ज़रूरत हमें कसकर अपने शिकंजे में जकड़ लेती है और जैसा चाहती है वैसा ही बनाकर छोड़ देती है।"

पालना धीरे धीरे नूर-बीबी के लिये छोटा होने लगा। वह दिन-रात बढ़ती ही जा रही थी। आख़िर वह आठ साल की हो गयी – दुलहन बनने का वक़्त आ गया। लिखना-पढ़ना, सो तो वह बिल्कुल न जानती थी। ज़िन्दगी उसने देखी-समझी ही न थी। सिर्फ़ एक बार ही वह अपने अब्बा के साथ उस बाज़ार में गयी थी जहां खोपड़ी-टोपियां बिकती हैं। वह समरक़न्द से बाहर, दो मील दूर अगालिक सड़क पर अपने घरवालों के साथ रहती थी। ख़्वाजा अहरार की मसजिद उसके घर के क़रीब ही थी। उसे वहां जाने की बिल्कुल मनाही थी।

यह मसजिद अन्दर से ख़ूबसूरत थी। मदरसे की कोठरियों के दरवाज़े साफ़-सुथरे और चुपचाप समकोण आंगन में खुलते थे। इन्हीं कोठरियों में ठण्डी-ठहरी तबियत के, पाक-साफ़ नौजवान – भावी इमाम – रहते थे। यह आंगन भी बस कमाल ही का था – कहीं किसी कोने में खड़े होकर धीरे से यदि एक शब्द बोल दिया जाता फ़ौरन ही उसे तो जैसे पंख

लग जाते। वह उड़कर दूसरे सिरे तक जा पहुंचता ग्रौर सुननेवाले के कान में जा गूंजता। जान-बूझकर ही मसजिद का ग्रांगन ऐसा बनाया गया था। ग्रक़्लमन्द इमारतसाज़ों ने बड़ी मेहनत से इसी लिये इसे ऐसा बनाया था कि नेक-पाक मुल्ला को सुननेवालों तक इलाही पैग़ाम पहुंचाने के लिये ग्रपना क़ीमती गला न फाड़ना पड़े, चिल्लाना न पड़े।

नूर-बीबी ग्रब दस बरस की हो चुकी थी। वह ग्रौरतों के जानने लायक़ सभी धन्धे, सभी काम-काज सीख रही थी। वह ग्रब ग्रपने बालों की तरह तरह की ख़ूबसूरत चोटियां बनाती थी। वह दबना ग्रौर हर बात के लिये सिर झुकाना सीख रही थी। वह भौंहें रंगने, रोटियों के लिये बारीक बारीक प्याज़ काटने ग्रौर नन्हे-मुन्नों की देखभाल की तालीम पा रही थी। वह रेशम के कीड़ों को खिलाने-पिलाने के काम में ग्रपनी मां का हाथ बंटाती थी।

वसन्त ग्राया तो शहतूत के पत्ते ग्रपने ग्रंकुरों में से झांकने लगे। उन दिनों नूर-बीबी की मां वही कुछ करती जो कभी उसकी ग्रपनी मां या फिर दादी हमेशा करती थी। एक छोटे से थैले में वह रेशम के कीड़ों के ग्रंडे डालकर उन्हें ग्रपने बदन पर लटका लेती। बदन की गर्मी से इन राई जैसे बीजों में ज़िन्दगी ग्रा जाती थी। फिर वह थैले को हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से इन छोटे छोटे बीजों को

जांचती। अगर इनका रंग हल्का पड़ गया होता तो जल्द ही कीड़े नमूदार हो जाते।

उसकी मां को इन 'रेशम के पैसों' की बेहद ज़रूरत रहती! ग़रीबी के मारे इस घर में जाने कितनी उम्मीदें इन्हीं रेशम-कोषों से वाबस्ता रहतीं। यह भी सही है कि इन रेशम-कोषों से इन्हें बहुत थोड़ी सी रक़म ही हासिल होती। व्यापारी इन्हें कौड़ियों के मोल ख़रीदकर विदेशों में भेज देता। वहां से यह विदेशी ठप्पे के साथ कच्चे रेशम की शक्ल में रूस वापस आ जाता। मगर ख़ैर यह सब तो दूर की बात होती। नूर-बीबी के मां-बाप तो बस एक ही फेर में रहते कि जैसे-तैसे कामयाबी का यक़ीन दिलानेवाली सभी पुरानी लीकों, सभी रीति-रिवाजों पर अच्छी तरह अमल करें।

बाज़ार लगने के दिन नूर-बीबी के अब्बा रेशम के कीड़ों के चुटकी भर अंडे लेकर तीनपतिया घास के खेतों में पहुंच जाते। वे इन अंडों को वहां बिखरा देते ताकि उनके यहां उतने ही रेशम-कोष तैयार हों जितनी कि खेत में त्रिपत्तियां हैं या बाज़ार में लोग हैं।

तो इस तरह रेशम के कीड़े बढ़ते। वे चार बार सोते और हर बार उनकी नींद चौबीस घण्टे तक चलती। इसी नींद के दौरान में वे अपनी खाल निकालते और बड़े होते।

अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी हिस्से में वे अपने मौलिक आकार की तुलना में दस हज़ार गुना बड़े हो जाते।

ख़ास ताक़ों – जिन्हें सुक्चक कहते हैं – पर बिखरे हुए वे पूरे का पूरा कमरा घेरे रहते। घर के लोग अहाते में एक चंदवे के नीचे रहते, अंगीठी खुले में होती। यहां धूप और सितारों की रोशनी में उनकी ग़रीबी का रहा-सहा पर्दा भी ग़ायब हो जाता और वह साफ़ साफ़ नज़र आने लगती। चिथड़े चिथड़े हुई रज़ाइयों में से गंदी-मंदी रूई बाहर झांकती दिखाई देती, तांबे के गागर-कलसे मुड़े-मुड़ाये और काले-काले नज़र आते और मिट्टी के बर्तनों में जहां-तहां दरारें दिखाई देतीं।

मां इस भावी रेशम के बारे में बहुत परेशान रहती, बहुत सावधानी से देखभाल करती। मगर उसके मैले-कुचैले बदन की बदबू और कमज़ोरी के कारण पसीने से लथपथ रहनेवाले जिस्म से रेशम के अंडों को काफ़ी गर्मी न मिलती और वे बीमार और कमज़ोर रहते।

"ओह, बदक़िस्मती!" कीड़ों की हर नींद के बाद मां गहरी सांस लेती। "ये बार बार सो जाते हैं और बहुत धीरे धीरे जागते हैं। हाय अल्लाह, यह क्या कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा होता जा रहा है! इनमें से तो ढेरों धब्बेदार और टूटे हुए कोष निकलेंगे। इनमें तो बहुत से उलझे-उलझाये रेशम-कोष

होंगे जिन्हें सुलझाना किसी तरह भी मुमकिन न होगा।"

मगर इस सारे क़िस्से का नूर-बीबी से कोई वास्ता न होता। उसका काम तो सिर्फ़ शहतूत के पत्ते इकट्ठे करना रहता। वह पेड़ पर चढ़कर उसकी एक टहनी का सिरा हाथ में पकड़ लेती। दूसरे हाथ से वह झटककर पत्ते तोड़ती ग्रौर उन्हें सरपत की टहनियों से बनायी गयी टोकरी में डालती जाती। जब उसके हाथ थक जाते तो वह एक पंछी की तरह पेड़ के तने पर बैठकर किसी पंछी को ही देखने लगती। वह पास ही के पुराने पेड़ पर बैठे क्रौंच पक्षी को देखती रहती। इस पंछी का घोंसला इसी पेड़ पर था। नूर-बीबी बहुत ध्यान से इस पंछी ग्रौर उसके परिवार के जीवन का ग्रध्ययन करती। उसे ग्रपने ग्रौर उनके जीवन में बहुत कुछ एक जैसा नज़र ग्राता। वहां भी ढेरों बच्चे होते ग्रौर वे भी हमेशा भूख से कुलबुलाते रहते। उनकी मां भी हमेशा घर में ही बनी रहती। हां, उसे ग्रपने ग्रब्बा ग्रौर नर-क्रौंच में कुछ फ़र्क़ ज़रूर दिखाई देता। नर-क्रौंच शायद ही कभी ख़ाली घर लौटता। हमेशा ही वह पास के तालाब से ग्रपनी चोंच में मेंढक लिये वापस ग्राता। इसी समय नूर-बीबी ग्रपने ग्रब्बा को भी पक्षी के रूप में देखती। विचारों में डूबा-खोया दुबला-पतला सा चेहरा। पंखों की तरह हिलती-डुलती बांहें, लम्बा धारीदार फड़फड़ाता हुग्रा कोट

ग्रौर बग़ल में भेड़ का मांस। वे ख़ुशी से भरपूर ऊंची ग्रावाज़ में पुकारते हुए मिट्टी की नीची सी दीवार के पास ग्राते ग्रौर फिर ग्रहाते में पहुंचते। नूर-बीबी को ग्रपनी मां पुलाव के लिये चावल साफ़ करती दिखाई देती...

नूर-बीबी को यह सब परियों की कहानियों जैसा लगता!

ख़ैर, परियों की कहानियों के दिन भी गुज़र जाते हैं। नूर-बीबी ग्रब बारहवें साल में पहुंच चुकी थी। ग्रब वह ग्रपनी सहेलियों के साथ ग्रहाते में बैठकर भौंहें रंगती। लड़कियां टूटे हुए प्याले में ग्राबपाशी की नाली से पानी लातीं ग्रौर उसमें रंग घोलतीं। इस रंग में लकड़ी की एक छोटी सी चैली डुबो डुबोकर वे भौंहों के बीच की ख़ाली जगह पर फेर फेरकर भौंहों को एकसाथ मिलातीं। वे पहले दायीं ग्रोर फिर बायीं ग्रोर को ग्रपना सिर झुकातीं। उनके गालों पर नीली नीली धारें बह चलतीं। उनके भावी सौंदर्य में कहीं कमी न ग्रा जाये, इसी डर से वे इन्हें बहती रहने देतीं। फिर वे टीन ग्रौर सीपियों के चौखटे में जड़े छोटे से दर्पण में बारी बारी से ग्रपना रूप निरखतीं। फिर वे इधर-उधर की हांकने लगतीं।

"साराह-ख़ान, यहां धूप में ग्राकर बैठो। वहां छाया में मत बैठो वरना रंग बहकर बिल्कुल चौपट हो जायेगा।"

"गलहार, ज़रा मुझे दर्पण देना। यक़ीनन मैं ही सब से ज़्यादा ख़ूबसूरत नज़र आ रही हूं। कल मैं फिर से अपनी चोटियां बनाऊंगी।"

"अरी मैंने सुना है कि भौंहों के बिना, नंगी आंखों वाली औरतें भी होती हैं। है न यह तो डूब मरने की बात? जाने कैसी होती हैं वे औरतें?"

"नूर-बीबी, रोटी का टुकड़ा लोगी क्या? तुम इसे टुकुर टुकुर जो देखे जा रही हो।"

"अदालत, लाओ मुझे दिखाओ दर्पण।"

"शरीफ़ा, दर्पण ज़रा इधर कर दो।"

नीले गाल, हाथ में रोटी का टुकड़ा – दौलतमन्द पड़ोसी मीर-शहीद नूर-बीबी को इसी हालत में देखता। वह देर तक उसे देखता रहता क्योंकि वह ख़ूबसूरत थी, सबसे बढ़-चढ़कर थी। उसका बाप ग़रीब था इसलिये मीर-शहीद ने नूर-बीबी को उसके बाप से ख़रीद लिया बीबी बनाने के लिये।

उन्होंने पहली बार बुर्क़े से नूर-बीबी का मुंह ढका। शुरू में तो उसे यह अच्छा लगा। वह अपने को बड़ी-बड़ी महसूस करती। मगर जब वह घोड़े के बालों के जाल में से फूले हुए ख़ूबानी के पेड़ पर नज़र डालती (वसन्त के दिनों में) तो उसे पहचान न पाती। वह उसे अजीब अजीब सा लगता। टहनियों पर उसे मटमैला सा बौर नज़र आता। वह तो ऐसा दिखता मानो धूल और राख का अम्बार हो।

नूर-बीबी घड़ी भर के लिये बुर्क़ा उतार देती। पेड़ पर फिर गुलाबी छटा खिल उठती। ऊपर चमकता हुआ नीलाकाश दिखाई देता। चमकती हुई लाल चोंच और रूई जैसे सफ़ेद पंखों वाली मादा क्रौंच सामने के हरे भरे पेड़ पर बैठी नज़र आती। मगर जैसे ही फिर बुर्क़ा नीचे आता कि हर रंग फीका पड़ जाता, मज़ा किरकिरा हो जाता।

और अब नूर-बीबी की शादी हो चुकी थी। लोरी गाती हुई उसकी मां यह कामना करती थी कि उसके पास सिलाई की दो मशीनें हों, एक हाथ से और दूसरी पांव से चलनेवाली। उसके पास अब सिलाई की ये दोनों मशीनें थीं। इतना ही नहीं, उसके पास गानेवाली एक मशीन ग्रामोफ़ोन भी था। मगर क्या करती वह इन मशीनों का? उसका घरवाला तो बूढ़ा था, वह उसे प्यार भी नहीं करती थी। सदियों से औरत इसी बदक़िस्मती की शिकार होती आ रही है। नूर-बीबी भी इसी बदक़िस्मती के हाथों बेज़ार थी। मीर-शहीद की पहली बीबी तो ख़ैर यह भूल ही चुकी थी कि कभी वह भी बारह बरस की थी। जवानी तो अब उसे फूटी आंखों न भाती थी। इतना ही नहीं, उसके दिल में तो शैतान का भी घर था।

मीर-शहीद बड़ा शक्की ख़ाविन्द था। उसने नूर-बीबी को पंजों के बल उचक-उचककर पड़ोसियों के अहाते में झांकते देखा तो नौकरों को मिट्टी की दीवार ऊंची करने का हुक्म

दे दिया। नूर-बीबी जितनी बढ़ती दीवार उससे ज़्यादा तेज़ी से ऊंची होती जाती।

नूर-बीबी के पैर टिकना-रुकना नहीं जानते थे। उसे इधर-उधर दौड़ते-भागते रहना पसन्द था। वह गधे के बच्चे के पीछे ग्रहाते में भागती-दौड़ती रहती। मीर-शहीद की पहली बीवी यह देखकर चिल्लाती –

"मैं सब समझती हूं, सब समझती हूं! तुम ग्रपने ख़ाविन्द के बेटे को मार डालना चाहती हो! वह जो हंसता-हुमकता ग्रौर सेहतमन्द बच्चा होनेवाला है तुमने उसे ग्रभी से ख़त्म करने की ठान ली है। फाटक पर नज़र गड़ा गड़ाकर मत देखो वरना लड़के के होंठ मोटे हो जायेंगे! बाहर बरसात में मत जाग्रो वरना लड़के का चेहरा चेचकरू हो जायेगा! तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें कुछ भी तो ढंग से बताया-सिखाया नहीं। चेहरा परी का है पर ग्रादतें हैं भिखमंगों की!"

मीर-शहीद बेटे की उम्मीद लगाये बैठा था, मगर हुई बेटी।

"मैं जानती थी, मैं जानती थी यही होगा," पहली बीबी ने ग्राह भरकर कहा। "मैंने क्या तुमसे पहले ही कहा नहीं था? ग्रल्लाह की क़सम, तुम देखते जाना मीर-शहीद, यह तुम्हें सिर्फ़ बेटियां ही बेटियां देगी। हाय हाय, कैसी बेशर्म, कैसी बेहया है यह!"

नूर-बीबी की बेटी पालने में लेटी रहती। जब ग्रास-पास कोई सुननेवाला न रहता तो वह लोरी गाती –

सो, मेरी बेटी, सो
कि होगी बड़ी जबकि तू चांद मेरी
कि सेहत भी होगी बड़ी ख़ूब तेरी
कि होगा जवांमर्द, ख़ाविन्द तेरा
ग़रीबी हो घर में, वह निर्धन भले हो
सो, मेरी बेटी, सो।
कि अपने पिया के हृदय में तुम्हीं तो
बसोगी प्रथम लाड़ली, बन तुम्हीं तो
कि तुम दूसरी, तीसरी भी न होगी
कि उपहार, सन्तान होगी तुम्हारी
कि हो चाहे बेटा, कि बेटी भले हो
सो, मेरी बेटी, सो।
कि क्या दोष है यह अनारों का बेटी
कि आड़ू न जो वे बनीं मेरी बेटी?
कि तुझमें भला क्या कमी है कि बेटी
कि तुम क्या अनारों से कम सुन्दरी हो
सो, मेरी बेटी, सो।

साल के बाद साल गुज़रते गये। कुछ बरस पहले जो लड़कियां भौंहें रंगने के लिये इकट्ठी होती थीं वे अभी भी कभी कभी अहाते में जमा होतीं। इन सभी की शादी हो चुकी थी। कुछ तो ढलकर बूढ़ी बूढ़ी भी नज़र आने लगी थीं।

इनके बच्चे पास ही में खेलते-कूदते रहते! सूरज डूबनेवाला था और इन बच्चों की परछाइयां हर क्षण लम्बी लम्बी होती जा रही थीं। औरतें उदास थीं। वक़्त से पहले ही सिर पर मंडरानेवाला बुढ़ापा उनके सामने एक लम्बी परछाईं की तरह फैला हुआ था।

वे बातचीत कर रही थीं—

"साराह-ख़ान, यहां धूप में आकर बैठो। तुम तो कैसी ज़र्द नज़र आ रही हो। शायद तुम्हारी तबियत कुछ ख़राब है?"

"नूर-बीबी क्या मेरे बेटे को गोद में लेना चाहती हो? तुम इसे एकटक देखती जो रहती हो।"

"अरी बहन सुना है कि कुछ औरतें नंगे मुंह गलियों में घूमती हैं। अल्लाह जाने कैसी हैं वे औरतें! मैं तो उन्हें समझ नहीं सकती!"

"मगर मैं उन्हें अच्छी तरह समझती हूं!" नूर-बीबी सहसा कह उठी।

"चुप रहो, चुप रहो नूर-बीबी! तुम तो हमेशा से ही बाग़ी रही हो। तुमने दीवार के ऊपर से झांककर देखा। तुम तो कभी कभी अपने मियां को मुंह-तोड़ जवाब भी दे देती हो, तुम तो उसकी पहली बीबी से लड़ती-झगड़ती भी हो। क्यों यह सब सच है न?"

नूर-बीबी चुपचाप सुनती रहती। नहीं, यह सच नहीं था। दूसरी औरतों की तरह ही वह भी दबी-घुटी रहती थी।

दूसरी औरतों की तरह ही वह भी मजबूर और लाचार थी। इसी बीच उसकी पड़ोसिनें डरी-सहमी आवाज़ में कहती जातीं–

"चुप, चुप, बुर्क़े की शिकायत करना बिल्कुल ग़लत बात है। उससे मुंह ढका रहता है। उसपर क्या लिखा है, कोई यह पढ़ नहीं पाता है। औरत की इसी में भलाई है। पर्दे के बिना तो कभी कभी बड़ी दुर्गति होती है। याद है न कि गुलजमाल के साथ क्या बीती थी?"

"क्या बीती थी गुलजमाल के साथ?" जिज़क की रहनेवाली एक औरत ने पूछा। उसने यह स्थानीय गप न सुनी थी।

"तुम्हें मालूम नहीं? तो हम तुम्हें सुनाती हैं। गुलजमाल हमारी ही एक सहेली थी। एक दिन वह अहाते से घर में आयी। अगर उसे यह मालूम होता कि आगे क्या घटना घटनेवाली है तो शायद वह अन्दर ही न जाती। मगर होनी को भला कौन जान सकता है? जाड़े के दिन थे। बाहर ठंड थी और कमरे में अंगीठी जल रही थी। अंगीठी के क़रीब गुलजमाल का देवर बैठा था। वह भी अंगीठी के क़रीब जा बैठी और आग की गर्मी से गुलजमाल का चेहरा दमक उठा, उसपर सुर्ख़ी दौड़ गयी। जब उसका मियां घर आया तो गुलजमाल का चेहरा चेरी की तरह सुर्ख़ था। उसका देवर उसके क़रीब बैठा था। उसके घरवाले ने गुलजमाल पर एक नज़र डाली और कहा–'ज़रा बाहर तो आना। मैं

तुम्हें दिखाना चाहता हूं कि क्या कुछ ख़रीदकर लाया हूं।' वह अहाते में गयी तो उसने कहा–'मेरे भाई के साथ रंगरेलियां मनाती हो! अभी तुम्हें इसका मज़ा चखाता हूं!' इतना कहकर गुलजमाल के मियां ने उसकी बग़ल में चाक़ू से चार वार किये। गुलजमाल वहीं ढेर हो गयी।"

जिज़क की रहनेवाली औरत भी यह कहानी सुनकर मौन साधे रह गयी और बाक़ी सभी के मुंह में भी ताला लग गया। कहने के लिये भला रखा ही क्या था?

साल के बाद साल गुज़रते गये। आख़िर १९१७ का साल आया। रूस में बहुत बड़ी बड़ी घटनायें घटीं। मगर अगालिक सड़क पर ख़्वाजा अहरार की मसजिद में सदा की ही तरह बहार बनी रही। वहां वही पहले की सी शान-बान क़ायम रही। धनी-मानी परिवारों के बच्चे क़ुरान पढ़ते और मसजिद के उस जादू भरे आंगन में बर्फ़ की तरह सफ़ेद दाढ़ी वाले मुल्ला की आवाज़ गूंजती।

ताशक़न्द में क्रान्ति-विरोधियों के विरुद्ध लड़ी गयी लड़ाई का संग्रहालय खुलने में अभी कई बरसों की देर थी। इस संग्रहालय को पूर्वी गृह-युद्ध का मूक इतिहासकार बनना था। इस संग्रहालय के लिये भविष्य में एकत्रित की जानेवाली सामग्री अभी तक तो धूल की तरह जहां तहां बिखरी हुई थी। प्रदर्शन योग्य ढेरों चीज़ें सारे मध्य एशिया में फैली हुई थीं। इनमें आधुनिक अंग्रेज़ी बन्दूक़ें और स्थानीय डाकुओं की पुरानी चक़मक़वाली बन्दूक़ें थीं, कारतूसों की पेटियां थीं,

तलवारें थीं, नकलडस्टर्ज़ थीं जो या तो स्थानीय रूप से हाथ से या लाइजे कारख़ाने में बनायी गयी थीं, घोड़ों की काठियां थीं, चमड़े के खोलों में लिपटे हुए चाय पीने के सफ़री प्याले थे, बुरी नज़र और गोली से बचानेवाले तावीज़-गंडे थे, नील-मणि से जड़े हत्थों वाले ख़ंजर थे और काशग़र के चाकू शामिल थे। इन्हीं में से किसी एक चाकू से मशहूर स्थानीय डाकू सरदार ने बहुत धीरे धीरे, घण्टे भर में एक औरत का पेट से गले तक का हिस्सा चाक करता रहा था। आख़िर उसका धड़कता हुआ दिल दिखाई देने लगा था। उस औरत के गांववालों ने उस डाकू सरदार की बहुत मिन्नत-समाजत की थी। उन्होंने नाक रगड़-रगड़कर उससे एक मेहरबानी करने की प्रार्थना की थी। वे चाहते थे कि डाकू उस औरत को मर जाने दे। मगर डाकू सरदार इसके लिये राज़ी न हुआ था। वह जानता था कि कैसे धीरे धीरे चाकू चलाये कि औरत एकदम ही दम न तोड़ दे। उसे इस फ़न में कमाल हासिल था। चाकू का फल धीरे धीरे ऊपर की तरफ़ बढ़ाते हुए उसने बड़े मज़े मज़े से यह कहा –

"बुर्क़ा उतारकर मुंह नंगा करनेवाली को दिल नंगा करके उसकी क़ीमत चुकानी पड़ती है। मैं तो तुम्हारा ही काम पूरा कर रहा हूं, बेटी!"

"रोशन दिमाग़ सरदार, आपको ग़लतफ़हमी हुई है!" धूल में लोटते-पोटते, मिन्नत-समाजत करते हुए गांव वालों ने दर्द भरी आवाज़ में कहा। "ओ सरदारों के सरदार, आपको

ग़लतफ़हमी हुई है! यह वह औरत नहीं है। इसने तो कभी बुर्क़ा नहीं उतारा। हम क़सम खाते हैं!"

"यह नहीं तो कोई दूसरी होगी," डाकू ने जवाब दिया। "मेरे लिये सब बराबर हैं।"

२

समय अपने पंखों पर उड़ान भरता गया। छोटी-बड़ी घटनायें घटती रहीं। मीर-शहीद के अहाते की कच्ची दीवार के कुछ हिस्से का ढह जाना भी एक छोटी सी घटना थी। भारी बरसात ने दीवार का एक हिस्सा गिरा दिया था। मीर-शहीद को उसे फिर से बनवाने की हिम्मत न हुई थी।

"लोग कहेंगे कि मीर-शहीद तो मालदार आदमी है," उसने अपनी पहली बीबी से कहा। "लोग कहेंगे कि देखो तो उसे अपना धन-माल छिपाने की कैसी जल्दी पड़ी है। इसी लिये तो फ़ौरन फिर से दीवार खड़ी करवा दी। ज़रूर वह मोटा आसामी है। वैसे दर असल, मैं मालदार हूं नहीं। मैं तो बहुत ही ग़रीब हूं। बिल्कुल भिखमंगों की सी हालत है मेरी तो। कभी तीन **तीन** नौकर होते थे, अब सिर्फ़ एक ही है। कभी मेरे घर में तीन तीन मशीनें थीं और अब सिर्फ़ एक ही है। दो मशीनें सिलाई करती थीं तो एक गाती थी। मैं बिल्कुल मालदार नहीं हूं, साथियो। तुम ख़ुद आकर मेरा हाल देख सकते हो। मैं तो बिल्कुल फ़क़ीर हूं, फ़क़ीर।"

नूर-बीबी पचीस बरस की हो चुकी थी। वह अपने को तीन बच्चों की मां अधेड़ उम्र की औरत महसूस करने लगी थी। तीन बच्चे मर भी चुके थे। उसने अपने इन बच्चों की खोपड़ी-टोपी में, बुरी नज़र से बचाने के लिये उक़ाब-उल्लू के पंखों के फुंदने भी टांगे थे। मगर यह जानी-मानी तरक़ीब भी कारगर न हुई थी। एक ही गर्मी में तीनों बच्चों को पेचिश हुई और वे अल्लाह को प्यारे हो गये। नूर-बीबी यह तक न जान पायी कि उन्हें हुआ क्या था और यह कि कैसे उनकी जान बचायी जा सकती थी।

छोटी-बड़ी घटनायें घटती रहीं। नूर-बीबी जब-तब मिट्टी की दीवार की दरारों में से गली में झांकती और हर बार ही कोई न कोई नयी चीज़ देखती। उसने गधों और ऊंटों की जगह लेनेवाली पहली मोटर कार और पहली लॉरी देखी। उसने हवाई घोड़ा यानी कि हवाई जहाज़ देखा। वह पहाड़ों के पीछे से उड़ता हुआ आता और पहाड़ों के दामन में आकर उतरता। उसने यह अफ़वाह भी सुनी कि पहाड़ों के दामन में इस हवाई घोड़े के लिये एक बहुत बड़ा अस्तबल बनाया गया है जिसे वे हवाई अड्डा कहते हैं।

नूर-बीबी अगालिक सड़क पर बुर्क़े के बिना, नंगे मुंह आती-जाती कुछ औरतें भी देखती। सूरज की रोशनी से दूर, अंधेरे और छाया में बढ़ने-पढ़नेवाले कुलीनों के युवा लड़के

ख़्वाजा ग्रहरार की मसजिद के नक़्क़ाशीदार फाटकों से बाहर आते, सूरज की रोशनी में अपनी आंखें सिकोड़ते और मदरसे को अलविदा कहकर हमेशा के लिये वहां से चले जाते। वे अपनी छाती से कुछ किताबें चिपकाये रहते। इन किताबों के चिकने मोमी पन्नों पर अरबी लिपि में कुछ लिखा रहता। युवा उज़्बेक चाय-ख़ानों में बैठकर अख़बार पढ़ते। मसजिद के साथ ही एक छोटे से सफ़ेद मकान में छोटा सा अस्पताल खुल गया था। बच्चे स्कूल आते-जाते थे। शिशु-पालन गृह खुल गये थे।

नूर-बीबी यह सब कुछ देखती, मगर उसकी अपनी ज़िन्दगी पहले की तरह पुराने ही ढर्रे पर चल रही थी।

"जवानों के लिये यह सब कुछ बढ़िया है," वह सोचती, "मगर मैं... मैं भला कहां जा सकती हूं? मेरे बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण तो होना ही चाहिये। इसके लिये मेरे अपने पल्ले तो फूटी कौड़ी भी नहीं है।"

नूर-बीबी पहले की तरह ही ज़िन्दगी के दिन काटती रही। बेशक मिट्टी की दीवार जहां-तहां से टूट गयी थी, फिर भी घर में मीर-शहीद का एकच्छत्र राज था। सोवियत सत्ता की कभी-कभार चोट पड़ जाने पर वह सहमता-कांपता, मगर फिर भी अपनी गाड़ी चलाये जा रहा था। अब उसके पास एक भी नौकर न रह गया था, एक गधा तक भी नहीं था। हां, दोनों बीबियां अभी भी उसकी मिलकियत थीं।

"वैयक्तिक किसानों में मैं ही सब से दीन-हीन हूं," वह दिल पर हाथ रखकर कहता। "मैं तो डंक मारने वाले बिच्छुओं और दूसरे ज़हरीले कीड़ों में से एक था। ईमानदार और ग़रीब किसानों के सामूहिक फ़ार्म में शामिल होने की भला मैं कैसे जुर्रत कर सकता हूं? मैं भला कैसे उनके समझदार अध्यक्ष की आंखों में आंखें डालकर देखने की हिम्मत कर सकता हूं? वह तो अभी कुछ ही अर्से पहले तक मेरे खेत में एक मज़दूर के तौर पर काम करता था। नहीं नहीं, यह हरगिज़ न हो सकेगा। मुझसे यह करने के लिये मत कहो, मेरे प्यारे दोस्तो। मुझे मजबूर न करो। मैं इसके लायक़ नहीं हूं। मुझे तो ठेके पर रेशम-कोष देते हुए भी शर्म महसूस होती है। मुझे तो यह भी पसन्द नहीं है कि चेतनाहीन रेशम का कीड़ा हमारी प्यारी सोवियत सत्ता के लिये रेशम जुटाये। बुलबुलें और गुलाब ही सोवियत सत्ता के सौन्दर्य की बराबरी कर सकते हैं। अच्छा है कि वे ही उसके लिये काम करें। जहां तक मेरा सम्बन्ध है तो इसे दूर से ही नमस्कार! मैं तो अक्सर रेशम के कीड़ों की नस्लों के विशेषज्ञ और विद्वान अज़ीम जान से चाय-ख़ाने में मिलता था। उसे समरक़न्द से हमारे ज़िले में भेजा गया था। वह हमें कीड़ों की नस्लों के बारे में रोशनी दिखाने, हमें अक़्ल देने के लिये आया था। वह मेरा जिगरी दोस्त बन

गया था। हम चाय-ख़ाने में एक साथ बैठकर चाय पीते थे और ज़िन्दगी के बारे में बातचीत करते थे। यह तो सचमुच ही बड़े अफ़सोस और दुख की बात है कि उस जैसे लायक़ आदमी के मुंह पर भी कालिख पोत दी गयी। समरक़न्द की नगर समिति के सहायक सेक्रेट्री कामरेड उर्काबायेव ने उसे भी बदनाम कर दिया। बेचारे को नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा।

"कामरेड उर्काबायेव एक छोटी सी हरी कार में हमारे पास पहुंचा। कार तो उसने सहकारी स्टोर के क़रीब छोड़ी और चुपचाप चाय-ख़ाने की तरफ़ चला आया। अगर मुझे उसकी बेइज़्ज़ती करते हुए डर न महसूस होता तो मैं तो यहां तक कहता कि उसने एक पेड़ के पीछे छिपकर हमारे साथ बच्चों की तरह आंख मिचौनी का खेल खेला। अज़ीम जान हमेशा की तरह कोक चाय पी रहा था। कामरेड उर्काबायेव पेड़ के पीछे चुपचाप खड़ा खड़ा हमारे किसानों को देखता रहा। वे परेशानियों के बोझ से दबे और एक ओर को झुके हुए सलाह-नसीहत के लिये चाय-ख़ाने की तरफ़ आ रहे थे। फिर पेड़ के पीछे से सामने आकर वह चिल्लाया–'मैं यहां हूं, और तुम कहां हो? क्या तुम्हारी जगह चाय-ख़ाने में है?'

"बेशक यह शर्म, बेहद शर्म की बात है कि अज़ीम-जान जैसे लायक़ आदमी पर मुसीबत का यह पहाड़ गिराया गया। उसकी जगह उन्होंने यहां भेजी है एक औरत! कहते हुए भी शर्म आती है। वह अपनी रूसी आंखों से जहां तहां

ग्रौर घर घर में ताक-झांक करती-फिरती है। ग्रोह, वह क्या बदक़िस्मती है!"

"कामरेड उर्काबायेव उसी दिन हमारे इस मामूली ग्रौर घटिया से गांव की कई दूसरी जगहों में गये ग्रौर दूसरे कई सम्मानित लोगों को भी मुसीबत का शिकार होना पड़ा। हाय, हाय, कैसी ग्रनजानी बदक़िस्मती को गले लगाना पड़ा! कामरेड उर्काबायेव शिशु-पालन गृह में पहुंचा। वहां हंसते-चहकते सोवियत बच्चे, इधर से उधर दौड़-भाग रहे थे। मेरे बच्चे नहीं, ग्रोह नहीं! मैं इस लायक़ नहीं हूं। बच्चे वहां खेलते-कूदते, फूलों के बारे में गीत गाते ग्रौर ख़ुद फूलों जैसे लगते थे। उन्हें भला ग्रौर क्या चाहिये था? एक लड़की उनकी देखभाल करती थी। मैं उससे परिचित था। कामरेड उर्काबायेव ने उसे भी नौकरी से निकाल बाहर किया। प्यारे दोस्तो, जानते हो भला वह भी क्यों? ग्राह, यह उनकी बदक़िस्मती ही थी!"

बेशक घटनायें तो वैसे ही घटी थीं जैसे कि मीर-शहीद ने बयान की।

मगर कामरेड उर्काबायेव को भी इस सिलसिले में कुछ कहना है। ग्राइये उसकी ज़बानी भी यही घटनायें सुनें।

वसन्त का मौसम था। छुट्टी के एक दिन कामरेड उर्काबायेव ग्रपने एक दोस्त ग्रौर मास्को के ग्राये दो मेहमानों के साथ समरक़न्द की पुरानी ग्रौर शानदार इमारतें देखने निकल पड़ा।

वे केन्द्रीय मैदान, रेगिस्तान, में आकर रुके। यहां शेर-दार मसजिद है। इस मसजिद के पश्चिमी दरवाज़े के आले में कोई इबारत खुदी हुई है। वे इसे पढ़ने के लिये ठहरे। मसजिद के निर्माता ने अपने बारे में लिखा है—

"इमारतसाज़ ने ऐसा मदरसा बनाया कि इसकी शान से धरती की शान, आकाश तक ऊंची हो गयी। दिमाग़ का उक़ाब अपने पंखों की शक्ति और कला के सहारे सैकड़ों बरसों तक इस मदरसे की मीनारों के ऊंचे शिखरों को छूने में असमर्थ रहेगा। सदियों तक ख़्यालों की सुन्दर कलाबाज़ियां, कल्पना की डोर के सहारे इसकी निषिद्ध मीनारों तक न पहुंच पायेंगी। सही सही हिसाब-किताब जोड़नेवाले वास्तुशिल्पी ने जब प्रवेश-द्वार की मेहराब खड़ी की तो आसमान तो इसे ग़लती से एक नया चांद ही समझ बैठा। वह हैरत में आकर दांतों तले उंगली दबाकर रह गया।"

"आत्म-आलोचना का नामनिशान तक नहीं," उर्काबायेव ने गहरी सांस ली।

यह इबारत पढ़कर वे इमारत के अन्दर गये। उन्हें बहुत ही ऊंची ऊंची सीढ़ियों वाला ईंटों का चक्करदार ज़ीना चढ़ना पड़ा। इससे उनकी ख़ासी-अच्छी कसरत हुई। देर तक उनकी टांगें दर्द करती रहीं। आख़िर वे पथरीले अंधेरे हिस्से से निकलकर ऊंचे खुले और हवादार छज्जे में पहुंचे। यहां उन्हें सदियों पुरानी धीमी आवाज़ें सुनाई दीं।

इमारतसाज़ के काम के साथ सुनाई देनेवाली तरह तरह की आवाज़ों का सहगान उनके कानों में गूंज उठा। उन्हें लुहारों के भारी-भरकम हथौड़ों की धमाधम सुनाई दी, छैनियों की ठक ठक गूंजी, गधों का बेसुरा अलाप सुन पड़ा, ऊंटों की घंटियां टनटनायीं, किसी साज़ का तार झंकृत हुआ और बुझा बुझा सा कण्ठ स्वर हवा में लहराया। ये तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदियों की मिली-जुली आवाज़ें थीं। सहसा वातावरण में एक नयी ही आवाज़ उभरी। यह बिल्कुल भिन्न और नये युग की आवाज़ थी। यह आवाज़ अधिक से अधिक ज़ोर पकड़ती और हर तरफ़ छाती चली गयी: एक लॉरी गुज़र रही थी। और दूसरी पंचवर्षीय योजना के समय का आदमी – उर्काबायेव – बड़े उत्साह से मुस्करा दिया।

मास्को से आये मेहमानों ने बड़े चाव से दूर तक नज़र दौड़ायी। क्षितिज के साथ साथ तियान-शान की ऊंची चोटियां आकाश पर नज़रें गड़ाये थीं। उनके सिरे शीशे की तरह तीखे थे। सामने पीली पीली चपटी बस्ती थी। यह बस्ती इस इमारत से पहाड़ों के दामन तक फैली हुई थी। बीच बीच में कहीं-कहीं, हरे-भरे बाग़-बगीचे भी थे। इस मटमैले सागर में कहीं-कहीं कोई ऊंची नीली लहर भी उठती दिखाई देती थी। कहीं तैमूरलंग का मक़बरा था तो कहीं बीबी-ख़ानुम का और कहीं शाहे-ज़िन्दा का। बहुत दूरी पर तैमरलंग के पोते उलूग-बेग की नक्षत्र पर्यवेक्षणशाला नज़र

आ रही थी। और वहां, दक्षिण की तरफ़ ख़्वाजा अहरार का मदरसा, ज़रा ऊपर को उठे हुए बिन्दु की तरह दिख रहा था।

"कैसी प्यारी ख़ामोशी है! दिल को कैसा सुकून मिलता है!" प्रशंसा से आत्म-विभोर होते हुए मास्कोवासियों ने कहा।

मगर उर्काबायेव तो गहरी सांस लेकर ही रह गया।

"बहुत ख़ूब है यह सुकून! तुम कुछ भी तो नहीं जानते इसके बारे में। तुम्हारी नज़र तो बस ख़ूबसूरत और पुरानी इमारतों को छूकर और मस्त होकर रह जाती है। तुम यह नहीं जानते कि यहां कितनी हलचल है, कितनी उथल-पुथल है। उधर देखो, उस तरफ़! वह ख़्वाजा अहरार की मसजिद है और उसके गिर्द एक गांव है। मैं तुम्हें वहां का एक क़िस्सा सुनाता हूं," उर्काबायेव खीझ भरी आवाज़ में कहता गया। "इस ईंट का सहारा मत लो, यह ख़तरनाक मामला है... हां तो मैं एक दिन वहां गया। मुझे बताया गया था कि वहां के रेशम के कीड़े पालनेवाले सभी लोग, किसी न किसी वजह से एक तरफ़ को झुक गये हैं। मैं तो चक्कर में पड़ गया। आख़िर यह अजीबोग़रीब बीमारी है क्या और फिर सिर्फ़ कीड़े पालनेवाले ही इसके शिकार क्यों हुए?"

"मैं चाय-ख़ाने के पास जाकर चुपचाप खड़ा हो गया। मैंने अपनी आंखों से किसानों को चाय-ख़ाने की तरफ़ जाते

देखा और सचमुच ही उन सभी को एक तरफ़ को झुका हुआ पाया। वे सभी अपनी बायीं कोहनी को दायें हाथ से थामे हुए लंगड़ा लंगड़ाकर चल रहे थे। मैं दंग था। सोचने लगा कि शायद इन सभी की बग़लों में फोड़े-फुंसियां निकल आयी हैं। यह भी ख़ूब रही! जानते हो मामला था क्या? रेशम के कीड़ों की नस्लों का विशेषज्ञ कोई अज़ीम-जान था। वह दो नावों में सवार रहनेवाले लोगों के ढंग का आदमी था। क्योंकि कोई दूसरा न था, इसी लिए उन्होंने उसे वहां भेज दिया था। जैसा कि कुदरती था, उज़्बेक रेशम ट्रस्ट ने उसे विशेष थरमामीटर दे दिये थे। ये थरमामीटर उन कमरों में लटकाये जाते हैं जहां वे कीड़े रखते हैं। यह तो तुम जानते ही हो कि वहां तो तापमान पर ही सारा दारोमदार होता है। रेशम के कीड़े ठण्ड पसन्द नहीं करते। तेईस दर्जे सेंटीग्रेड से नीचे तापमान गया कि वे एकदम सुस्त और कमज़ोर हो जाते हैं और खाना-पीना छोड़ देते हैं। हम रेशम के कीड़ों की नस्ल बेहतर बनाने के लिये एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं। रेशम के कीड़ों के विशेषज्ञ के लिये यह निहायत ज़रूरी है कि वह दिन में दो बार कीड़ों वाले कमरों का चक्कर लगाये और यह देखे कि सब कुछ ठीक-ठाक है या नहीं। इस हज़रत ने तो बस कमाल ही किया। कमरों में जाने के बजाय उसने किसानों को चाय-ख़ाने में आने और अपने साथ थरमामीटर लाने का हुक्म दिया। उसने उन्हें कहा कि

वे अपने थरमामीटर बग़ल में दबा दबाकर लायें। इस तरह ख़ुद तापमान के पास जाने के बजाय उसने तापमान को अपने पास आने का फ़रमान जारी किया। अज़ीम-जान थरमामीटर पर नज़र दौड़ाता, सैंतीस दर्जे के आस पास तापमान पढ़ता – यानी इन्सानी जिस्म का तापमान – और कहता – 'तापमान बहुत ऊंचा है। बहुत ज़्यादा गर्मी है। जगह ठंडी करो।' और इस तरह कीड़े मर जाते।"

सभी हंस दिये, मगर उर्काबायेव गहरी सोच में डूबा रहा।

"नहीं," उसने कहा, "यह हंसी-मज़ाक़ की बात नहीं है। यह बहुत ही अफ़सोस की, बेहद अफ़सोस की बात है। अब आगे सुनो। अपने रास्ते में ही मैं स्थानीय शिशु-पालन गृह में जा पहुंचा। सोचा कि एक नज़र उसे भी देखता चलूं। वहां शिशु-पालन गृह की डायरेक्टर से मुलाक़ात हुई। वह ख़ासी ख़ूबसूरत और जवान रूसी औरत थी। 'यहां तो हर चीज़ मज़े में चल रही है,' उसने मुझसे कहा। 'हम बहुत ख़ुश हैं। बच्चो, क़तार में खड़े हो जाओ!' बच्चे क़तार में खड़े हो गये। बच्चे तो हड्डियों के ढांचे जैसे लग रहे थे। वे कमज़ोर और मरी मरी आवाज़ में उज़्बेक भाषा में गाने लगे –

हम हैं सुन्दर कमल
खिले हैं अद्भुत एक बगीचे में
हम सूरज की धूप
हवा के झोंकों पर ही जीते हैं...

इन पंक्तियों को स्मरण करते हुए उर्काबायेव कुछ ऐसे आवेश से हिला-डुला कि उसकी कोहनियों के नीचे से ईंट की धूल का एक छोटा सा बादल ऊपर को उड़ा।

"और ध्यान रहे कि यह राई-रत्ती सच था। वे झूठ न बोल रहे थे। सचमुच ही वे सूरज की रोशनी और हवा पर ही जी रहे थे। उनके राशन बड़े ढंग से इधर-उधर किये जा रहे थे। मैंने सारी जांच-पड़ताल करके हक़ीक़त जान ली। इस औरत ने कितनी भयंकर हानि पहुंचायी तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। बच्चों की तो ख़ैर चर्चा ही बेकार है। बच्चों को तो हमने खिला-पिलाकर तगड़ा कर लिया, मगर समझ-बूझ रखनेवाले लोग तो आसानी से यह कभी न भूल पायेंगे। किंडरगार्टन और शिशु-पालन गृह ही तो नारियों में सोवियत सत्ता का झंडा गाड़ते हैं, ज़ोरदार हिमायत करते हैं क्योंकि बालक ही तो उन नारियों के गलहार हैं।"

"वाह, वाह, क्या ख़ूबसूरत बात कही है तुमने!" एक मास्कोवासी ने कहा। "तुम तो शायर हो!"

उर्काबायेव ने गहरी सांस ली।

* * *

रेशम के कीड़ों की नयी विशेषज्ञा थी, 'रूसी आंखों वाली' लड़की शूरा पोतापोवा। वह एक कृषि-विशेषज्ञ की

बेटी थी। वह वोल्गा के तटवर्ती इलाक़े की रहनेवाली थी। वह तो खुमियों और बेरियों की धरती है। वहां तो लोग इतना भी नहीं जानते कि रेशम का कीड़ा कहते किसे हैं।

कृषि-विशेषज्ञ पोतापोव की बीवी तपेदिक की शिकार हो गयी। उसकी सूरत मुरझाये हुए सेब की सी निकल आयी थी जो खाने के कमरे के एक कोने में रखी मेज़ पर पड़ा रहता। पोतापोव अपनी मुरझायी हुई, कुछ कुछ तमतमाये गालों वाली बीवी पर नज़र डालता तो आंख झपककर और खांसकर रह जाता। वैसे डाक्टर उसे लगातार यह दिलासा दिये जा रहा था, वक़्त तो लगेगा ही, पर सब ठीक हो रहा है।

आख़िर वसन्त के एक नम दिन डाक्टर भी सोच में डूब गया –

"इसे दक्षिण में ले जाना चाहिये। क्रीमिया या काकेशिया में।"

"मगर वहां हम अपना पेट कैसे पालेंगे?" पोतापोव ने बिगड़ते हुए कहा।

दोनों क्षण भर चुप रहे। इसी बीच एक बरस की शूरा एक अख़बार पर घुटनों के बल लुढ़क रही थी। उस अख़बार में लिखा था कि मारना के नाविक के मकान पर साथी देशों ने फिर क़ब्ज़ा कर लिया है।

"अब अगर तुर्किस्तान जाने की बात होती तो मैं कुछ कर भी सकता था," पोतापोव ने कहा। "एक दोस्त ने मुझे लिखा है कि ताशक़न्द में कृषि-विशेषज्ञों की ज़रूरत है।"

"बहुत ख़ूब," डाक्टर ने राहत की सांस लेकर कहा। "वह भी तो दक्षिण ही है। चमकता सूरज और धूप यही तो बस चाहिये। ज़रूर जाइये। तीन चार महीनों में ही आप अपनी बीवी को पहचान तक न सकेंगे!"

डाक्टर ने सोलह आने सच कहा था। आध बरस बाद पोतापोव ताशक़न्द में अपनी बीवी के कफ़न के पास खड़ा था। वह अपनी लीज़ा को पहचान तक न सकता था। सब-ट्रापिकल सूरज और सूखी मिट्टी धूल ने उसके अन्दर रचकर उसे पूरी तरह खा डाला।

लीज़ा की क़ब्र पर पोपलार का एक पेड़ बहुत ही तेज़ी से बढ़ा। वह इतनी तेज़ी से बढ़ा मानो ताशक़न्द के मशहूर पोपलार पेड़ों की मशहूरी का डंका बजाना चाहता हो। ये पेड़ जनरल कोफ़मान ने इस प्रदेश की अपनी जीत की ख़ुशी में उगाये थे। शुरू में तो पोतापोव इस पोपलार के मोह में जकड़ा रहा, मगर बाद में उसे उस धरती से ही प्यार हो गया। अब तो उसे अपनी बेचारी बीवी का भी अक्सर ध्यान नहीं आता था। चिमगान के पहाड़ी स्वास्थ्यप्रद केन्द्र की यात्रा के बाद सिर्फ़ एक बार उसने अपनी बेटी से कहा—

"आख़िर डाक्टर ने ठीक ही कहा था। यहां पहाड़ों

में तो ग़ज़ब का जलवायु है। मगर क्रान्ति पूर्व तो हमें कोई इनके पास तक न फटकने देता। और बाद में... बाद में बहुत देर हो चुकी थी।"

हर वसन्त में पोतापोव अपनी बेटी का क़द मापता। आख़िर बेटी का भूरे बालों वाला सिर बाप के कंधों तक जा पहुंचा। शूरा अब रेशम के कीड़ों की विशेषज्ञा बन चुकी थी। पोतापोव स्वयं रेशम के कीड़ों के संस्थान के रेशम-कोषों के नस्ल-सुधार-विभाग में काम करता था।

शूरा को एक दिन समरक़न्द में काम करने और फ़ौरन काम पर पहुंचने का बुलावा आया। उस दिन पोतापोव का मन बड़ा उदास हुआ—शूरा ही तो उसकी दुनिया थी। फिर वे कभी एक दूसरे से अलग भी तो नहीं हुए थे।

संस्थान के साथ ही शहतूत के पेड़ों की एक क़तार थी। वसन्त का अभी आरम्भ हुआ ही था। शहतूत के सभी तरह के पेड़ों में अंकुर फूट रहे थे। उन पेड़ों में साधारण, बौने, घने, स्तम्भीय, गोलाकार और सर्पीले आदि शामिल थे। एक पेड़ दूसरों से बिल्कुल भिन्न और अलग दिखाई दे रहा था। यह बड़ा ही सुन्दर और बड़े बड़े पत्तों वाला पेड़ था। वह जापान से लाया गया था।

बाप-बेटी पेड़ों के बीच के संकरे मार्ग पर, सफ़ेद मकान के आस पास इधर-उधर चक्कर लगाते रहे। उस सफ़ेद मकान में, दूसरे कीड़ों से अलग रखे गये तजरबाती कीड़े थे।

इन्हें पेबराइन* के टीके लगाकर विशेष वैज्ञानिक कर्मचारियों के निरीक्षण में रखा गया था।

"आपको याद है न पापा," शूरा ने हंसते हुए कहा, "जब मुझे डिफ़्टेरिया हुआ था तो इसी तरह अलग वार्ड में रखी गयी थी?"

पोतापोव ने सोच में डूबे डूबे हामी भरी।

"आप उदास दिखाई दे रहे हैं," शूरा ने कहा। "मगर मैं न जाऊं, सो तो हो ही नहीं सकता। कोमसोमोल का मेम्बर होने के नाते मुझे जाना ही है। मैं तो ख़ैर वैसे भी जाना चाहती हूं। स्वतन्त्र रूप से यह मेरा पहला काम होगा। वहां रेशम के अंडों के ढाई सौ बक्सों में रेशम के कीड़े फिर से पालने का सवाल है।"

"मैं यह समझता हूं कि तुम्हें जाना ही चाहिये और यह कि तुम जाना चाहती भी हो। मगर शूरा, इसके लिये अचानक ही दूसरी जगह जाना क्या ज़रूरी है? तुम्हारे लिये क्या यहीं काम करना ज़्यादा बेहतर नहीं होगा?"

"और आपके अन्दर क्या यह अवसरवादी नहीं बोल रहा है?"

"शायद," बेटी को ग़ौर से देखते हुए पोतापोव ने जवाब दिया।

---

*पेबराइन – रेशम के कीड़ों की संक्रामक बीमारी।

"हां तो बस यही बात है। अगर आप ऐसा महसूस करते हैं तो आपको इसके लिये अफ़सोस होना चाहिये।"

पोतापोव ने फिर बेटी की तरफ़ देखा।

"मुझे अफ़सोस है," उसने जवाब दिया। "मगर शूरा और कुछ नहीं तो तुम मुझे अक्सर ख़त तो लिखना। इतना तो ज़रूर ही करना। और देखो हर चीज़ के बारे में लिखना। लिखोगी न?"

शूरा ने अपने पिता की तरफ़ देखा।

"हां, ज़रूर लिखूंगी," उसने जवाब दिया।

३

समरक़न्द में एक दिन एक ख़बर फैली। लोगों ने सुना कि हर मुहल्ले में एक विशेष आयोग इस बात का फ़ैसला करेगा कि किसको पासपोर्ट दिया जाये या न दिया जाये। इस ख़बर से बहुत से लोगों में नाराज़गी की लहर दौड़ गयी। मीर-शहीद भी इन्हीं लोगों में से एक था।

"दोस्तो," मीर-शहीद ने कहा, "मैंने सुना है कि इस छोटी सी किताब में छः भाषाओं में 'पासपोर्ट' शब्द लिखा रहेगा। मुझे लगता है कि उन दिनों की याद करके कि जब यह मुसीबत न थी हमें छः गुना ही अफ़सोस होगा। मेरी ही मिसाल ले लीजिये। मेरे तो अपने दिल पर ही यह लिखा हुआ है कि मैं एक ईमानदार और मेहरबान उज़्बेक हूं। भला काग़ज़ पर यह सब लिखने की क्या ज़रूरत पड़ी है?

यह सच है कि कभी मैं मालदार आदमी था। मगर यह तो बीती बात है। और अगर यह बीती बात है तो इसका ज़िक्र ही क्यों करना हुआ? मगर यह किस्सा यहीं ख़त्म नहीं हो जाता। अगर हमारी बीवियों ने अलग पासपोर्टों की मांग की, तब? तब क्या होगा? हमारी मेहरबान सोवियत सरकार जब उन्हें उनके नाम, उम्र और उनके ख़ास निशानों की किताब दे देगी तो क्या वे अपने पतियों की परवाह करेंगी? वे क्या उनका कहना मानेंगी? तब तो वे मानो ऐसी भेड़-बकरियां होंगी जिनके बारे में यह भी मालूम होगा कि उनके थन कैसे हैं और उनकी कौनसी टांग टूटी हुई है।"

इस क़िस्म की दलीलें देते हुए, मीर-शहीद के मन में उसकी अपनी दूसरी बीबी, नूर-बीबी ही घूम रही थी। नूर-बीबी की आंखों में अब अक्सर अजीब सी चिंगारियों और बिजलियों की झलक मिलती थी। इन्हें देखकर आदमी सोचने के लिये मजबूर हो जाता था। कुछ दिनों बाद मीर-शहीद अपने हमदर्दों और दोस्तों से फिर कह रहा था—

"हां, मेरे दोस्तो! मुझे अचानक ही यह ख़बर मिली कि मेरी बीबी, नूर-बीबी मुहल्ला-कमेटी में गयी थी। वहां उसने पासपोर्ट की मांग की है। ज़ाहिर है कि इससे मेरे दिल को भारी ठेस लगी कि मुझसे सलाह-मशविरा किये बिना ही वह मुहल्ला-कमेटी में जा पहुंची। वह घर लौटी तो हमारे बीच कुछ प्यार की बातें हुईं। मुझे उम्मीद है कि

अब उसने अपना इरादा बदल लिया होगा। मुझे लगता है कि अब उसे पासपोर्ट की ज़रूरत नहीं रही। अल्लाह उसकी उम्र दराज़ करे! मगर कहीं अगर वह जल्दी भी चल बसी तो भी अल्लाह उसे पासपोर्ट के बिना ही पहचान लेगा। उसके जिस्म पर अब सभी ख़ास निशान जो हैं। मेहनती मुंशी की तरह मैंने उसके शरीर पर सभी ज़रूरी निशान लिख दिये हैं। उसे कोई दूसरी औरत समझने की भूल अब कोई न कर सकेगा, मेरे दोस्तो!"

लगभग इसी वक़्त पोतापोव को अपनी बेटी का एक लम्बा ख़त मिला।

"प्यारे पापा,

मेरे यहां पहुंचने से पहले ही अज़ीम-जान को काम से निकाल दिया गया था। वह तो सचमुच ही हमारी सरकार की पीठ में छुरा भोंकनेवालों में से एक था। उसने तो ठण्ड से लगभग सभी कीड़ों को मार डाला। यह तो आप जानते हैं कि इस बार वसन्त में भी ख़ासी ठण्ड रही। उसने हुक्म दे दिया कि कमरे गर्माये न जायें और खिड़कियां खोल दी जायें। नतीजा यह हुआ कि अब जबकि खिड़कियां खोलने की ज़रूरत है तो कोई भी ऐसा करने को तैयार नहीं होगा वे मेरे आदेश पर विश्वास जो नहीं करेंगे। हमेशा यही तो होता है कि एक बुरा कामगार न केवल ख़ुद ही बुराई करता है बल्कि दूसरों के काम में भी टांग अड़ाता है। लोग

यह कहते सुने गये हैं कि विशेषज्ञों के आने से पहले कीड़े ज़िन्दा रहते थे। सो आप अब सारी स्थिति समझ सकते हैं और यह भी महसूस कर सकते हैं कि मेरे कंधों पर कितनी भारी ज़िम्मेदारी है। और आप मुझे यहां आने से मना कर रहे थे!

"अब मैं आपको इस जगह के बारे में कुछ बताती हूं। मैं एक मसजिद में रह रही हूं—इसकी तो मुझे सपने में भी आशा न हो सकती थी। भूतपूर्व कोठरियों में कुछ हेर-फेर करके कीड़ों के लिये कमरे बनाये गये हैं। ऐसे ही एक कमरे में मैं टिकी हुई हूं। मेरी कोठरी में अभी भी धुएं से काली हुई एक जगह है जहां पहले अंगीठी और पास ही किताबों की अलमारी होती थी। जहां पहले कभी कोई शागिर्द सोता था मैं उसी छोटे से ताक़ पर सोती हूं। हम सामूहिक किसानों और वैयक्तिक किसानों को रेशम के कीड़े देते हैं। कुछ लोगों को मैं अंडे भी दे देती हूं, वैसे कीड़े देना ही मैं बेहतर समझती हूं। मुसीबत यह है कि अपना काम-काज ख़त्म करके ये सभी किसान एक साथ ही रेशम के कीड़े लेने आ पहुंचते हैं। वे अपनी टोकरियां हाथ में लिये हुए क़तार बांधकर खड़े हो जाते हैं। तब मेरी और मेरी सहायक नारियों की तो बस शामत ही आ जाती है। मेरी तीन सहायिकायें हैं। इनमें से दो सामूहिक फ़ार्म और एक ग्राम-परिषद् की प्रतिनिधि है। मैं उज़्बेक भाषा में अपनी बात अच्छी तरह समझा लेती हूं।

"शहतूत के पेड़ पास ही में हैं, मगर झाड़ियों वाले नहीं हैं। वे बहुत ऊंचे हैं और इनपर चढ़ना भी ढेढ़ी खीर है। बस्ती के बच्चे ही मुझे पत्ते इकट्ठे करके ला देते हैं। जो जो बच्चा काफ़ी सारे पत्ते लाता है उसे मैं रेशम के कीड़ों के अंडों वाला एक ख़ाली डिब्बा दे देती हूं। इस तरह वे पत्ते इकट्ठे करने की सिर तोड़ कोशिश करते हैं।

"यह बड़े दुख की बात है कि सभी के सभी पेड़ सड़क के किनारे किनारे हैं और यह कि इनपर धूल जमी रहती है। कीड़ों को धूल भरे पत्ते खिलाना अच्छा नहीं, पर यदि धोकर सीले ही दे दिये जायें तो बहुत मुमकिन है कि इन सभी को दस्त लग जाये। आप मुझे बतायें कि क्या करना अधिक उचित होगा।

"रोशनदानों की कमी, मेरी दूसरी परेशानी है। खिड़कियां तो यहां हैं ही नहीं। सिर्फ़ दरवाज़े हैं जो भीतरी आंगन में खुलते हैं। हां वैसे यह आंगन ख़ूब कमाल का बना हुआ है। एक सिरे पर धीरे से कहा हुआ शब्द दूसरे सिरे पर सुना जा सकता है।

"मैं यह चर्चा भी करना चाहती हूं कि एक कोठरी में मुझे उज़्बेक रेशम ट्रस्ट के पोस्टरों के पुलिन्दे के पुलिन्दे मिले हैं। आपको याद ही होगा – हरे और पीले रंग के पोस्टर। इनके बीच में एक बड़ा सा रेशम का कीड़ा बना हुआ है और

इर्द-गिर्द उज़्बेक ज़बान में हिदायतें हैं। अज़ीम-जान ने ये पोस्टर एक कोने में जमाकर रख दिये थे और कभी बांटे नहीं थे।

"ज़िला-प्रशिक्षक मुझसे मिलने आया था, मगर मैं तो आपकी सलाह लेना चाहती हूं। यह सही है कि आप पार्टी-सदस्य नहीं, फिर भी आप अनुभवी विशेषज्ञ तो हैं ही। आप मेरे पिता हैं, सो तो आप हैं ही।

"अच्छा, आलविदा, पापा।

"मेरी रात तो पलकों में ही कटेगी। पौ फटते तक रेशम के कीड़े निकल आयेंगे। कुछ 'स्काउट' तो नज़र भी आने लगे हैं। यह बताइये कि आपने कभी नवजात रेशम के कीड़ों को ध्यान से देखा है? आपने यह देखा है कि जालीदार कपड़े में से जब वे शहतूत के पत्तों पर आते हैं तो ट्राम में झटके खानेवाले इन्सानों की तरह ही आगे-पीछे होते हैं? एक ही रास्ते में से गुज़रते हुए वे भी इन्सानों की तरह ही अपने को सिकोड़ लेते हैं। मगर ख़ैर यह तो मैंने ऐसे ही लिख दिया है।

आपकी शूरा।"

दूसरा पत्र –

"प्यारे पापा,

बहुत दिनों बाद ख़त लिख रही हूं। मैं काम में बहुत उलझी हुई थी। अब कुछ दम मारने की फ़ुरसत मिली है। रेशम के अधिकतर कीड़े बांटे जा चुके हैं। वे अच्छे स्वस्थ

निकले हैं। कुछ थोड़े ही पीले निकले हैं। जिन परिवारों को हमने रेशम के कीड़े दिये थे, कल मैंने उन घरों का चक्कर लगाया। सामूहिक फ़ार्म की मेरी एक सहायिका मुहब्बत भी मेरे साथ थी। वह तो ग़ज़ब की औरत है, पार्टी की सदस्या है। वह जवान नहीं है, बेटों-पोतों वाली है। मगर बहुत ही ख़ुशमिज़ाज और हंसमुख है। अपनी ज़िन्दगी की चर्चा करते हुए भी वह मुस्कराती रहती है। वैसे उसकी ज़िन्दगी अच्छी ख़ासी कांटों की सेज रही है। मसलन उसकी शादी का क़िस्सा ही ले लीजिये। बेचारी ग़रीबी के घर में पैदा हुई और मां-बाप की सातवीं सन्तान थी। सोलह बरस की 'कुंआरी बुढ़िया' होने पर तो उसकी शादी हुई। ग़रीब घर की बेटी थी इसलिये कोई भी शादी करने को तैयार न था। आख़िर एक दूल्हा मिला ही और सो भी मालदार। उसके घर में क़ालीन थे, रज़ाइयां थीं, कोट थे और एक समोवार भी था। मुहब्बत ने इस आदमी से शादी की और तीन दिनों तक ख़ूब ऐश की मौज उड़ायी। समोवार का तो उसने जी भर मज़ा लिया। और फिर चौथे दिन उसे पता लगा कि यह सारी सम्पत्ति उसकी न थी, किराये पर ली हुई थी। उसके पति का एक दोस्त आया और क़ालीन ले गया, दूसरा आया और रज़ाइयां समेट ले गया, तीसरा आया तो सब कुछ ही ले गया। सिर्फ़ समोवार ही बाक़ी रह गया। मगर आख़िर कोई उसे भी लेने आ पहुंचा।

"'तब,' मुहब्बत ने बताया, 'मैं समोवार के पास जा बैठी, मैंने कसकर अपनी बांहें इसके गिर्द डाल दीं और गाल इसके साथ चिपका दिया। समोवार ठंडा था, मगर मेरे अन्दर आग दहक रही थी। मैं फूट फूटकर रोयी, मगर वह ख़ामोश रहा। आख़िर वे उसे भी उठाकर ले गये।' मुहब्बत अब उन दिनों को याद करती है तो हंसती है। 'मैं एक बेवक़ूफ़, बुद्धू और भोली लड़की थी। तब मैं सोचे-समझे बिना ही हंसती थी, रोती थी।'

"हां तो वह इस तरह की बातें करती है।

"हम दोनों साथ साथ गयीं। हम एक सामूहिक किसान के घर पहुंचीं। हमने दस्तक दी – कोई जवाब न मिला। सूरज चमक रहा था। ख़ामोशी। सभी तरफ़ गहरी ख़ामोशी छायी थी। ऐसी ख़ामोशी कि जब सिर्फ़ पॉपी के फूल ही कच्ची छतों पर झूमते हैं और मधु-मक्खियां भिनभिनाती हैं। आख़िर दरवाज़ा खुला और हम अन्दर गयीं। हमने अपने सामने एक बुढ़िया देखी। उम्र कम से कम सौ बरस की रही होगी। सांवली, दाढ़ी और गलगण्ड वाली। उसका बुर्क़ा चिथड़े चिथड़े हुआ पड़ा था और बुढ़िया ख़ुद भी फटेहाल थी। तभी पड़ोस के घर से एक और बुढ़िया आयी और फिर कुछ दूसरी औरतें भी जमा हो गयीं। इसी तरह का खस्ताहाल एक बूढ़ा भी आया। फिर कुछ बच्चे जमा हुए। अच्छी ख़ासी भीड़ इकट्ठी हो गयी।

"'बाक़ी लोग कहां हैं?' मुहब्बत ने पूछा। 'काम पर गये हैं क्या?'–'हां, काम पर गये हैं,' उन्होंने जवाब दिया। 'वे सब्ज़ियों की क्यारियों और बगीचों में काम कर रहे हैं (इनका सामूहिक फ़ार्म सब्ज़ियां और फल पैदा करता है)।

"अचानक, दूसरों के मुक़ाबले में बड़ी, एक छोटी सी लड़की ने रूसी में कहा–

"'और हमारे घर के सभी लोग अंगूरों के बगीचे में हैं। वहां वे लोग नाइटरेट लाये हैं। यह खाद है।'

"और वे सभी बूढ़े लोग हामी भरने, मुस्कराने और कहने लगे–'नाइटरेट, नाइटरेट, नाइटरेट!' वे सिर्फ़ यही एक रूसी शब्द समझ पाये थे। बाद में वहां से चलते हुए मैंने उनसे कहा–

"'अलविदा, नाइटरेट!'

"'नाइटरेट, नाइटरेट!' उन्होंने जवाब दिया।

"मगर वहां जाते ही हमने रेशम के कीड़ों पर नज़र डाली थी। वे एक बन्द कमरे में, साथ साथ सटे हुए, छत से लटकती हुई एक टोकरी में पड़े थे। उन्होंने उन्हें रूईदार रज़ाइयों से ढका हुआ था। ज़रूर उनका दम घुट रहा होगा। मैंने फ़ौरन रज़ाइयां उतारीं और खिड़कियां पूरी तरह खोल दीं। बाद में मुहब्बत ने मुझसे कहा–

"'आप नहीं जानतीं कि रेशम हमारी औरतों के लिये

क्या मानी रखता है। यह उनकी आज़ादी का अलमबरदार है। रेशम से कमाया हुआ पैसा, उनका अपना पैसा है। हमें इस बात का खास ख़्याल रखना चाहिये कि औरतें ख़ुद आकर रेशम-कोष दें। तब यक़ीनन पैसा उनके हाथों में जायेगा। वरना तो यह भी हो सकता है कि काम वे करें और पैसा जाये मर्दों की जेब में।'

"अच्छा, अलविदा, पापा।

आपकी शूरा।"

तीसरा पत्र–

"पापा,

काश कि आपको मालूम होता कि कैसी घटना घटी है! हम फिर मुहब्बत के साथ बाहर गयीं। एक मकान के सामने पहुंचकर उसने मुझसे कहा–'यहां एक बहुत बुरा आदमी मीर-शहीद रहता है। फिर भी ज़रूर ही यहां अन्दर जाना चाहिये। उसकी दूसरी बीबी नूर-बीबी अभी भी बहुत दुखी रहती है। नयी ज़िन्दगी उसके दरवाज़े के पास से गुज़र रही है, मगर उसके अहाते में जाने की उसे मनाही है। उसके तीन बच्चे हैं। तीसरा बच्चा, नन्ही-मुन्नी सी बेटी है। वह बीमार है। उसे साथ लेकर वह आये-जाये भी तो कैसे? अगर वह उसे घर पर छोड़े तो मीर-शहीद की पहली बीबी उसकी बोटियां नोच डाले।'

"ख़ैर हम अन्दर गयीं। उनका कमरा अच्छा और बड़ा

सा है। उसकी दीवारों पर फूलदार काग़ज़ों की जगह वित्तीय इन्स्पेक्टर के फ़ार्म चिपके हुए हैं। वहां हमने ढेरों चाय के प्याले, ट्रे और शीशे के मर्तबान देखे। बहुत सी रज़ाइयां भी दिखाई दीं। मेज़बान ने बातों में ख़ूब मिस्री घोली और हमारी ओर बड़े प्यार से देखा। वह लम्बे कुरते पर रूमाल बांधे था। मतलब यह कि अभी भी वह दूसरों पर अपना जादू चलाने का इरादा रखता है। उसकी खोपड़ी-टोपी, सिर पर पीछे की तरफ़ खिसकी हुई थी। ज़ाहिर है कि वह ख़ुद अपने से बहुत ही ख़ुश था। वहां बच्चे भी थे। सबसे छोटी सन्तान लड़की है और उसकी टांगें झुकी हुई हैं। मैंने उससे कहा –

"'तुम्हें इसे डाक्टर के पास ले जाना चाहिये। इसे रिकट है।'

"जवाब में उसने अपने दिल पर हाथ रख लिया। मैंने उससे कहा 'रिकट' और उसने जवाब दिया, 'रहमत'। उसी के क़रीब एक औरत खड़ी थी। मैंने मुहब्बत से धीरे से पूछा –

"'क्या यही नूर-बीबी है?"

"और उसने और भी धीरे से जवाब दिया –

"'नहीं, यह वह नहीं है। यह उसकी पहली बीबी है। ठहरो, मैं नूर-बीबी के बारे में पूछती हूं!'

"मगर उसे पूछने का मौक़ा न मिला।

"आगे जो हुआ वह यह है –

"मैं रेशम के कीड़ों पर नज़र डालने के लिये अन्दर

चली गयी। उन्होंने ख़ुद ही अंडों से कीड़े निकाले थे। कीड़े तो बस निकले ही थे। वह औरत, उसकी पहली बीबी, काग़ज़ के एक टुकड़े से ही उन्हें एक जगह समेट रही थी।

"'देखो बहन, ऐसे करना ठीक नहीं है,' मैंने उससे कहा।' 'आपको इन्हें मुर्ग़ी के पंख से समेटना चाहिये। मैं आपको पंख ला देती हूं।'

"मैं झटपट अहाते की तरफ़ भाग गयी। मुझे इस बात का पूरा यक़ीन था कि उनके घर में मुर्ग़ी ज़रूर होगी। मिट्टी के एक बड़े से मर्तबान के क़रीब मैंने नीलकण्ठ का एक पंख पड़ा देखा। मैंने सोचा कि यह भी वही काम दे देगा। मैं उसे उठाने के लिये झुकी। जैसे ही मैं झुकी कि मुझे मर्तबान के पास से किसी के कराहने की आवाज़ सुनाई दी। मैं नज़दीक गयी तो मैंने देखा कि वह मर्तबान एक छोटी सी कोठरी के दरवाज़े पर रखा हुआ है। मैं नहीं जानती कि क्यों और कैसे मगर अचानक मेरे दिमाग़ में यह बात घूम गयी कि नूर-बीबी उस कोठरी में बीमार पड़ी है और ये लोग उसे हम से छिपा रहे हैं। इधर मेरे दिमाग़ में यह बात घूमी (यह सब कुछ पलक झपकते में हुआ) कि मेज़बान ख़ुद वहां आ पहुंचा। पहले की तरह ही रस घोलते हुए उसने मुझसे कहा–

"'बहन प्रशिक्षिका, आप कितनी मेहरबान हैं। हमारे लिये और हमारे इन घटिया से कीड़ों के लिये इतनी परेशान हो रही हैं। मगर हमने तो एक ज़माने से मुर्ग़ियां नहीं पाली हैं।'

"मैंने भी उसी तरह बड़े मीठे ढंग से उसका जवाब दिया –

"'कोई बात नहीं, भाई मीर-शहीद। नीलकण्ठ के मामूली पंख से भी काम चल जायेगा।'

"और मैंने यह ज़ाहिर ही न होने दिया कि मेरे कानों में कुछ भनक पड़ी है।

"पापा, मैं ख़त को यहीं छोड़ने के लिये मजबूर हूं। मुझे भिड़ों के उड़ने की आवाज़ सुनाई दे रही है। मकड़ियों और चूहों से भी ज़्यादा मुझे भिड़ों से डर लगता है। वैसे तो चूहे और मकड़ियां भी रेशम के कीड़ों के कुछ कम शौक़ीन नहीं हैं। मगर भिड़ें तो उनकी जानी दुश्मन हैं। मैं अभी जाकर देखती हूं कि वे क्यों इस तरह भिनभिना रहे हैं। बाक़ी घटना मैं आपको बाद में लिखूंगी। काश, आप जानते कि बाद में क्या हुआ!"

बाद में हुआ यह।

सामूहिक फ़ार्म के कोमसोमोल दल का सेक्रेट्री कुर्कमास निज़ामोव अंगूरों की बेलों के बीच की जगह में ट्रैक्टर चला रहा था। वह वहां मटर और तीनपत्तिया घास बोना चाहता था। अंगूरों की बेलों के बीच की जगह के सदुपयोग का यह नया तरीक़ा था। कुछ लोगों ने इस तरीक़े का विरोध किया था। उनका ख़्याल था कि इस तरह से ज़मीन का उपजाऊपन ख़त्म हो जायेगा और ख़ुद अंगूरों को भी काफ़ी

ख़ुराक न मिल सकेगी। इसलिये यह फ़ैसला किया गया कि सिर्फ़ एक जगह ही यह तजरबा किया जाये।

कुर्कमास बहुत ही ध्यान से ट्रैक्टर चला रहा था। वह महसूस कर रहा था कि उसका ट्रैक्टर बहुत चौड़ा है और उससे अंगूर के नाज़ुक पौधों को भी नुक़सान पहुंच सकता है। संकरे ट्रैक्टर की ज़रूरत थी। मगर क्योंकि वैसा ट्रैक्टर पाना मुमकिन न था इसलिये वह बहुत परेशान था। उसकी खोपड़ी-टोपी पसीने से तर-ब-तर हुई पड़ी थी। जंगली ट्यूलिप का फूल उसके कान के पीछे चिपका हुआ था। वह भी कुर्कमास के तमतमाये गालों की गर्मी से मुरझाता जा रहा था।

शूरा धूल का बादल उड़ाती और चिल्लाती हुई ट्रैक्टर के पास पहुंची।

"कुर्कमास, रुक जाओ!"

मगर वह उस रेखा के अन्त तक तो जा ही पहुंचा। तभी उसने पूछा –

"क्या बात है? मुझे तो धूल चिल्लाती दिखाई दे रही है, मगर धूल में छिपा कौन है, यह नहीं जानता। क्या मामला है? मेरे लिये यह बहुत मुश्किल घड़ी है और इधर तुम चिल्लाती चली आयी हो।"

"नहीं, ठहर जाओ। मैं जो कहना चाहती हूं वह तुम्हारे काम से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।"

शूरा ने धूप से जलते हुए ट्रैक्टर पर अपने हाथ रख

दिये। उसके हाथ जल रहे थे, मगर इससे क्या! वह तो मानो उसके पहियों को हिलने-डुलने से तो रोके हुए थी। उसने कुर्कमास को पूरी कहानी कह सुनायी।

मीर-शहीद ने अपने दोस्तों से सच बात ही कही थी। नूर-बीबी को अब कोई दूसरी औरत समझने की भूल न हो सकती थी। उसके 'ख़ास निशानों' पर ख़ून की पपड़ियां जमी हुई थीं। एक घाव तो विशेष रूप से गहरा था। वह आंख से उसके रूखे-सूखे बालों तक फैला हुआ था।

वह चिथड़े चिथड़े हुई रज़ाई पर, छानी में बैठी थी। वह घुटनों के गिर्द हाथ डाले हुए एकटक ज़मीन ताक रही थी।

"इसे बुख़ार आता है, कामरेड," मीर-शहीद ने कांपते हुए कहा। "यह वह बुख़ार है कि जिसमें आदमी होश-हवास खो बैठता है, वेहोशी के दौरे पड़ते हैं और जिस्म पर वह जहां-तहां ख़राशें डाल लेता है। मेरी प्यारी बीबी, नूर-बीबी, क्यों यही बात है न?"

मगर नूर-बीबी ख़ामोश रही। उस ख़ामोशी में भी कुर्कमास, शूरा, मुहब्बत और स्थानीय मिलिशियामैन नूर-बीबी को ध्यान से देखते रहे। आख़िर डिस्पेन्सरी की डाक्टर ने ख़ामोशी तोड़ते हुए कहा –

"हम स्ट्रेचर अपने साथ लेते आये, यह भी अच्छा ही किया। बहुत सावधानी, बेहद सावधानी बरतना, साथियो।"

वे नूर-बीबी को ले गये। अब ज़िले के मिलिशियामैन

उरुनबई की मीर-शहीद से निपटने की बारी आयी। उरुनबई के कान के पीछे भी ट्यूलिप का फूल चिपका हुआ था। मौसम जो इन्हीं फूलों का था। उसने मीर-शहीद से कहा –

"तुम्हारी बीबी ज़िन्दा रहेगी। यह डाक्टर उसे ठीक कर देगी, यह अच्छी बात है। बुरी बात है तो सिर्फ़ यह कि उसके ज़िन्दा रहने से तुम भी ज़िन्दा रह सकोगे। पर ख़ैर अब तुम जल्दी करो। एक अर्से से वहां तुम्हारा इन्तज़ार हो रहा है। अब तुम उन्हें और इन्तज़ार नहीं करवा सकते। चलो, फ़ौरन।"

४

ख़्वाजा अहरार के इस पुराने मदरसे में कुलीनों के बहुत से लड़कों ने तालीम पायी थी। मगर आज वह औरतों से खचाखच भरा था। यहां आज एक असाधारण सी सभा हो रही थी। किसी ने इसका इन्तज़ाम न किया था, किसी ने इसकी तैयारी भी न की थी। हुआ यह कि नूर-बीबी अस्पताल से बिल्कुल ठीक-ठाक होकर सीधे ताशक़न्द से आयी हुई प्रशिक्षिका से मिलने चली आयी। वह अंजीर के पेड़ के नीचे बैठकर उसके साथ चाय पी रही थी कि यह ख़बर सारे गांव में फैल गयी। सामूहिक फ़ार्म में काम करनेवाली और निजी खेती करनेवाली वे सभी औरतें जो उस समय ख़ाली थीं, मसजिद की तरफ़ चल दीं। उन्होंने आपस में किसी तरह का

कोई सलाह-मशविरा न किया था। वे मसजिद के ग्रांगन में ग्राकर जमा हो गयीं।

शूरा तो हैरान ही रह गयी। उसने मौक़े का फ़ायदा उठाया ग्रौर ग्रज़ीम-जान के जमा करके रखे हुए पोस्टर झटपट दीवारों पर टांग दिये। पत्थर के चौकोर ग्रांगन में तो हरे-पीले रंगों की बहार ग्रा गयी। नक़्क़ाशी किये हुए दरवाज़ों के बीच दीवारों पर रेशम का बड़ा सा कीड़ा रेंगता दिखाई दे रहा था। मगर सबसे महत्त्वपूर्ण पोस्टर तो एक युवा उज़्बेक ग्रौरत का था। (यह ग्रकेला ही पोस्टर था।) यह ग्रौरत नारंगी रंग का गाउन पहने दिखायी गयी थी ग्रौर इसकी सूरत कुछ कुछ नूर-बीबी से मिलती-जुलती थी। उसकी छाती पर कोमसोमोल का बिल्ला लगा था। यह पोस्टर प्रवेश-द्वार पर मानो स्वागत के लिये लटकाया गया था।

सभा शुरू की मुहब्बत ने। उसने तीन बार ताली बजायी। ग्रांगन में तो कमाल का जादू था ही। उसने तीन बार साफ़ तौर पर वही ग्रावाज़ दोहरायी। ग्रौरतों के गाउन सरसराये, रूमाल, गुलूबन्द ग्रौर शॉल फरफराये। फिर ख़ामोशी छा गयी। मसजिद के ग्रांगन के ऊपर का ग्राकाश बहुत ही सुन्दर ग्रौर एकदम नीला था। वह इस समय बहुत ही भला लग रहा था। ग्राकाश में दूज के चांद की प्यारी सी नाव भी थी।

नूर-बीबी ग्रांगन के बीचोंबीच ग्रंजीर के पेड़ के नीचे बैठी थी।

"बहनो," मुहब्बत ने कहा, "आप सब के सामने यह नूर-बीबी बैठी है। हम सभी इसे जानती हैं। आइये हम इसके जीवन की चर्चा करें।"

फिर कुछ सरसराहट हुई और सन्नाटा छा गया।

"पुराने ज़माने में हम औरतों के पांच मालिक होते थे। बहुत ज़्यादा हैं न? हां, मगर ऐसा ही था। पहला मालिक था अल्लाह। दूसरा मालिक था अमीर। तीसरा मालिक वह था जो रोज़ी देता था—जिसके हाथ में हमारा दाना-पानी होता था। हमारा चौथा मालिक था मुल्ला। पांचवां मालिक था—ख़ाविन्द। बहनो, हम यहां नूर-बीबी के बारे में निर्णय करने के लिये जमा हुई हैं। इसने चार मालिकों से तो निजात पा ली है, मगर पांचवां मालिक अभी तक अपने साथ चिपका रखा है। इनक़िलाब से पहले वे हमें बेचते थे—धन के लिये, चावल के लिये। सभी तरह की चीज़ों से हमारा तबादला किया जाता था। बचपन में ही हमें बूढ़ों के पल्ले बांध दिया जाता था (तुम रो क्यों रही हो, नूर-बीबी?), इन बूढ़ों की पहले भी कई कई बीबियां होती थीं। वे हम से हमारा बचपन छीन लेते थे, मगर हम ख़ामोश रहती थीं। नूर-बीबी तुमने बहुत देर तक ख़ामोश रहने का जुर्म किया है! बहनो, यह मुजरिम है न?"

और छलछलाती आंखों वाली बहनों ने जवाब दिया—

"हां, यह मुजरिम है!"

"नूर-बीबी उठकर खड़ी हो जाओ। सब से आंखें मिलाओ। तुम मुजरिम हो कि तुमने अपने बाज़ुओं की ताक़त पर विश्वास नहीं किया। तुम अपने पति को छोड़ती हुई डरती थीं। तुम्हें डर था कि सोवियत सत्ता तुम्हें मझधार में ही छोड़ देगी। तुम्हारे दिल में यह डर था कि सोवियत सत्ता बहुत बड़ी चीज़ है, तुम्हारी पहुंच से दूर की चीज़ है और यह कि इसे तुम्हारी नन्ही सी जान की तरफ़ ध्यान देने की फ़ुरसत ही कहां है। मगर इसने तुम्हारी सुध ली है। यह सोवियत सत्ता – मैं हूं, हम सब हैं और तुम ख़ुद हो नूर-बीबी। नूर-बीबी यह मत भूलो कि तुम जवान हो, स्वस्थ हो, तुम काम कर सकती हो।"

"मगर मैं तो करना-धरना ही कुछ नहीं जानती, मुहब्बत," नूर-बीबी ने धीरे से जवाब दिया। पर उस अद्भुत आंगन ने उसके शब्द इस तरह दोहराये कि सभी को साफ़ साफ़ सुनाई दे गये।

"तुम करना-धरना ही कुछ नहीं जानतीं?" मुहब्बत ने सारे आंगन पर नज़र दौड़ायी। उसकी आंखें तो जैसे जवाब ढूंढ़ रही थीं...

शूरा ने अपने पिता के नाम लिखे गये ख़त में यह दृश्य इस तरह बयान किया –

"हां तो नूर-बीबी ने बहुत धीरे से जवाब दिया (मगर उसके शब्द सुने सभी ने) – 'मुझे तो करना-धरना

ही कुछ नहीं ग्राता।' ग्रौर मुहब्बत, इस सुन्दर, इस समझदार ग्रौरत, हमारी सारी दौलत ग्रौर पूंजी मुहब्बत ने चारों ग्रोर नज़र दौड़ायी। वह तो जैसे जवाब ढूंढ़ रही थी। ग्रौर तभी उसे चारों तरफ़ दिखाई दिये ग्रज़ीम-जान के पोस्टर। वे तो जैसे कि रेंगते हुए उसकी तरफ़ बढ़े जा रहे थे। उज़्बेक ग्रौरत ग्रौर रेशम-कोषों वाला पोस्टर तो जैसे उसके दिल में उतर ही गया। ग्रौर उसने, मेरी प्यारी मुहब्बत ने ग्रपनी गंठीली बादामी उंगली उस पोस्टर की तरफ़ उठा दी–

"'ग्रौर यह,' उसने कहा, 'तुम यह तो करना जानती हो, या यह भी नहीं? तुम्हारे लिये यह रास्ता खुला हुग्रा है, मगर तुम इसे भूल गयी थीं।'

"इस तरह उन्होंने खुली सभा में नूर-बीबी को मुजरिम ठहराया। उन्होंने उसे ग्राज़ादी की सांस लेने ग्रौर हंसी-ख़ुशी की ज़िन्दगी बिताने की सज़ा दी। काश कि ग्राप भी उस समय यहां होते!"

१९३४

बोरीस गर्बातोव (१६०८–१६५४) प्रतिभाशाली सोवियत लेखक। आपकी लेखनी से विस्तृत ख्याति पानेवाली 'उद्दंड', 'दोनबास', और 'मेरी पीढ़ी' आदि रचनाओं का जन्म हुआ। आपकी रचनाओं में 'साधारण आर्कटिक' नामक कहानी-संग्रह (१६३७–१६३८) को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इस संग्रह की कहानियों में बताया गया है कि सोवियत लोगों ने उत्तर पर कैसे अधिकार किया। 'खीरे के देश में' नामक कहानी भी इसी संग्रह से ली गई है।

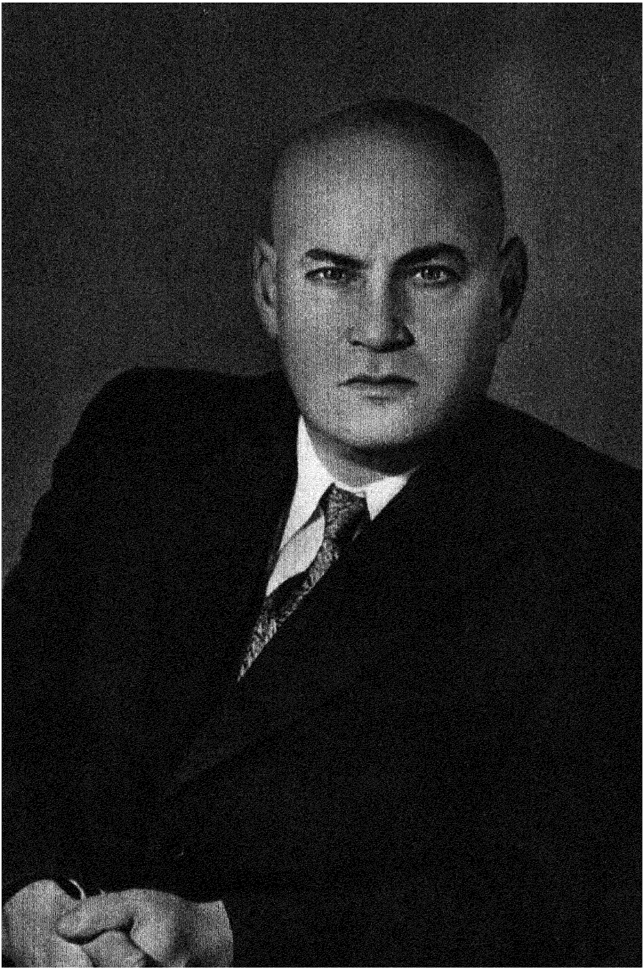

बोरीस गर्बातोव
खीरे के देश में

खीरे के देश में मुसीबत ग्रा गई थी। यह ग्रार्कटिक महासागर में एक छोटा-सा ग्रलग-थलग द्वीप है। नक़्शे पर ग्राप इस नाम का द्वीप खोजने की कोशिश करेंगे तो ग्रापको सफलता हाथ नहीं लगेगी। नक़्शे में तो इस छोटे-से बिन्दु का ग्रपना भला-सा, बल्कि ख़ासा कवित्वपूर्ण नाम है। मगर ग्रार्कटिक के वायरलैस ग्रॉपरेटर इस द्वीप को खीरे का देश कहने का ही हठ किये हुए हैं। उन्हें भला कौन मना कर

सकता है ऐसा करने से! ऐसे ही लोग होते हैं ये वायरलैस ऑपरेटर! हंसने-हंसाने के लिये बस कुछ इनके हाथ आ जाये! शायद ये अपने वायरलैस के कमरों में पड़े पड़े उदास हो जाते हैं।

ख़ैर जो भी हो, इस अजीब नाम का भी एक इतिहास है। यह द्वीप अभी कुछ ही समय पहले, बिल्कुल हाल ही में खोजा गया। खोज करनेवाले अभियान-दल के मुखिया ने तुरत-फुरत इस नये खोजे गये द्वीप का सर्वेक्षण किया (जहाज़ के गिर्द बहुत बड़ी मात्रा में जमती हुई बर्फ़ ने उसे जल्दी करने के लिये मजबूर किया) और झटपट अपनी रिपोर्ट भेज दी जिसमें कहा गया था – "नये खोजे गये द्वीप की शक्ल खीरे जैसी है"। इन इलाक़ों में तो हर चीज़ ही वायरलैस ऑपरेटरों के हाथों से गुज़रती है। बस, क्या था उन्होंने आर्कटिक द्वीप-परिवार के इस नये सदस्य का नाम 'खीरे का देश' रख दिया है।

इस द्वीप ने जल्द ही बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया – वह इतना अधिक उत्तर में जो था! अन्वेषक ख़ुशी से चुटकी बजाते हुए कहते – अब तो हम आर्कटिक सागर के बहुत-से रहस्यों का पता लगा लेंगे। ऋतु-जांच करनेवालों ने राहत की सांस लेकर कहा – मौसम के रसोईघर में एक और चूल्हा प्रकट हुआ है। नौजवान आर्कटिक अनुसन्धानक अपनी दुल्हन की तरह ही खीरे के देश के प्यारे प्यारे सपने

देखने लगे। उसके अनजाने आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींचते। वे सभी तरह की मुसीबतों और कठिनाइयों से उलझने को तैयार थे—काश! उन्हें वहां जाने का मौक़ा मिल जाये। वे उपेक्षा से कहते—"डिक्सन, तिक्सी, चेल्यूस्किन, ये क्या महत्त्व रखते हैं? ये तो पूरी तरह से छान डाले गये हैं। वहां जाना तो बिल्कुल ऐसे ही है जैसे अपने घर जाना। मगर खीरे के देश में..." तब वे उत्तेजित ढंग से फुसफुसाकर कहते—"कोई मज़ाक़ थोड़े ही है, अठहत्तर डिग्री उत्तर में..."

इस तरह खीरे की शक्ल वाला यह द्वीप बसने लगा। अछूती बर्फ़ पर बड़े बड़े और प्याले की शक्लवाले भालुओं के पैरों के निशानों के साथ साथ नोकदार और दृढ़ इन्सानी पैरों के निशान भी दिखाई देने लगे। मकान बनाये गये। बर्फ़ से ढके हुए मैदानों में जीवन की हलचल दिखाई देने लगी। लोगों की ज़िन्दगी का एक निश्चित ढर्रा भी बन गया। ख़ुशियों, चिन्ताओं और उत्तेजनाओं से उनकी जान-पहचान भी हो गई। रातों को शतरंज की बाज़ियां भी जमने लगीं और चमकते-चमकते कॉफ़ीदानों में कॉफ़ी भी उबलने लगी... मुसीबत का सामना भी होने लगा था। क्या यह कहा जाये कि मुसीबत का नहीं, नेमत का। हां! बेशक वह नेमत ही थी! मगर यह बताना कठिन था कि वह नेमत रुख़ क्या लेगी। एक नारी की चीख़ें सुनकर दिल दहल उठता था।

ज़र्द चेहरे वाला मोटा-सा एक ग्रादमी उसके ऊपर झुका हुग्रा मजबूरी से ग्रपने हाथ मल रहा था ग्रौर उसके माथे से पसीने की मोटी मोटी धारायें बह रही थीं।

ग्राप शायद यह समझते होंगे कि सोवियत ग्रार्कटिक प्रदेशों के लोग ग्रपने दूरस्थ द्वीपों में ग्रलग-थलग जीवन बिताते हैं, कि उन्हें ग्रपने ग्रड़ोसियों-पड़ोसियों की कोई ख़ैर-ख़बर नहीं होती। ग्राप ग्रगर ऐसा समझते हैं तो यह ग़लत है। यह सही है कि सबसे नज़दीक के पड़ोसी भी हज़ारों किलोमीटरों की दूरी पर रहते हैं। ग्रौर फिर, वहां के किलोमीटर भी तो कैसे है! मगर ग्रापको वायरलैस ग्रॉपरेटरों को नहीं भूलना चाहिये! उन्होंने ही समूचे ग्रार्कटिक में यह ख़बर फैलाई कि दूर-दराज़ के खीरे के देश में एक ग्रौरत सख़्त मुसीबत में है। ग्रब समूचा ग्रार्कटिक-संसार सांस रोककर बच्चे के जन्म का इन्तज़ार कर रहा था। ऐसा लगता था मानो वे सभी मज़बूत दिल ग्रौर निडर लोग – नारद्वीक के खनिक, चेल्यूस्किन के वैज्ञानिक, डिक्सन के वायरलैस ग्रॉपरेटर, तिक्सी बन्दरगाह के निर्माता ग्रौर बेली द्वीप के ग्रनुसन्धानक उसी नारी के सिरहाने खड़े थे, खांसते ग्रौर हिलते-डुलते हुए घबराते थे, शिशु के ग्रागमन की प्रतीक्षा में थे उसकी पहली चीख़ सुनना चाहते थे ताकि वे प्यार से, पितातुल्य मुस्कान से उसका स्वागत कर सकें।

"क्या हाल है उसका?" वे सुबह, दोपहर और रात को पूछते।

मगर औरत चीख़ती रही और उसकी चीख़-पुकार मानो सारे आर्कटिक में गूंजती रही। उसका पति, ऐसी परिस्थितियों में विवश अन्य सभी पुरुषों की भांति, उसके सिरहाने खड़ा आंसू बहाता रहा और स्थानीय डाक्टर घबराहट में इधर-उधर भागने-दौड़ने के अलावा कुछ न कर पाया। वह बेचारा इस कार्य का विशेषज्ञ नहीं था और फिर इसके अलावा यह तो था भी बहुत ही कठिन मामला। बच्चा आड़ी स्थिति में था।

उस दिन खीरे के देश से वायरलैस द्वारा एक निराशापूर्ण सन्देश भेजा गया।

"मदद! मदद!" नारी के पति ने प्रार्थना की थी। "मां और बच्चे को बचाने के लिये कुछ कीजिये, कोई न कोई उपाय कीजिये।"

क्या किया जाये? सन्देश प्राप्त करनेवाला वायरलैस ऑपरेटर बहुत ही क्षुब्ध हो उठा। उसने इयरफ़ोन उतारे और अपने संचालक के पास गया। क्या कुछ भी नहीं किया जा सकता? बेचारी औरत... और बच्चा भी...

संचालक और पार्टी-सेक्रेटरी सोचने लगे कि किस तरह से नारी की मदद की जाये। हवाई जहाज़ द्वारा डाक्टर को वहां भेजना संभव नहीं था। इस समय एक भी हवाई जहाज़

नहीं था। फिर वह आर्कटिक जाड़े की अन्धकारपूर्ण रात का सबसे भयानक वक़्त था। खीरे के देश तक पहुंचने की सम्भावना ही क्या थी? पार्टी-सेक्रेट्री इस सिलसिले में डाक्टर से बातचीत करने के लिये अस्पताल में गया।

डाक्टर का नाम था—सेर्गेई मत्वेयिच। वह मामूली डाक्टर था, ऐसा कि जिसे न तो किसी बात से हैरानी होती हो, न किसी बात का दुख और जो न किसी चीज़ से डरता ही हो। शक्ल-सूरत भी उसकी बहुत साधारण थी। थोड़ी-सी बढ़ी हुई तोंद, सर्जन जैसे बड़े बड़े लाल हाथ, गूंजती हुई आवाज़ जिसमें ज़िन्दादिली पाई जाती थी। सिर बीच में से गंजा जो कुछ बालों से ढका हुआ था। वह सींग का काला चश्मा लगाता और उसके कपड़ों, हाथों तथा सभी चीज़ों से कॉरबालिक एसिड, दवाइयों और अस्पताल की गन्ध आती रहती। मतलब यह कि वह सिर से पांव तक डाक्टर था। इसलिये जब कोई उसे भोजनालय में नौ-सेना का कोट पहने हुए देखता जिसपर सुनहरे लंगर बने रहते तो अनचाहे ही हैरान होकर सोचने लगता कि इसके डाक्टरी लबादे का क्या हुआ।

इस आदमी के बारे में एक ही असाधारण बात थी। वह यह कि आर्कटिक का डाक्टर बनने के लिये वह बहुत ही साधारण था। आर्कटिक के डाक्टर में आख़िर कुछ तो रोमांटिक बात होनी ही चाहिए। आप नक़्शे पर ज़रा एक नज़र

डाल लें। आर्कटिक अन्वेषणों के इस जीते-जागते स्मारक में आप डाक्टर स्तारोकादोम्स्की का द्वीप या डाक्टर इसाचेन्को का अन्तरीप जैसे नाम पायेंगे। डिक्सन द्वीप पर आप सहायक डाक्टर व्लादीमिरोव की क़ब्र देखेंगे। वह उत्तर का एक छोटा-मोटा नायक था। उसकी क़ब्र पर आप आदर से अपना सिर झुका देंगे। व्रांगल द्वीप पर पहुंचते ही आपकी सबसे पहली चाह यह होगी कि साहसी डाक्टर वुल्फ़सन की क़ब्र देखने जायें। डाक्टर वुल्फ़सन ने तोड़-फोड़ की कार्रवाइयां करनेवाले एक व्यक्ति से लड़ते हुए अपने प्राणों की बलि दी थी।

मगर सेर्गेई मत्वेयिच में तो रोमांस नाम की कोई चीज़ थी ही नहीं। वह तो साधारण डाक्टर था, अपने काम से काम रखनेवाला। वह तो जहाज़ के उन साहसी डाक्टरों जैसा भी नहीं था जो अपने इर्द-गिर्द ढेरों बर्फ़ के आदी होते हैं, जो तूफ़ानों और झूलते हुए डेकों से घबराते नहीं, डिब्बों में बन्द राशनों पर ज़िन्दगी बिताते हैं और समुद्र की नमकीन गन्ध को सहन करते हैं। वह शायद कोई डाक्टर-अनुसंधानक था, कोई वैज्ञानिक?

हाल के वर्षों में आर्कटिक प्रदेश चिकित्साविज्ञों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। वे अधिकतर प्राणी, वनस्पति और जीव-शास्त्री होते हैं। कुछ वहां के झींगे, जल-स्थलचर के दुर्लभ जीव-जन्तु और छिपकलियां जमा करते हैं।

उन्हें अल्कोहल की बोतलों में बन्द करके अपने साथ घर ले जाते हैं। कुछ अनुसन्धानक वहां के बौने बेद वृक्षों को सुखाते हैं। ये वृक्ष जड़ से चोटी तक इन्सान की हथेली के बराबर होते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो आर्कटिक की परिस्थितियों में इन्सान के चरित्र और मन:स्थिति पर बीमारियों, छूत के रोगों के ख़तरों और आर्कटिक के दिन-रातों के प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

सेर्गेई मत्वेयिच न तो अल्कोहल की बोतलों में झींगे बन्द करके रखता था, न किसी तरह की काई सुखाता था। वह तो शायद अपनी डायरी में "डाक्टरी अनुभव के छोटे-मोटे अनोखे तथ्यों" को भी नहीं लिखता था। कभी तो उसने ऐसा करने की कोशिश की थी मगर फिर समय की कमी के कारण अपना इरादा बदल दिया था। रोगी थे, चिन्ताएं थीं, अस्पताल था। यह स्पष्ट था कि उसके आर्कटिक में रहने से विज्ञान के नई खोजों से समृद्ध होने की कोई सम्भावना नहीं थी।

वह जब यहां आ रहा था तो जहाज़ में चुम्बकविज्ञान के एक युवा विशेषज्ञ मोदोरोव से उसकी भेंट हुई। वह उन उत्साहियों में से था जो विज्ञान को विज्ञान के नाते ही प्यार करते हैं और जिनके लिये अपनी क्षमतायें दिखाने के लिये आर्कटिक स्टेशन से बेहतर और कोई वातावरण नहीं हो

सकता। इस नवयुवक ने ज़िन्दादिली से मुस्कराते हुए डाक्टर से कहा –

"मैं तो आपको अच्छी तरह समझता हूं, अनुसन्धान के लिये यहां आनेवाले हम लोगों के बारे में आपके दृष्टिकोण को भी मैं अच्छी तरह समझता हूं। हम सब तो आपके लिये तजरबे के चूहे हैं। आप हम सब का अध्ययन करेंगे, ठीक है न? किसी फ़ौरी काम को करने के पहले और उसके बाद आप हमारी नब्ज़ गिनेंगे, आर्कटिक रात के दौरान और रात ख़त्म होने पर हमारे दिल की धड़कनों का हिसाब जोड़ेंगे और फिर निस्सन्देह आप उसके बारे में कोई निबन्ध प्रकाशित करेंगे। क्यों ठीक कहा है न मैंने? मैं आपके तजरबों के लिये चूहा बनने को बिल्कुल तैयार हूं डाक्टर।"

सेर्गेई मत्वेयिच ने उसे सहमी-सहमी नज़र से देखा और अटकते हुए जवाब दिया कि उसकी योजनाओं में ऐसी कुछ बातें शामिल तो हैं। मगर उसने कुछ इस अन्दाज़ में वाक्य ख़त्म किया कि न तो मोदोरोव और न किसी दूसरे "तजरबे के चूहे" ने उससे उसके अनुसन्धान-कार्य के बारे में फिर कभी कोई बात की। ऐसा लगता था मानो वह लोगों के बीमार पड़ने पर उनका इलाज करने, बच्चे जनवाने, दांत निकालने और अपेन्डिसाइटस के ऑपरेशन करने के लिये ही उत्तर में आया था।

यह सब कुछ करने के लिये उसे अस्पताल की ज़रूरत थी। उसके शब्दों में, अस्पताल के बिना डाक्टर "जहाज़ के बिना कोलम्बस" के समान होता है। फिर अस्पताल भी कोई कामचलाऊ नहीं, वह तो बढ़िया साज़-सामान से लैस होना चाहिये क्योंकि आर्कटिक हो या कोई दूसरी जगह, जब कोई बीमार पड़ता है तो उसे ढंग के इलाज की ज़रूरत होती है। वे जब बजरे से सामान उतार रहे थे तो उसने साज़-सामान के बक्से ख़ुद अपनी पीठ पर लादकर उतारे। जो कोई भी उसकी मदद को आता, वह गुस्से से झल्लाकर उसे कहता – "सावधानी से! देखना, कहीं गिरा नहीं देना!"

वह ख़ुद रंदा और आरा लेकर जुट जाता, कुछ न कुछ बनाता और बढ़इयों के सिर पर सवार रहता। सफ़ेद रोग़न से उसने दीवारें भी ख़ुद ही रंगीं और लिनोलियम का फ़र्श तक अपने हाथों से बिछाया। काम बहुत ज़्यादा थे और करनेवाले बहुत कम। वायरलैस स्टेशन बनकर तैयार हो रहा था और बन्दरगाह में कोयले का गोदाम बनाया जा रहा था जहां से लगातार धमाकों की गूंज सुनाई देती रहती थी। यह १९३४ की बात है। आर्कटिक के लिये यह वर्ष बहुत महत्त्वपूर्ण था। तब आर्कटिक के वीरान और चट्टानों वाले तटों पर इमारतें, गोदियां, मरम्मत शॉपें और खानें इस तरह उभरी थीं मानो किसी ने जादू कर दिया हो।

एक अस्पताल भी बनाया गया था। यह छोटा-सा था,

कुल पांच बिस्तरों वाला। मगर यह भी काफ़ी था। बड़ी बात तो यह थी कि इसमें एक नियमित अस्पताल जैसा वातावरण था। ऐसे अस्पताल जैसा, जिसमें काम करते हुए सेर्गेई मत्वेयिच के बाल पक गये थे, चांद निकल आई थी और आयोडीन और कारबॉलिक एसिड की गंध उसके अंग अंग में रस-बस गई थी। इस अस्पताल की बेदाग़ दीवारें चमचम करतीं, शीशे की अलमारियों में रखे हुए औज़ारों और बोतलों पर धूप चमकती रहती। समूचे वातावरण में सफ़ाई नज़र आती। वहां बिल्कुल ख़ामोशी और हर जगह कारबॉलिक एसिड की गंध रहती। उसके मरीज़ – वे अधिकतर औरतें होतीं – कुत्तों से खींची जानेवाली स्लेजगाड़ियों में सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तय करके प्रसवकाल के एक-दो महीने पहले वहां आ जातीं। मर्द भी आते, किसी की आंत उतर जाती, किसी को अपेंडिसाइटस होता, किसी की उंगलियों को पाला मार जाता, किसी की हड्डी टूट-फूट जाती या फिर किसी के दांत में दर्द होता। सेर्गेई मत्वेयिच को दांत के दर्द का इलाज भी करना होता, उनकी भराई भी करनी होती। घर पर दांतों की उपेक्षा करनेवाले बहुत-से लोगों ने भी सेर्गेई मत्वेयिच से अपने दांत ठीक करवाये थे। वह आम तौर पर अपने मरीज़ों से यही कहता –

"अरे भई, इस सड़े हुए दांत की आख़िर तुम्हें ज़रूरत ही क्या है? लाओ इसे झटक दें। क्यों?"

दांत निकालने के पहले वह मरीज़ का दिल मज़बूत करने के लिये उसे तीस ग्राम स्पिरिट पिला देता। उसकी यह परम्परा-सी बन गई थी। मगर अक्सर मरीज़ उसे चकमा दे जाते। वे स्पिरिट तो गटक जाते और फिर दांत निकलवाने से इन्कार कर देते। वे कहते—"डाक्टर! दर्द तो बिल्कुल ही ग़ायब हो गया। अब अगली बार निकाल दीजियेगा।" नतीजा यह हुआ कि उसने दांत निकालने के बाद स्पिरिट पिलानी शुरू कर दी।

सर्जरी का वह विशेषज्ञ भी था और वह उसकी प्रकृति भी बन गई थी। इसलिये वह इलाज करने के बजाय चीर-फाड़ को ही अधिक तरजीह देता। सच तो यह है कि जब कभी उसे "चीर-फाड़" का मौक़ा मिल जाता तो उसके दोस्तों के शब्दों में—उसकी बाछें खिल जातीं।

"अरे भई। हम यहां ज़रा-सी काट-छांट कर देंगे और तुम बिल्कुल ठीक-ठाक हो जाओगे। यह लो! काट दिया हमने इसे यहां से। ग़ायब हो गई तुम्हारी बीमारी!"—वह कहता।

रहा अन्दरूनी बीमारियों का सवाल, तो वह उन्हें सन्देह की नज़र से देखता।

"यह इलाज-विलाज तो महज़ निकम्मे अमीरों के चोंचले हैं। तुम्हें क्या लेना है, मियां, इनसे? बिल्कुल बकवास हैं ये तो!" और फिर वह अपने रोगी को यह कहकर दिलासा देता—"इसे प्रकृति पर छोड़ दो... प्रकृति से अधिक

समझदार कोई नहीं। बीमारी अपने आप ही ख़त्म हो जायेगी... बहुत ही कमाल का है यहां का जलवायु... निश्चय ही बहुत स्वास्थ्यप्रद!"

यह तो हर दिन का मज़ाक़ बन गया था कि खाने की मेज़ पर से उसे कोई न कोई पुकारकर कहता –

"डाक्टर साहब! मेरे सिर में दर्द है! क्या ख़याल है आपका, ख़ुद-ब-ख़ुद ही ठीक हो जायेगा न?"

"ज़रूर ठीक हो जायेगा भई," वह बड़े विश्वास से जवाब देता।

ऐसा था हमारा यह बहुत ही साधारण डाक्टर सेर्गेई मत्वेयिच। उसके बारे में सिर्फ़ एक ही बात समझ में नहीं आती थी कि वह आर्कटिक में आया क्यों था?

ख़ुद आर्कटिक को तो उसने कभी देखा ही नहीं था। वह एक तंग-से घेरे में अपना जीवन बिताता – अस्पताल, भोजनालय, आर्कटिक के अनुसन्धान-कर्त्ताओं के घर और फिर अस्पताल... एक बार उसने शिकार पर जाने का इरादा बनाया, मगर वह दिन कभी नहीं आया। एक बार उसने दूर रहनेवाले शिकारियों के झोंपड़ों का चक्कर लगाने की योजना बनाई। मगर अस्पताल को किसके सहारे छोड़ता? बहुत-से बच्चे जनवाने थे (आर्कटिक में जन्म की दर आश्चर्यजनक गति से बढ़ रही थी) और इसलिये उसके

सहायक ने ही वहां का दौरा किया। पतझर में ही सिर्फ़ एक बार जब बच्चे देने के मौसम में बेलूहा-व्हेलें भारी संख्या में आ रही थीं तो डाक्टर भी नौजवानों के साथ हो लिया। मगर वहां वह हरेक के लिये मुसीबत बना, पूरी तरह पानी से तर-ब-तर हो गया; जाल समुद्र में गिरते गिरते बचा और अन्त में वह पानी से सराबोर, मगर बहुत ही सन्तुष्ट तट पर लौटा। बेलूहा-व्हेलों को जब घसीटकर तट पर लाया गया तो द्वीप की लगभग सारी आबादी के सामने उसने एक को अपने चाकू से काटा। (युवाजन ने मज़ाक़ किया कि डाक्टर बेलूहा-व्हेल के अपेन्डिसाइटस का निरीक्षण कर रहा है।) अपने सधे हुए हाथ से उसने बेलूहा-व्हेल के अन्दर के हिस्सों को काटा और उसके मेदे तथा फेफड़ों को भीड़ को दिखाते हुए कहा – "आप जानते हैं, इसके अंग इन्सानी अंगों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।"

एक शाम को कॉफ़ी पीने के बाद भोजनालय जब विशेषतः गर्म और आरामदेह प्रतीत हो रहा था, नौजवान मोदोरोव डाक्टर की बग़ल वाली कुर्सी पर आ बैठा। उसने पूछा –

"मैं आशा करता हूं सेर्गेई मत्वेयिच कि आप मेरे यह पूछने का बुरा नहीं मानेंगे कि आप किस लिये आर्कटिक में आये हैं?"

सेर्गेई मत्वेयिच ने घबराकर हाथ झटका।

"अब तुम्हें कैसे बताऊं भई," वह बड़बड़ाया। "हर आदमी आर्कटिक की चर्चा कर रहा था। मैंने सोचा भला मैं ही क्यों पीछे रहूं? आख़िर कोई मेरी उम्र बहुत तो है नहीं। क्यों, क्या ख़्याल है आपका – बहुत बुज़ुर्ग लगता हूं क्या मैं?" उसने बड़ी शान से अपनी मूंछों पर ताव दिया। "और फिर उन्हीं दिनों हमारे अस्पताल में एक नया डाक्टर आया था। वह तभी उत्तर से लौटा था। बहुत ही उत्साह से वह वहां की चर्चा करता था। काम करने का बहुत ही मौक़ा है, वह कहता, बहुत-से अजीबोग़रीब केस आते हैं। मैंने सोचा कि क्यों न मैं भी अपना नाम पेश कर दूं? मैं मोर्चे पर भी रह चुका हूं... सभी तरह की ऊंच-नीच देख चुका हूं। इसके अलावा..." उसने अपनी निष्कपट नीली आंखें श्रोता की ओर उठाईं और बहुत सादगी से कहा – "यहां पैसा भी तो अच्छा मिलता है। भई, दो जाड़े बिताने से अच्छी-ख़ासी रक़म हाथ में आ जायेगी। मास्को के नज़दीक एक छोटा-सा बंगला ख़रीदने के लिये मैं पैसे जमा कर रहा हूं। छोटा-सा बगीचा, छाया में लटकता हुआ जालीवाला झूला, फूलों की क्यारियां... नास्टरशियम के फूल मुझे बेहद पसन्द हैं। और खिड़की के नीचे रात्रि वायोलेट के फूल।"

इस बातचीत के बाद डाक्टर हर किसी को पहले से भी ज़्यादा बोर मालूम होने लगा। बड़े बड़े लाल हाथों और छोटी-सी तोंद वाला तथा दवाओं की गन्ध में बसा हुआ यह

आदमी यद्यपि बहुत ही नीरस और काम से काम रखने वाला था तथापि आर्कटिक के स्टेशन पर वही सिर्फ़ एक ऐसा आदमी था जो खीरे के देश में तड़पती हुई औरत की सहायता कर सकता था। मगर कैसे? यह कोई नहीं बता सकता था।

पार्टी-कमिटी का सेक्रेट्री चाचा वास्या अस्पताल में आया और एकान्त में डाक्टर से बातचीत करने लगा—

"हमें उसकी मदद तो करनी ही होगी," उसने डाक्टर से कहा। उसकी थकी थकी आंखें सेर्गेई मत्वेयिच के चेहरे पर जमी हुई थीं।

"यह कहना तो बिल्कुल आसान है कि हमें उसकी मदद करनी ही होगी," डाक्टर ने जवाब दिया। "उसे यहां ले आइये, मैं ख़ुशी से उसकी मदद करूंगा। मगर आप मुझसे हवा में बच्चा जनवाने की आशा तो नहीं कर सकते न!"

"हमें उसकी सहायता करनी ही होगी डाक्टर," पार्टी-कमिटी के सेक्रेट्री ने अनुरोध करते हुए कहा।

"वाह! यह भी ख़ूब रही!" डाक्टर ने अपने हाथ झटके और हंस दिया। "मुझे एक हज़ार किलोमीटर लम्बे हाथ दे दें ताकि में बीमार के बिस्तर तक पहुंच सकूं। मुझे ऐसी आंखें दे दीजिये कि मैं एक हज़ार किलोमीटर तक देख सकूं। फिर आप मुझे अपनी सेवा में हाज़िर समझें, मैं ख़ुशी से मदद करूंगा।"

"हम आप को ऐसी बांहें भी दे देंगे और आंखें भी!" पार्टी-कमिटी के सेक्रेट्री ने कहा, "और तब..."

"मैं समझा नहीं आपकी बात! कैसे देंगे आप ऐसे हाथ, ऐसी आंखें?"

"वायरलैस के ज़रिये। रोगी की दशा और जैसा कि आप कहते हैं बच्चे की स्थिति के बारे में आपको रिपोर्ट दी जायेगी और आप रेडियो द्वारा अपनी हिदायतें देंगे।"

सेर्गेई मत्वेयिच भौचक्का-सा चुपचाप सेक्रेट्री का मुंह ताकता रहा।

"तो क्या सचमुच आप यही चाहते हैं?" आख़िर वह फुसफुसाया।

"हां! बिल्कुल! दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।"

सेर्गेई मत्वेयिच उठा, उसने अपना सफ़ेद लबादा पहना और दृढ़ता से क़दम रखता हुआ दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा।

"चलो! चलकर मरीज़ को देखें," उसने कहा। फिर वह ठिठक गया। "अरे! यह लबादा किस लिये पहन लिया मैंने? ख़ैर कोई बात नहीं। बहुत अजीब अजीब बातें हुआ करती हैं हमारी इस दुनिया में। यह मेरा पहला केस है, मेरा मतलब दूर नियन्त्रण-विधि से मैं पहली बार बच्चा जनवाने जा रहा हूं। मैं कल्पना कर सकता हूं कि मेरे सहयोगियों को यह सुनकर कितना आश्चर्य होगा... पर ख़ैर कोई बात नहीं, आइये चलें।"

खीरे के देश से सम्बन्ध जोड़ा गया। ऑपरेटर ने सभी ध्रुवीय स्टेशनों को सूचना दे दी—"खीरे के देश से लाइन

मिली हुई है। प्रसव का परिणाम सामने आने तक अस्थायी रूप से बाक़ी स्टेशनों से लाइन कटी रहेगी।"

गहरी ख़ामोशी छा गई। सारा आर्कटिक दम साधकर खीरे के देश में बच्चे के जन्म का इन्तज़ार करने लगा।

"हां तो," वायरलैस सेट के नज़दीक जाकर सेर्गेई मत्वेयिच ने कहा। वह अपने लबादे की पेटी के नीचे हाथ बांधे हुए था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आगे क्या कहे। अपनी आदत के मुताबिक़ वह बस पूछते पूछते ही रह गया–"हां तो आज बीमार का कैसा हाल है?" उसे ख़्याल आ गया था कि रोगी सचमुच उसके सामने नहीं है। वहां तो कुछ भी नहीं था, केवल शून्य था, केवल शून्य...

डाक्टर परेशान था, उसे देखते ही यह पता चल जाता था। वह जिस वातावरण का आदी था, उसकी कमी महसूस कर रहा था। उस वातावरण की, जो उसे आवश्यक संतुलन प्रदान करता था, उसमें विश्वास पैदा करता था। वह अपने मरीज़ को अपने सामने देखने का आदी था, उसकी आहें कराहें और प्रार्थनायें सुनाने का; दर्द से कराहती हुई नारी को हर दिन कहे जाने वाले सान्त्वना के शब्द कहने का अभ्यस्त था। वह आदी था चिलमची में ख़ून देखने का और बच्चे को अपने हाथों से छूने का–बच्चे के नन्हे-मुन्ने चिकने-चुपड़े और असहाय शरीर को अपने हाथों में लेने का।

मगर यहां तो ऐसा कुछ भी नहीं था। उसकी हालत उस अनुभवी सैनिक जैसी थी जो गोलियों की बौछार में सीना ताने रहता है, मगर जिसे घात में ि पकर बैठे दुश्मन की मनहूस ख़ामोशी से डर लगता है। उसकी हालत चक्की के उस मालिक जैसी थी जो चक्की की घरघराहट में तो सुख-चैन की नींद सोता है और उस आवाज़ के बन्द होते ही चौंककर जाग उठता है।

यहां उसके सामने वायरलैस के सेट के सिवा कुछ भी नहीं था। उसकी हालत पानी से बाहर फेंक दी गई मछली जैसी थी। लैम्पों की रोशनी मानो टकटकी बांधे हुई थी। लाऊडस्पीकर से घरघराहट की हल्की-सी आवाज़ सुनाई दी। एकदम चुप्पी। मरीज़ नहीं, आहें-कराहें नहीं, दर्द-तकलीफ़ नहीं।

दर्द-तकलीफ़ नहीं, यही कहा न? मगर उसे तो बहुत तकलीफ़ है... कहीं दूर, बहुत दूर! वह बेहद तकलीफ़ में है... सहायता की प्रतीक्षा में है। हर आदमी डाक्टर को बहुत ध्यान से देख रहा था और प्रतीक्षा कर रहा था। हां, तो डाक्टर, क्या किया जाये?

उसने वायरलैस ऑपरेटर की तरफ़ झुककर कहा—

"देखो! डाक्टर से पूछो—इस समय बच्चा किस स्थिति में है?"

बहुत उत्सुकता से उसने अपने शब्दों को मटर के दानों की भांति बिन्दुओं और रेखाओं में बिखरते और फिर

वातावरण में उड़ान करते हुए देखा। एक दो मिनट बाद जवाब आया।

सेर्गेई मत्वेयिच ने जवाब पढ़ा और माथे पर चिन्ता की रेखायें उभर आईं। अब उसने दूर नियन्त्रण-विधि द्वारा बच्चा जनवाने का काम शुरू किया।

"हुं... तो बच्चा आड़ी स्थिति में है," उसने ऊंची आवाज़ में सोचते हुए कहा। "हां... मामला टेढ़ा है। देखो! मेरे सहयोगी से पूछो," उसने ऑपरेटर को सम्बोधित करते हुए कहा, "क्या वह बच्चे को घुमाने का ब्राक्सटन-हिक्सटन तरीक़ा जानता है या कम से कम उसने इसके बारे में कुछ सुना है?"

"मगर वह कैसे जान सकता है? वह तो अनुभवहीन और जवान है, तिस पर चिकित्सक है," उसने अपने आप से कहा।

सभी सर्जनों की भांति वह भी चिकित्सकों को सन्देह की नज़र से देखता था।

जवाब वही मिला, सेर्गेई मत्वेयिच ने जिसकी आशा की थी—"मैंने सुना तो है, पर कृपया ठीक ठीक बतायें कि मुझे क्या करना है।"

"स्पिरिट और ऑयोडीन में अपने हाथों को अच्छी तरह से धो लो। अपनी सभी उंगलियों पर ख़ूब ऑयोडीन लगाओ। मियां, उन्हें दस मिनट तक धोते रहो," डाक्टर

ने कहा। वायरलैस ऑपरेटर ने जो मानो किसी पवित्र रसम को पूरा करने में सहायक का काम कर रहा हो, "मियां" समेत सभी कुछ प्रसारित कर दिया। उसने यही सोचा कि शायद "मियां" शब्द में भी चिकित्सा-सम्बन्धी कोई ख़ास अर्थ छिपा हुआ हो?

खीरे के देश में उपस्थित डाक्टर ने सादर उत्तर दिया कि उसने हिदायत के मुताबिक़ हाथ धो लिये हैं।

"ठीक," सेर्गेई मत्वेयिच ने सिर हिलाकर कहा। "अच्छा, अब रोगी को छूत और कीटाणुओं से बचाने के लिये..." उसने एक काग़ज़ पर विस्तारपूर्वक अनुदेश लिख कर दिये। एक बार फिर उसने जिज्ञासा और आश्चर्य से अपने शब्दों, अपने विचारों को एक हज़ार किलोमीटर की दूरी पर प्रसारित होते देखा। उन्हीं विचारों को जो एक मिनट पहले तक उसके दिमाग़ में बन्द थे और अब एक चमत्कारपूर्ण ढंग से इतनी दूर पहुंच रहे थे। जीवन में पहली बार वायरलैस ऑपरेटर के लिये उसके दिल में आदर की भावना पैदा हुई।

ऑपरेटर भी मौक़े की नज़ाकत और महत्त्व को समझता हुआ बहुत उत्तेजित था। उत्तेजना के कारण वह बहुत तनाव अनुभव कर रहा था और सुर्ख़ हो रहा था। वह पेंचों को बहुत सावधानी से दबा रहा था ताकि कोई ग़लती न हो

जाये। वह जवाब भी धीरे धीरे और सोच-समझकर लिखता, सदा की भांति, अपनी शान दिखाते हुए झटपट नहीं।

"ज़रा धीरे," वह दूसरी ओर के ऑपरेटर से कहता। "एक भी शब्द की ग़लती होने से ज़च्चा-बच्चा की जान पर बन सकती है।"

"अब आगे चलो," डाक्टर ने कहा। "अब अन्दरूनी जांच करो। बायां हाथ अन्दर डालो..."

निर्णायक घड़ी निकट थी, यह थी वह घड़ी।

"मान लो कि अगर बच्चादानी का दहाना अभी काफ़ी न खुला हुआ, तब?" उसने चिन्तित होते हुए सोचा। "ओह, काश कि मैं ख़ुद वहां होता! आख़िर, मुझे तो किसी ऐसी बात के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता जो मैं आंखों से देख भी नहीं सकता!"

जीवन में वह इतना कभी नहीं घबराया था जितना इस समय। उत्तर की प्रतीक्षा करने और अपने को संभालने के लिये वह खिड़की के पास जाकर बाहर सड़क को देखने लगा। वहां वास्तव में कोई सड़क नहीं थी। खिड़की के नीचे सिर्फ़ बर्फ़ का एक ढेर था, उसके आगे खत्ती और खाड़ी थी। फिर बर्फ़ और सिर्फ़ बर्फ़ थी। गोदामों की छतों पर, खाड़ी में और टुंड्रा में। हरी झलक लिये हुए बर्फ़ और चांदनी।

"तुम काफ़ी दूर उत्तर में आ गये हो सेर्गेई मत्वेयिच!" उसने अचानक अपने आप से कहा। इस चेतना से कि वह

इतनी दूर उत्तर में आ गया है, उसे सचमुच निराशा हुई। इस ख़्याल से उसे ऐसी हैरानी हुई कि जैसे इस तरह की कोई बात कभी उसके दिमाग़ में पहले आई ही नहीं थी, जैसे कि यहां उसका दूसरा वर्ष नहीं, पहला दिन था।

"सेर्गेई मत्वेयिच," किसी ने फुसफुसाकर उसे सम्बोधित किया।

वह झटपट घूमा और दो नारियों को अपने सामने खड़ा पाया। उनमें से एक वायरलैस ऑपरेटर की पत्नी थी और दूसरी भू-भौतिकविज्ञ की।

"प्यारे डाक्टर, वह कैसी है?" उन दोनों में से कुछ अधिक साहसी ऑपरेटर की बीवी ने पूछा।

"क्या मतलब तुम्हारा वह कैसी है?" डाक्टर झल्ला उठा। "अपने पति से क्यों नहीं पूछती हो, मरीया इल्यीनिशना। वह देखो, वह बैठा पेंच घुमा रहा है। वह मुझसे कहीं ज़्यादा जानता है। मैं तो कुछ भी नहीं देख सकता, कुछ भी तो नहीं, सिवा बर्फ़ के।"

"हम तो सिर्फ़ यह कहना चाहती थीं..." भू-भौतिकविज्ञ की पत्नी ने झिझकते हुए कहा। "बात यह है कि मेरी एक सहेली थी, उसका केस भी बिल्कुल ऐसा ही था। मुझे उसकी पूरी तफ़सील मालूम है... अगर मैं आपको वह सब बताऊं तो शायद आपको उससे कुछ सहायता मिल सके?"

डाक्टर ने बुरा-सा मुंह बनाकर उसकी बात रद्द कर दी।

"अरी प्यारी, "तुम्हें क्या फ़िक्र है? वह तुम्हारी सहेली तो है नहीं। तुम्हें आख़िर इस केस से मतलब?"

"सेर्गेई मत्वेयिच! आप भला यह कैसे कह सकते हैं?" औरत ने कहा।

ठीक इसी समय ऑपरेटर खीरे के देश से प्राप्त होनेवाला उत्तर लिख चुका था। वह नहीं जानता था कि ख़बर अच्छी थी या बुरी। चिकित्सा-सम्बन्धी शब्दों से वह बिल्कुल अपरिचित था मगर वह ऐसे चिन्तित था मानो पहले से ही यह जानता हो कि ख़बर बुरी ही होगी।

"तो, यह बात है," डाक्टर ने कहा और मुस्कराया। "बच्चेदानी का दहाना ढाई अंगुल के बराबर खुला है, यही न? ख़ैर कोई बात नहीं। हम ब्राक्सटन-हिक्सटन तरीक़े का इस्तेमाल करेंगे।"

वह वायरलैस सेट के नज़दीक आया। झपट एक कुर्सी उसके लिये बढ़ा दी गयी। किसी तरह भी सही, मगर हर कोई फ़ौरन यह समझ गया कि आख़िर निर्णायक घड़ी आ पहुंची है। ऑपरेटर का चेहरा पीला पड़ गया। पार्टी कमिटी के सेक्रेट्री ने धीरे से कहा—"ख़ामोश!" बेशक यह सही है कि उस कमरे में जमा भीड़ को देखते हुए वहां पहले ही बहुत ख़ामोशी थी, आश्चर्यचकित करने वाली चुप्पी थी। अपनी आंखों में आशा, भय और चिन्ता की झलक लिये हुए हर कोई टकटकी बांधकर डाक्टर को देख रहा था।

अचानक डाक्टर के दिमाग़ में एक ख़्याल कौंधा – "कहां से मुझमें आया यह साहस, यह बल। मैं यहां से कुछ शब्द बोलूंगा और जो कुछ मैं कहूंगा, वहां वह उसे पूरा करेगा... संभव है कि मामला सिरे चढ़ ही जाये। और यह सब मैं कर रहा हूं... मैं..."

उसने ऊंची आवाज़ में कहा –

"अपने दायें हाथ की दो अंगुलियां अन्दर डालो और बच्चे का पांव पकड़ने की कोशिश करो।"

पेंच खटखटाया, बिन्दु और रेखायें फैलीं और अब सभी तरह की उल्टी-सीधी बातें डाक्टर के दिमाग़ से निकल गईं। अब वह अपने सामने सिर्फ़ अपने मरीज़ को देख रहा था। वह ख़ुद ही अपनी दो अंगुलियां अन्दर डाल रहा था। उसे ज़च्चा की आहें-कराहें सुनाई दे रही थीं। वह बच्चे के पैर की कोमलता अनुभव कर रहा था, असहाय बच्चे की, एकदम...

"अब सावधानी से!" डाक्टर चिल्लाया और ऑपरेटर ने यन्त्र खटखटाकर ये शब्द प्रसारित कर दिये। "देखो, हाथ को पांव समझने की ग़लती मत करना! एड़ी ढूंढ़ो। एड़ी, सुनते हो? देखो अच्छी तरह से जांच लेना कि वह एड़ी ही है वरना तुम बच्चे को हाथ से भी पकड़ सकते हो। कभी कभी ऐसा हो जाता है..."

खीरे के देश में भी चिन्तातुर लोग वायरलैस ऑपरेटर के गिर्द जमा थे। नारी का पति पसीने से तर-ब-तर और बदहवास-सा, वायरलैस सेट से अपनी बीवी के बिस्तर तक और वापस भागता फिर रहा था। वह रेडियो से प्राप्त होनेवाली हिदायतें डाक्टर तक पहुंचाता, उसका जवाब सुनता और फिर वायरलैस सेट की तरफ़ वापस भागता। रास्ते में वह शब्दों को दोहराता जाता कि कहीं कुछ भूल न जाये, कोई ग़लती न कर बैठे।

डाक्टर भी घबराया हुआ था। मगर सेर्गेई मत्वेयिच की सहायता से उसकी हिम्मत बंधी। उसने देखा कि आंसुओं से तर और पीड़ा को व्यक्त करनेवाली नारी की आंखें उसके चेहरे पर जमी हैं।

"चिन्ता नहीं करो," वह बुदबुदाया। सेर्गेई मत्वेयिच और मैं—हम मिलकर सब कुछ ठीक-ठाक कर लेंगे... चिन्ता न करो... लो यह रही एड़ी... कैसी नर्म नर्म एड़ी है..."

"मैंने पांव पकड़ लिया है," सेर्गेई मत्वेयिच ने पढ़ा।

"अहा!" उसने कहा। "उसने पांव पकड़ लिया है। शाबाश!"

सारे कमरे में धीमी और दबी दबी-सी ख़ुशी की लहर दौड़ गई—"उसने पांव पकड़ लिया। उसने पांव पकड़ लिया!" हर किसी में जैसे ज़िन्दगी लौट आई, वे मुस्कराते हुए एक

दूसरे को बधाई देने को तैयार थे। मगर सेर्गेई मत्वेयिच का चेहरा फिर से गंभीर था। सभी लोग चुप हो गये।

"ठीक है", उसने कहा, "अब पांव से बच्चे को घुमाओ और अपने दूसरे हाथ से..."

फ़ासले की दूरी का एहसास अब उसे बिल्कुल नहीं रहा था। वह तो मानो अब ऑपरेशन की मेज़ के नज़दीक खड़ा अपने सहायक को गंभीर ढंग से हिदायतें दे रहा था। "वह समझदार आदमी है, निश्चय ही ढंग का आदमी है!" वह सोच रहा था। "बेशक वह सर्जन नहीं, चिकित्सक है मगर है वह ढंग का आदमी।" अब उसे अधिकाधिक विश्वास होता जा रहा था कि मामला ठीक-ठाक हो जायेगा। अब उसे ऐसा लग रहा था मानो वह शुरू से ही यह जानता था कि बात सिरे चढ़ ही जायेगी। यों कहना चाहिये कि उसका खोया हुआ आत्म-विश्वास लौट आया था, वह अपने को जाने-पहचाने वातावरण में अनुभव कर रहा था।

घड़ियां, पल बीत रहे थे, सदियों की भांति रेंगते हुए से। सेर्गेई मत्वेयिच को इस काम में जुटे हुए एक घण्टा बीत चुका था।

"मैंने हर चीज़ को ध्यान में रखा है न? अब कोई अप्रत्याशित बात तो नहीं हो सकती न? वह अब सब कुछ ठीक कर लेगा न? ओह! काश कि मैं ख़ुद वहां होता! मैं उससे कुछ पूछना भूल तो नहीं गया?"

उसने लाऊडस्पीकर को ऐसे देखा मानो वह उसकी चिन्ताओं का जवाब दे सकता हो। उसने उसकी आवाज़ सुनी – बिन्दु, रेखायें, बिन्दु, रेखायें... उसके लिये यह सब कुछ बेमानी था।

"सकुशल घुमा दिया..." ऑपरेटर के कन्धे पर झुकते हुए उसने पढ़ा। वह बहुत उत्सुकता से पेन्सिल की नोक़ को देख रहा था।

"सकुशल घुमा दिया!" वायरलैस ऑपरेटर अनजाने ही चिल्ला उठा।

"सकुशल घुमा दिया!" सारे कमरे में हलचल मच गई। "ओह डाक्टर! सेर्गेई मत्वेयिच! ओह प्यारे!"

"बच्चे के दिल की ओर ध्यान दो," डाक्टर ने ग़ुस्से में कहा।

उसे ख़ुद अपने पर ग़ुस्सा आ रहा था कि रेडियो से प्राप्त जवाब सुनकर वह इतना उत्तेजित क्यों हो उठा था। यह तो पहले साल के विद्यार्थी जैसी, पहले ऑपरेशन के समय एक सहायक की सी हरकत थी।

"शर्म आनी चाहिये तुम्हें! तुम तो डाक्टर के नाम पर कलंक हो!"

"बच्चे के दिल की ओर ध्यान दो," वह फिर से चिल्लाया और ऑपरेटर ने झटपट यन्त्र खटखटाकर सन्देश भेजा।

"अभी बच्चे का जन्म नहीं हुआ," उसने कमरे में उपस्थित सभी लोगों को डांटते हुए कहा। कमरे में फिर से गहरी ख़मोशी छा गई। "अभी वह वक़्त दूर है, दूर है," उसकी आवाज़ फुसफुसाहट में बदलती हुई डूब गई। उसकी नज़र फिर से लाऊडस्पीकर पर जा टिकी।

अचानक उसके मन में इच्छा पैदा हुई, बहुत ही प्रबल इच्छा कि बच्चा ज़िन्दा पैदा हो। उसे अवश्य ही ज़िन्दा पैदा होना चाहिये, ज़िन्दा, और उसे लड़का होना चाहिये। घुंघराले बालों वाला नन्हा-मुन्ना सा... वह बच्चे के लिये इस तरह परेशान हो उठा मानो उसका अपना बेटा हो... औरत तो ख़तरे से बाहर हो गई थी, मगर बच्चा, बच्चा...

"बच्चे के दिल की ओर ध्यान दो – उसके दिल का सम्भालो!"

"दिल बिल्कुल ठीक-ठीक और साफ़ धड़क रहा है," ऑपरेटर ने जवाब पढ़कर सुनाया।

मगर ये ऑपरेटर के शब्द नहीं थे जो उसने सुने। नहीं! यह तो मां के गर्भ में धड़कनेवाला बच्चे का दिल था जिसे उसने सुना था। यह उस बच्चे की धड़कन थी – जिसने अभी जन्म नहीं लिया था। मगर जल्द ही वह धरती पर पहली सांस लेगा। उसकी चीख़ विजय की चीख़ होगी। वह चीख़ अपने अधिकारों की घोषणा करनेवाली चीख़ होगी। किस तरह का होगा वह दिल? इस आदमी का दिल, जिसे

उसकी ज़िन्दगी ही उसके देश ने दी, जिसे जीवन दिया इन वायरलैस ऑपरेटरों ने, पाइप के कश लगाते हुए पार्टी कमिटी के इस सेक्रेट्री ने, चिकित्सक ने (वह ढंग का आदमी है, ज़रूर ढंग का आदमी है!), और ख़ुद उसने भी... सेर्गेई मत्वेयिच ने भी। उसने ज़ोर का ठहाका लगाया। इस तरह का ठहाका उसने जीवन में पहले कभी नहीं लगाया था। उसके इस ठहाके में विजय, गर्व या सन्तोष की झलक नहीं थी। कुछ और ही था उसमें, कुछ और ही जिसे वह ख़ुद भी अच्छी तरह से समझ नहीं पा रहा था।

प्रसव पीड़ा शुरू हो गई थी। खीरे के देश से अब जल्दी जल्दी सन्देश आने लगे थे। वहां का डाक्टर, रोगी की दशा, दर्द के अन्तरों के बारे में संक्षिप्त सूचना देता और पति उसके साथ अपनी ओर से जोड़ता – "बहुत तकलीफ़ हो रही है उसे... भयानक तकलीफ़... वह तो गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही है...हाय, क्या किया जाये? क्या किया जाये डाक्टर? बहुत तकलीफ़ है बेचारी को! कुछ तो कीजिये डाक्टर! मैं अब उसकी चीख़ों को और बर्दाश्त नहीं कर सकता!"

ऐसा लगता था कि कमरे में बैठे सभी लोग लाऊडस्पीकर के ज़रिये उस नारी की दिल दहला देनेवाली चीख़ें सुन रहे थे। सेर्गेई मत्वेयिच ने घूमकर पार्टी कमिटी

के सेक्रेट्री की ओर देखा। वह पाइप की नली को ज़ोर से भींचे हुए था, उसका चेहरा मुरझाया हुआ था।

"यह आपको क्या हो गया? यह आपको क्या हो गया, मियां क्या मामला है? वह आपकी बीवी तो नहीं है न?"

"बेशक नहीं," सेक्रेट्री ने ज़रा-सी मुस्कान लाकर उत्तर दिया। "मगर यह नारी और यह बच्चा भी, कैसे कहूं मैं...ये हमारे हैं।"

सेर्गेई मत्वेयिच का चेहरा शर्म से लाल हो उठा। ऐसे अटपटे सवाल पूछने, उस व्यक्ति की भावनाओं का मूल्यांकन न कर पाने और शायद उसके दिल को चोट पहुंचाने के लिये उसे अपने आपसे घृणा हुई। मगर इस बात के बारे में सोचने का समय नहीं था।

"बच्चे के दिल की ओर ध्यान दो!"

...तीन घण्टे गुज़र चुके थे। वह पूरे तीन घण्टे से इसी काम में जुटा हुआ था। अब वह अपने को बिल्कुल थका-टूटा महसूस कर रहा था, उसमें बिल्कुल हिम्मत नहीं रही थी। उसे लगता था मानो किसी ने उसकी ख़ूब कसकर पिटाई की हो। क्या जल्द ही यह काम सिरे चढ़ जायेगा— जल्द ही समाप्त हो जायेगा, रेडियो द्वारा बच्चा जनवाने का यह असाधारण काम?

अचानक ऑपरेटर ख़ुशी से चिल्ला उठा—

"लड़का! लड़का! यह देखिये – यह देखिये!" उसने सन्देश वाला पुर्ज़ा डाक्टर के हाथ में पकड़ा दिया।

"प्यारे डाक्टर। साथियो और मित्रो!" सन्देश में कहा गया था। "लड़का हुआ है, मेरा बेटा, मेरा बेटा! धन्यवाद। यह सब कुछ करने के लिये धन्यवाद! धन्यवाद सेर्गेई मत्वेयिच! आपने तो कमाल ही कर दिखाया, प्यारे! धन्यवाद!"

हर कोई डाक्टर से हाथ मिलाना चाहता था। भावुकता, हार्दिकता और मैत्री की भावना से ओतप्रोत लोगों ने डाक्टर से हाथ मिलाया। लोगों ने उसे बधाइयां दीं। उसे आश्चर्य की दृष्टि से देखा और धन्यवाद दिया। पार्टी कमिटी का सेक्रेट्री बहुत हार्दिकता से देर तक उसका हाथ अपने हाथ में लिये रहा और बार बार दोहराता रहा –

"सेर्गेई मत्वेयिच, मेरे प्यारे... तुम इन्सान हो – सच्चे इन्सान! कमाल कर दिया तुमने! तुमने एक सच्चे बोल्शेविक की तरह काम किया है, सेर्गेई मत्वेयिच!"

सेर्गेई मत्वेयिच वहां बैठा था – खोया-खोया-सा, लुटा-लुटा-सा। वह उनकी ओर देख रहा था और कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। उसने सन्देश पढ़ा मगर शब्द उसकी समझ में नहीं आये। उसने लोगों को बधाइयां देते सुना मगर समझ नहीं पाया कि वे क्या कह रहे थे। वह चकरा-सा गया था। सर्जन होते हुए भी वह भावुक हो उठा था।

अचानक उसका सारा जीवन एक नये चित्र की भांति उसकी नज़रों के सामने से गुज़रने लगा। उसने अपने को देखा, उसे अपने पेशे का ख़्याल आया, अपने विद्यार्थी जीवन के सपनों और हर उस चीज़ का ख़्याल आया जो कभी उसने की थी या जिसे करने की क्षमता वह रखता था। उसने यह सभी कुछ एक नई और असाधारण दृष्टि से देखा। निश्चय ही वह कोई दूसरा व्यक्ति था जिसने केवल एक ही दिन पहले बुढ़ापे में सुख की ज़िन्दगी, सुख-चैन का जीवन बिताने के आदर्श की चर्चा की थी। क्या कहा था उसने? नास्टरशियम के फूल और खिड़की के नीचे रात्रि वायोलेट की एक क्यारी?

कोन्स्तानतीन पौस्तोवस्की (जन्म १८९२) बुज़ुर्ग सोवियत लेखकों में से एक हैं आपको भावपूर्ण गद्य लिखने में कमाल हासिल है। अब तक तीस से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। इन पुस्तकों को १९२० से १९५० तक के सोवियत समाज की भावमयी डायरी कहा जा सकता है।

'सितारों का खोजी' नामक कहानी १९३८ में लिखी गई।

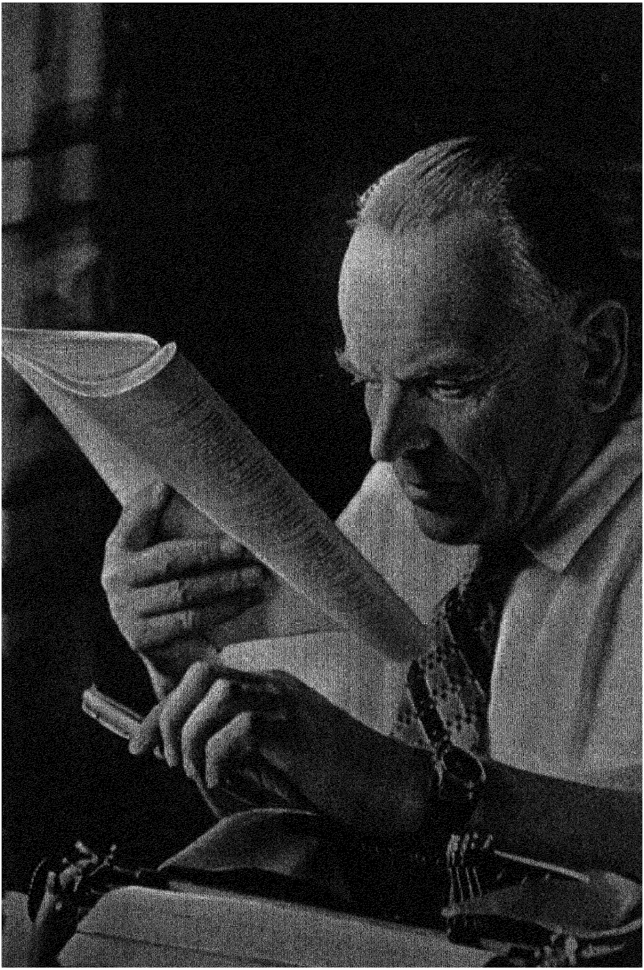

कोन्स्तानतीन पौस्तोवस्की
सितारों का खोजी

हम लोग मानचित्र के अनुसार चल रहे थे। यह मानचित्र पिछली शताब्दी के आठवें दशक में तैयार किया गया था। नक़्शे के एक कोने में यह लिखा हुआ था – "यह मानचित्र स्थानीय निवासियों से प्राप्त सूचना के आधार पर तैयार किया गया।" इस नोट से जो बात स्पष्ट होती थी उससे हमें कोई ख़ुशी नहीं हुई। हम भी स्थानीय निवासियों से पूछ-ताछ करते थे, मगर उनके जवाब अधिकतर ग़लत और उलझे-उलझाये होते थे।

स्थानीय लोग देर तक और ख़ूब ज़ोरों से बहसते, आपस में झगड़ते और तरह तरह की निशानियां याद करते। वे कुछ इस तरह से रास्ता बताते–

"नाले के क़रीब पहुंचने पर जंगल की ओर घूम जाइये, फिर सड़क के सिरे तक चलते जाइये। वहां जला हुआ जंगल और एक गढ़ा आयेगा। इसके बाद तुम को ऐन पहाड़ी तक चलते जाना चाहिए। पहाड़ी वहां से कुछ कुछ नज़र आती है। कहा जा सकता है कि पहाड़ी के पीछे तुम्हारा रास्ता बिल्कुल आसान होगा। वह दलदल से होकर झील तक चला गया है। इस तरह तुम अपनी मंज़िल पर पहुंच जाओगे।"

हम स्थानीय लोगों द्वारा बताई गई निशानियों का पूरी तरह अनुकरण करते, मगर कभी भी अपनी मंज़िल पर न पहुंचते।

इस समय हम नक़्शे के मुताबिक़ चल रहे थे, मगर सूखी दलदल में भटक गये थे जहां झाड़ियों का जंगल फैला हुआ था।

पतझर का दिन था, सूखी पत्तियां सरसरा रही थीं। कुछ देर बाद हल्की हल्की फुहार पड़ने लगी, ठंडी ठंडी धूल से मिलती-जुलती।

दिन के तीन बजते बजते हम दलदल के बीच एक रेतीले टीले पर पहुंचे। इस टीले पर फ़र्न के सूखे पौधे खड़े थे। दिन जल्दी ही ढल गया। आकाश के तेवर कुछ अच्छे न थे और उस पर अन्धकार छा चुका था, रात घिरती आ रही

थी। दलदलों के बीच रात घिर आई थी, सूखी पत्तियां सरसरा रही थीं, बरसाती बूंदों की टपटप हो रही थी। इन सभी कारणों से एकाकीपन की बड़ी तीव्र अनुभूति हो रही थी।

हम ज़ोर से आवाज़ लगाते और जवाब पाने की प्रतीक्षा करते। जवाब में हमें सुनाई देती घने जंगल के सन्नाटे में चीख़ती हुई हवा और कौओं के झुण्डों की कांय कांय।

बाद में ज़मीन और दलदल के उस पार से हमें लम्बी, कमज़ोर-सी आवाज़ जवाब में सुनाई दी।

आवाज़ निकट आती गई। टहनियां चरमरा रही थीं। आवाज़ बिल्कुल क़रीब आ गई। झाड़ियों के बीच से एक लड़का निकलकर सामने आया। उसके चेहरे पर बुन्दियां थीं। उम्र यही कोई बारह साल की होगी। वह सूखी टहनियों पर बहुत सावधानी से क़दम रखता हुआ नंगे पैर चल रहा था। उसके हाथों में पुराने, घुटनों तक के लम्बे बूट थे। वह हमारे पास आया और कुछ हिचकते-झिझकते हुए उसने हमसे सलाम दुआ की।

"मुझे किसी के लगातार पुकारने की आवाज़ सुनाई दे रही थी," उसने कहा और हंस दिया। "मैं तो डर ही गया था – इस वक़्त भला यहां कौन आयेगा? गर्मियों में ख़ैर औरतें बेरियां इकट्ठी करने आती हैं, मगर आजकल तो बेरियां भी नहीं हैं! रास्ता भूल गये हैं क्या?"

"हां," हमने जवाब दिया।

"यहां मौत का शिकार होने में भी देर नहीं लगती," लड़के ने कहा। "पिछली गर्मियों में एक औरत राह भटक गई थी, वसन्त में जाकर मिली। सिर्फ़ हड्डियों का ढांचा रह गया था।"

"तुम यहां कैसे आये?"

"मैं तो यहीं रहता हूं, छोटी झील के पास। बछड़े को ढूंढ़ रहा हूं।"

यह लड़का हमें छोटी झील तक ले गया। रात के समय ही हम दलदल से बाहर आये, ठोस ज़मीन पर पहुंचे और घास-फूस से ढके हुए रास्ते पर बढ़ चले। हवा ने बादलों को दक्षिण की ओर उड़ा दिया। पेड़ों की चोटियों के ऊपर उजले-उजले सितारे ख़ूब चमक रहे थे। मगर शाख़ों के बीच से जाने-पहचाने सितारों के झुरमुट भी अजीब-से लग रहे थे। इनमें सप्तऋषियों तक को खोज पाना मुश्किल था।

"बछड़े की बात तो मैंने अपने मन से बना ली थी," काफ़ी देर तक चुप रहने के बाद लड़के ने कहा। "मैं बछड़े की तलाश नहीं कर रहा था।"

"तो क्या ढूंढ़ रहे थे तुम दलदल में?"

"टूटकर गिरनेवाला तारा," लड़के ने जवाब दिया। "परसों रात को एक सितारा टूटकर यहां पहाड़ी के पीछे गिरा था। मेरी अचानक आंख खुल गई, क्या सुना कि मान्का गाय ज़ोर से रंभा रही है, डरी-सहमी हुई सींग हिला-डुला रही है। मैं समझ गया कि हो न हो, कोई भेड़िया

घर के क़रीब आ गया है। मैं देखने के लिये अहाते में पहुंचा। आवाज़ पर कान लगाये खड़ा था। सहसा क्या हुआ कि कोई चीज़ सारे आकाश के आर-पार कौंध गई। देखा तो उल्का थी। वह जंगल के ऊपर से उड़ती हुई नीचे आया और पहाड़ी के पीछे किसी जगह गिरी। बहुत ही ज़ोर की गड़गड़ाहट हुई, बिल्कुल हवाई जहाज़ जैसी।"

"तुझे क्या लेना-देना है उल्का से?"

"मैं उसे अपने स्कूल में ले जाऊंगा," लड़के ने जवाब दिया। "उसका अन्वेषण करना चाहिये। क्या आप जानते हैं कि तारे किस चीज़ के बने होते हैं?"

रात के समय तारों और वर्णक्राम-विश्लेषण के सम्बन्ध में बातचीत छिड़ गई।

आधी रात को हम काली जंगली झील के किनारे पहुंचे। पतझर का तारों भरा आकाश पानी में झिलमिला रहा था। झील के किनारे पर कई घर थे। सिर्फ़ सिरेवाले एक घर में मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था। लड़के ने दरवाज़ा खटखटाया।

"कहां आवारागर्दी करता फिर रहा है शैतान?" दरवाज़े के पीछे से नारी की खीझ भरी आवाज़ सुनाई दी। "बेकार जूते तोड़ता रहता है।"

"मैं नंगे पैर था मां," लड़के ने जवाब दिया।

दरवाज़े की सांकल अलग हुई और हम लोग टटोलते

हुए ड्योढ़ी में बढ़े। ड्योढ़ी में सूखी घास और ताज़ दूध की महक थी।

हमने लड़के के घर में ही रात गुज़ारी। उसका नाम था ल्योन्का जूयेव। ल्योन्का के बाप के साथ हमने सिगरेट के कश लगाये। वह बुज़ुर्ग और ख़ामोश व्यक्ति था, लोहे के फ़्रेमवाला चश्मा लगाये था। हम गर्म तन्दूर के क़रीब सूखी घास पर लेट गये। झींगुर झीं-झीं का राग अलाप रहे थे। ड्योढ़ी में ऊंघती हुई मुर्गियां कुड़-कुड़कर रही थीं।

रात में मेरी आंख खुल गई। ज़ोरदार और दर्द-भरे नारी स्वर में 'हुक्म की बेगम' ऑपेरा की एक जानी-पहचानी धुन गूंज रही थी। आरकेस्ट्रा के तने हुए सैकड़ों तार झनझना रहे थे। धुंधली खिड़कियों से तारे कांपते, थरथराते-से दिखाई दे रहे थे। झींगुर ने मधुर धुन सुनकर अपनी झीं-झीं बन्द कर दी थी।

"आपको यह रेडियो परेशान कर रहा है," ल्योन्का की मां ने लेटे लेटे कहा। "ल्योन्का ने बनाया है इसे। आपकी नींद में ख़लल डाल रहा है, मगर इसे बन्द कैसे किया जाये—मैं तो नहीं जानती, पढ़ी-लिखी नहीं हूं। लड़के को जगाना होगा।"

"नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। सोने दीजिये।"

"हमें बहुत अच्छे लगते हैं, बेहद अच्छे लगते हैं मास्को के गीत!" ल्योन्का की मां ने अंधेरे में कहा। उसकी आवाज़ में सुरीलापन था, ठहराव था। "वे गीत बेशक ख़ुशी के

हों, बेशक दर्द-भरे, समझ में आयें या न आयें पर अच्छे लगते हैं। यद्यपि दिन-भर घर-गिरस्ती का काम करके बिल्कुल चूर हो जाती हूं तथापि कभी कभी तो मैं मुर्ग़ के सुबह की बांग देने तक इन्हें सुनती रहती हूं।"

वह चुप हो गई।

"इसे ल्योन्का ने बनाया है।" उसने कहा और शायद अन्धेरे में मुस्कराई भी। "बहुत ही बेक़रार रहता है, हर चीज़ जानने की प्यास रहती है इसे। बिल्कुल बाप पर गया है!"

"और बाप ?" मैंने इस नारी से पूछा।

"आपका मतलब सेम्योन से है?" उसने प्रत्युत्तर में प्रश्न किया। "हमारा सेम्योन १९१८ से पार्टी का सदस्य है। बस जनता के लिये जीता है... रोटी का आख़िरी टुकड़ा तक दूसरों को देने को तैयार रहता है। उसका अपना पेट भरने को तो किताबें ही काफ़ी हैं।"

सुबह हमें सेम्योन ज़ूयेव की कहानी मालूम हुई। जवानी के दिनों में उसने र्याज़ान नगर में दर्ज़ी का काम सीखा। लीसोव के जिस दर्ज़ीख़ाने में उसने काम किया वह नगर में सबसे अच्छा माना जाता था। वहां गवर्नर, फ़ौजी अफ़सरों और एडवोकेटों के कपड़े सिलते थे। एडवोकेट फ़ाककोट पहनते थे और सेम्योन ने रेशम की गोट लगे हुए पतलूनों की सिलाई कर कर के अपनी आंखें ख़राब कर लीं। यह हाथ का और बहुत बारीक काम होता था।

दर्ज़ीख़ाने का मालिक लीसोव धार्मिक विचारों का नीरस बूढ़ा था। चेहरा उसका हरा हरा था, दीप के तेल जैसा। वह दिन भर या तो धार्मिक किताबें और या फिर करामज़ीन का लिखा हुआ 'रूस राज्य का इतिहास' पढ़ता। उसने शहर की सजावट पर एक हज़ार रूबल ख़र्च किया। उसने मिट्टी-धूल से भरी सड़कों के मकानों की दीवारों पर बोर्ड लगवा दिये जिन पर करामज़ीन के लिखे इतिहास से कुछ अंश उद्धृत किये गये थे। प्रत्येक उद्धरण के नीचे यह नोट था—"श्री करामज़ीन द्वारा लिखित इतिहास का अमुक खण्ड, अमुक पृष्ठ देखिये"।

"मैंने आरम्भ किया करामज़ीन के इतिहास से और अन्त किया लेनिन के लेखों पर," सेम्योन ने कहा। "उसकी आवाज़ दूर दूर तक गूंज रही थी। रात को पढ़ते और सुबह उठकर सड़क पर नज़र दौड़ाते तो यह दृश्य होता—धूल, गन्दे पानी के तालाब में लोटती-पोटती बत्तखें, दूकान की दीवार मुहर की लाख से लाल, गिरजाघर से घंटियों की आवाज़ और ग़रीबी के मारे हुए लोग एक एक कोपेक के लिये एक-दूसरे का सिर तोड़ते हुए। थोड़े में यह कि बहुत ही बुरी हालत थी पुरानी रूस की। तभी दिमाग़ में नये शब्द आ समाये, हमारे भाइयों के भविष्य का उजाला।"

क्रान्ति के बाद सेम्योन, झील के तटवर्ती गांव में गया। किनारे पर उसने घर बनाया और जंगल साफ़ करके उपजाऊ

भूमि पर फ़सलें उगाने के काम में जुट गया। अब झील के किनारे पांच परिवार भी बस चुके हैं।

सुबह को ल्योन्का हमें बड़ी सड़क तक पहुंचा गया। पतझर की गिरफ़्त में आये हुए जंगलों में रुपहली धूप ख़ूब चमक रही थी। इसके ठण्डे प्रकाश में वृक्षों से झड़कर झील के पानी में गिरनेवाली हर पत्ती साफ़ साफ़ दिखाई दे रही थी। कभी कभी हवा का तेज़ लहरा आता और तब पत्तियां शोर करती हुई बरसात की तरह बरसातीं और गालों को गुदगुदातीं।

कुछ दिनों बाद ल्योन्का दौड़ता हुआ हमारे गांव में आया और "टूटकर गिरे हुए तारे" का एक टुकड़ा लाया। यह सख़्त और तेज़ पत्थर का टुकड़ा था, एकदम कालिख और ज़ंग लगा हुआ। उसे यह पहाड़ी के पीछे जले हुए एक वृक्ष के ठूंठ में से मिला था।

ल्योन्का से अब मेरी दोस्ती हो गई थी। उसके साथ जंगलों में घूमना मुझे बहुत अच्छा लगता था। वह जंगल की हर पगडंडी, हर वीरान कोने, हर क़िस्म की घास, हर झाड़ी, सभी काइयों, खुमियों और फूलों से परिचित था। वह सभी दरिन्दों, सभी परिन्दों की आवाज़ पहचानता था।

मैं अपने जीवन में सैकड़ों लोगों से मिला हूं। ल्योन्का उनमें से पहला था जिसने मुझे बताया कि मछली कहां और किस तरह सोती है, धरती के नीचे की सूखी दलदल कैसे बरसों तक तपती रहती है, सनोबर के पुराने वृक्ष पर किस तरह

फूल आते हैं और कैसे पतझर में पक्षियों के साथ साथ छोटी छोटी मकड़ियां भी दक्षिण की ओर उड़ जाती हैं। हवा का रुख़ जब दक्षिण की ओर होता है तो ये मकड़ियां अपने जालों में लिपटकर उड़ती हैं और दसियों किलोमीटरों तक उड़ती चली जाती हैं।

ल्योन्का के पास काइगोरोदोव की दो किताबें थीं। इतनी बार उसने उन्हें पढ़ा था कि वे जगह जगह से फट गई थीं। वह पतझर में मकड़ियों के उड़ने की पहेली सुलझाने के लिये उसे उलटता-पलटता रहता, मगर बेसूद!

"एक बात मेरी समझ में नहीं आती," ल्योन्का कहता। "मकड़ी होती तो छोटी-सी है, मगर जाला इतना बुनती है कि अगर उसका गोला बनाया जाये तो चालीस मकड़ियों के बराबर हो।"

ल्योन्का का स्कूल दस किलोमीटर की दूरी पर था। वह हर दिन पैदल स्कूल जाता। पूरे जाड़े में सिर्फ़ दो दिन वह स्कूल नहीं गया था। मगर उन दो दिनों की चर्चा उसे पसन्द नहीं थी, उसे शर्म आती थी। तब हुआ यह था कि ज़ोर का बर्फ़ का तूफ़ान आया था और उनका घर छज्जे तक बर्फ़ में धंस गया था।

जाड़े के दिनों में ल्योन्का मुंह अंधेरे ही घर से चल देता। झिलमिलाते सितारे ठण्ड से कांपते-से होते, सनोबर के वृक्ष सरसराते, पैरों के नीचे बर्फ़ चरचराती और ल्योन्का

का दिल बैठ बैठ जाता। कहीं भेड़िये न सुन लें उसके पैरों की आवाज़। जाड़े में भेड़िये झील तक आ जाते थे और सूखी घास में डेरा डाल देते थे।

मगर सबसे बुरे दिन तो होते नवम्बर के, ख़त्म होती पतझर के दिन। तब बर्फ़, बरसात से नर्म पड़ जाती, सड़कों पर फैलती और धुंधलाये हुए आकाश से नीचे गिरती हुई मुंह पर चोट करती और झंझावात के ठण्डे झोंकों से सारा बदन बर्फ़ जैसा हो जाता।

गर्मियों में ल्योन्का मां के साथ ज़मीन जोतता, सब्ज़ियों के बगीचे की गोड़ाई करता, बीज बोता और घास काटता। सेम्योन से काम न होता – साल-दर-साल उसका दिल अधिक से अधिक कमज़ोर होता जा रहा था, चेहरे की सूजन ज़्यादा होती जाती थी और पुरानी सूखी खांसी उसे परेशान करती रहती थी।

"न तो ज़िन्दों में, न मुर्दों में," अपनी कमज़ोर-सी छाती को हथेली से मलते हुए सेम्योन कहता। "घुन लग कर रह गया है मेरी ज़िन्दगी को। क्रान्ति देर से हुई। ख़ैर, कोई बात नहीं ल्योन्का मेरी कमी पूरी कर देगा।"

ल्योन्का से मेरी गहरी छनती थी। मैंने मास्को से उसे बहुत-सी किताबें भेजीं। हर पतझर में मैं जंगलवाले इस गांव में पहुंचता और वहां से झील की ओर जाता। यह एक परम्परा-सी बन गई थी।

मैं सदा अप्रत्याशित ही गांव में पहुंचता। मैं पतझर

के नीरव जंगल में जाता। वहां पक्षियों के सिवा किसी से भेंट न होती। पुराने ठूंठ, जंगल के बीच खुले मैदान, वीरान सड़क के मोड़, ये सब मेरे पुराने परिचित हो गये थे। जंगल-किनारे का हर पेड़ मेरा जाना-पहचाना था। ल्योन्का ने मुझे उनसे प्यार करना सिखाया था।

मैं अक्सर शाम को काफ़ी देर से वहां पहुंचता। उस समय पीले पीले सितारे इस बात की सूचना देते कि रात ठण्डी होगी। उस वक़्त धुएं की गन्ध ही मुझे दुनिया में सबसे प्यारी गन्ध लगती। यह गन्ध मुझे बताती कि झील और गर्म गर्म घर निकट है, कि अब हंसी-ख़ुशी की बातें होंगी, कि ल्योन्का की मां अपनी सुरीली आवाज़ में शिकायतें करेगी, कि जल्द ही सूखी घास के बिस्तर पर आराम किया जायेगा। यह गन्ध मुझे झींगुर की झीं-झीं वाली उन लम्बी रातों का स्मरण कराती जब मैं गूंजते तारों, बीथोवन और वेर्दी की धुनें सुनकर रात को जाग उठता हूं और जब भूखे भेड़ियों की कांपती आवाज़ इन धुनों में दबकर रह जाती है।

ल्योन्का हर बार अपने घर से दौड़ता हुआ मुझ से मिलने आता। अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करते हुए वह शर्माता और सिर्फ़ ज़ोर से हाथ ही मिलाता। फिर हम पढ़ी हुई किताबों, फ़सलों, ध्रुव में जाड़ा बिताने, सूर्यग्रहण और मछलियां पकड़ने के बारे में देर तक बातचीत करते रहते। बातचीत करने के लिए हमारे पास अनेक मनोरंजक विषय थे।

सेम्योन हमें फिर से अपनी जवानी के दिनों की और र्याज़ान में ज़ार विरोधी पर्चे लानेवाले विद्यार्थियों की बातें सुनाता।

इस तरह हमारे मैत्री-बन्धन कसते चले गये। मैं कहीं भी क्यों न होता, यह जानता था कि पतझर के अन्तिम दिनों में इस जंगली प्रदेश में पहुंच जाऊंगा। मैं वहां लौटूंगा और ल्योन्का और सेम्योन से मिलूंगा। इन लोगों की संगत से मुझे इस बात की अधिकाधिक चेतना हो रही थी कि जीवन हर वर्ष पहले से ज़्यादा बेहतर होता जा रहा है। कहीं अक्सर एसे सुखद दिन आते जब अचानक हवा के झोंकों में जंगल के वृक्षों की सरसराहट और काइयों के बीच ठण्डे पानी के निर्झरों की झरझर सुनाई देती। ऐसे समय पुस्तकों, चिन्तन और देहाती लड़के के साथ दोस्ती का महान मूल्य स्पष्ट हो जाता है। उस देहाती लड़के की मैत्री का जो तीन वर्षों से मास्को जाने, भूमिगत रेलवे, क्रेमलिन और चिड़ियाघर में जीते-जागते हाथी देखने के सपने देख रहा है।

हर साल मैं जब वहां से लौटता हूं तो ल्योन्का मुझे स्टेशन पर छोड़ने आता है। इस साल भी ऐसा ही हुआ। यहां छोटी लाइन की छोटे छोटे डिब्बों वाली रेल गाड़ी चलती है जिसे स्थानीय लोग "बूढ़ी घोड़ी" कहते हैं। गाड़ी जंगलों के बीच से धीरे धीरे खिसक रही थी। जंगलों को कहीं कहीं से काटकर साफ़ कर दिया गया था और घनी सुनहरी और रंग-बिरंगी झाड़ियां साफ़ नज़र आने लगी थीं।

रास्ते के क़रीब ऐसी ही एक खुली जगह में ल्योन्का खड़ा हुग्रा बाप की पुरानी टोपी हिला रहा था। केतली की शक्ल से मिलता-जुलता इंजन मानो खीझकर ल्योन्का पर चीख़ा। मगर ल्योन्का हंस दिया, खिड़की के क़रीब दौड़कर ग्राया ग्रौर उसने चिल्लाते हुए कहा –

"हम प्रतीक्षा करेंगे! मैं ग्रापको सविस्तार पत्न लिखूंगा। ग्राप ब्रेम की किताब भेजना नहीं भूलियेगा।"

देर तक मैं ल्योन्का का गुलाब-सा चेहरा देखता रहा। ल्योन्का पतझर की मुरझाई ग्रौर भीगी हुई झाड़ियों के बीच दौड़ रहा था। वह दौड़ रहा था, ग्रपनी किताबों का थैला हिला रहा था ग्रौर मुस्करा रहा था। उसकी सुमधुर ग्रौर लजीली मुस्कान मेरे लिये थी, जंगल के लिये थी, सूरज के लिये थी, सारी दुनिया के लिये थी।

१९३८

अलेक्सेइ तोलस्तोय (१८८२ - १९४५) एक प्रमुखतम सोवियत लेखक। आपने अनेक कहानियां और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे वैज्ञानिक-काल्पनिक रचनायें रचीं और राजनैतिक पुस्तिकायें लिखीं। आपके तीन खण्डों वाले उपन्यास 'कांटों से भरा रास्ता' और 'पीटर प्रथम' की सर्वश्रेष्ठ सोवियत साहित्य में गिनती की जाती है।

'ऐसे होते हैं रूसी लोग'-यह कहानी १९४४ में लिखी गई।

अलेक्सेइ तोलस्तोय

ऐसे होते हैं रूसी लोग

'ऐसे होते हैं रूसी लोग'—एक छोटी-सी कहानी के लिये यह शीर्षक ख़ासा भारी भरकम मालूम होता है... पर ख़ैर किया क्या जाये, चर्चा तो मैं आपसे इस रूसी चरित्र की ही करने जा रहा हूं।

रूसी चरित्र! हां तो इसे बयान करना कोई असान काम नहीं... क्या इसे बहादुरी के कारनामों की राम-कहानी बना दूं? परन्तु इन कारनामों की गिनती तो इतनी है कि आदमी

इसी बात में उलझकर रह जाये कि किसका वर्णन पहले करे और किसका बाद में। मेरे एक मित्र ने अपनी जीवन-कथा सुनाकर मुझे इस धर्म-संकट से उबार लिया।

मेरे इस मित्र ने जर्मनों को खदेड़-भगाने के सिलसिले में क्या किया, यह सब मैं आपको नहीं बतलाऊंगा। इतना ही काफ़ी समझिये कि इसकी छाती पर एक सुनहरा सितारा जगमगाता है, और आधे सीने पर पदक ही पदक नज़र आते हैं। वैसे वह एक साधारण-सा आदमी है – सरल-सादा, चित्त से शांत, वोल्गा के तटवर्ती सरातोव प्रदेश के किसी सामूहिक फ़ार्म का किसान। पर, वह दूसरों से बाज़ी मार ले गया है, और इसके मूल में है उसका कसा हुआ सुघड़ बदन और सांचे में ढला-सा नाक-नक़्शा। जब भी वह टैंक की बुर्जी से बाहर आता तो आस-पास खड़े लोग चौंक उठते। उन्हें ऐसे लगता जैसे कि रुद्र-देवता धरती पर उतर आया हो। वह नीचे कूदता, पसीने से तर-ब-तर बालों के ऊपर से टोपी उतारता, किसी ऐसे-वैसे सूती कपड़े से गन्दा चेहरा पोंछता और मुस्कराने लगता – मुस्कराहट भी होती सदाशयता और सद्भावना से धुली-धुली सी।

लड़ाई में आदमी हर समय मौत के कंधे से कंधा भिड़ाता रहता है। उसके व्यक्तित्व में जो कुछ भी लिबलिबा, कमज़ोर और बेकार होता है, वह वैसे ही उधड़ता चला जाता है, जैसे धूप में तप जाने पर बदन की बीमार खाल।

आदमी और निखर उठता है, और बच रहता है केवल ठोस सार-तत्त्व। कहना न होगा कि यह ठोस सार-तत्त्व किसी में अधिक दृढ़ होता है तो किसी में ज़रा कमज़ोर। पर, जिनमें थोड़ी-बहुत कमी होती है, वे भी अपने को निखारने और पूर्ण बनाने का पूरा प्रयत्न करते हैं, और सच्चे मित्र की भांति एक-दूसरे के साथ अच्छे से अच्छा व्यवहार करने को सदा उत्सुक रहते हैं। उसपर, मेरा मित्र येगोर द्रियोमोव लड़ाई के पहले भी अपने बात-व्यवहार के मामले में बहुत सधा हुआ था। अपनी मां मरीया पोलिकारपोव्ना और अपने पिता येगोर येगोरोविच का वह बहुत आदर और उसे बहुत प्यार करता था। मैंने जब-तब उसे यह कहते सुना था – "मेरे पिता गम्भीर क़िस्म के आदमी हैं। उन्हें स्वाभिमान का ध्यान हर चीज़ से पहले रहता है। मुझसे अक्सर कहते हैं – 'बेटे, अभी तो तुम दुनिया में बहुत कुछ देखोगे, देश-विदेश भी जाओगे, पर अपने रूसी होने का अभिमान कभी न टूटने देना...'"

मेरे मित्र की मंगेतर वोल्गा के किनारे बसे उसी गांव की ही थी। हमारे लोग अपनी पत्नियों और प्रियतमाओं की दास्तानें कहते कभी थकते ही नहीं। ख़ास तौर पर जब मोर्चा ज़रा ठंडा हो, बाहर पाला काट रहा हो, जंगी तहख़ाने में नन्हा-सा चिराग़ टिमटिमा रहा हो, चूल्हे में आग जल रही हो और लोग रात के खाने से फ़ारिग़ हो चुके हों। फिर तो बस कुछ न पूछिये कि कैसी कैसी दून की हांकी जाती है।

उदाहरण के लिये बातचीत का श्रीगणेश यों होता है— "प्यार क्या है?"—"प्यार का आधार होता है आदर-सत्कार..."—दूसरा कह उठता। "नहीं, बिल्कुल नहीं! प्यार महज़ आदत है। आदमी अपनी बीवी से ही नहीं, माता-पिता से, यहां तक कि जानवरों से भी प्यार करने लगता है..."—तीसरा बीच में टपकता। "तुम हो उल्लू! प्यार... यानी प्यार तब होता है जब हम अन्दर ही अन्दर जैसे खौलते रहते हैं, और शराबियों की तरह नशे में झमा करते हैं..." इस तरह यह बातें चलती रहती हैं और लोग घंटे-दो घंटे तक इसी तरह सिर खपाते रहते हैं कि सार्जेन्ट बीच में आ धमकता है और अपनी अफ़सराना आवाज़ में मामले का सारा निचोड़ निकालकर सामने रख देता है...

येगोर द्रियोमोव ऐसी बातों की चर्चा करने के मामले में शर्माता रहता। हां, कभी-कभी बातों-बातों में, यों ही अपनी प्रियतमा की चर्चा-भर करता। कहता—"बड़ी अच्छी लड़की है। उसने मेरा इन्तज़ार करने का वायदा किया है और वह मेरा इन्तज़ार करेगी, चाहे मेरी टांग ही लड़ाई में क्यों न कट जाये..."

मोर्चे के अपने कारनामों का ज़िक्र करना भी उसे पसन्द नहीं था। बात आने पर कहते—"उन बातों को दोहराने का मन नहीं होता!" इसके बाद नाक-भौंहें सिकोड़ता और सिगरेट सुलगा लेता। उसके टैंक की करामातों की चर्चा तो

हम उसके जत्थे के लोगों से सुनते। ख़ास तौर पर ड्राइवर चुविलेव जो बातें सुनाता उनसे तो लोग बिल्कुल अचरज में पड़ जाते।

एक बार बोला – "हुआ यह कि हम मुड़े ही थे कि क्या देखा कि पहाड़ी के पीछे से जर्मन टैंक हमारी ओर बढ़ा आ रहा है... मैं ज़ोर से चीख़ा – 'कॉमरेड लेफ़्टिनेंट! 'टीगर'!' (ख़ास नमूने का जर्मन टैंक।) वह चिल्लाया – 'बढ़े चलो, पूरी रफ़्तार से!' – बस फिर क्या था मैं चीड़ के पेड़ों के बीच से अपने टैंक को ले चला दायें-बायें करता हुआ... 'टीगर' अपनी लम्बी नाल उठाकर अंधे की तरह निशाना साधने लगा और फिर उसने धांय से आग उगल दी। निशाना ख़ाली गया... ठीक इसी वक़्त कॉमरेड लेफ़्टिनेंट ने उसकी बग़ल पर टैंक की तोप दाग़ दी... धड़ाका हुआ... दूसरा गोला बुर्जी पर झोंका... 'टीगर' के परख़चे उड़ गये... तीसरी बार तोप दाग़ी... फिर धड़ाका हुआ... 'टीगर' हर सेंध से धुआं उगलने लगा, और लपटें सौ मीटर तक आसमान चूमने लगीं... टैंक के लोग संकट-काल के लिये बने ख़ास रास्ते से कूद-कूद कर बाहर आने लगे। वान्का लपशिन उनपर मशीनगन से आग बरसाने लगा। वे सब लेट गये और एड़ियां रगड़ने लगे... हमारे लिये रास्ता साफ़ हो गया। पांच मिनट बाद हम गांव में जा पहुंचे। जोश था कि फूटा पड़ रहा था। फ़ासिस्ट कुछ इधर तो कुछ उधर भाग चले... जानते

हैं आप, वहां था कीचड़... तो कुछ लोग, बिना जूतों के, केवल मोज़े पहने ही जैसे-तैसे झपट चले। कुल के कुल भागे एक कोठरी की तरफ़। कॉमरेड लेफ़्टिनेंट ने हुक्म दिया – "चढ़ चल कोठरी पर।" हमने तोप का मुंह फेरा और मैंने पूरी रफ़्तार से टैंक को कोठरी की ओर बढ़ा दिया... हे भगवान! शहतीर चरमराकर रह गये, तख़्ते और ईंटें, सब ढेर हो गये, कोठरी में छिपे बैठे फ़ासिस्ट... मैंने फिर से उन्हें प्रेस कर दिया... बचे-खुचे जर्मनों ने हाथ उठा दिये... और लगे चिल्लाने – "हिटलर मुर्दाबाद, हिटलर मुर्दाबाद..."

येगोर द्रियोमोव ने इस तरह लोहा लिया लड़ाई के मैदान में। पर, इसके बाद वे संकट में पड़ गये। कुर्स्क की लड़ाई में जर्मनों का दम गले तक आ गया और उनकी ताक़त जवाब देने लगी। इसी समय ज़रा ऊंचाई पर स्थित गेहूं के एक खेत में येगोर द्रियोमोव के टैंक पर एक गोला गिरा। टैंक के दो लोग तुरन्त ही खेत रहे, और जो दूसरा गोला गिरा तो टैंक में आग लग गई। ड्राइवर चुविलेव आगे के रास्ते से बाहर कूद आया। फिर टैंक के कवच के ऊपर फिर से चढ़कर गया और लेफ़्टिनेंट को जैसे-तैसे बाहर घसीट लाया। वह बेहोश था, और उसकी वर्दी जल रही थी। ड्राइवर लेफ़्टिनेंट को बाहर लाया ही था कि टैंक की धज्जियां उड़ गईं, और धड़ाका इतने ज़ोर का हुआ कि टैंक की बुर्जी कोई पचास

मीटर दूर जा गिरी। चुविलेव आग बुझाने के लिये लेफ़्टिनेंट के चेहरे, खोपड़ी और कपड़ों पर मुट्ठी भर-भरकर मिट्टी झोंकने लगा। इसके बाद उसने लेफ़्टिनेंट को कमर पर लादा और एक के बाद एक गढ़े को लांघता हुआ किसी तरह मरहम-पट्टी के पड़ाव तक पहुंचा... "क्यों मैं लाया लेफ़्टिनेंट को लादकर? इसलिए कि मैंने सुनी थी उसके धड़कते दिल की धड़कन!"

येगोर द्रियोमोव की जान बच गई। इतना ही नहीं, आंखों की रोशनी भी बनी रह गई। पर चेहरा इस बुरी तरह झुलस गया था कि कहीं कहीं से हड्डियां तक नज़र आने लगी थीं। उसे आठ महीने तक अस्पताल में रहना पड़ा। वहां एक के बाद एक प्लास्टिक के अनेक ऑपरेशन किये गये। नतीजा यह हुआ कि नाक, होंठ, पलकें और कान फिर से ठीक हो गये। पर, आठ महीने बाद जब पट्टियां खोली गईं और उसने आईना देखा तो ख़ुद ही अपना चेहरा पहचान न पाया। चेहरा अपना होकर भी जैसे किसी और का हो उठा था। जिस नर्स ने उसे शीशा दिया, उसने मुंह फेरा और रो पड़ी। लेफ़्टिनेंट ने आईना तुरन्त ही वापस कर दिया। बोले—

"लोगों का तो इससे बुरा हाल होता है, यही ग़नीमत समझो कि ज़िन्दगी बच गई..."

लेकिन, इसके बाद उसने नर्स से आईना फिर कभी नहीं मांगा। हां, जब-तब हाथ चेहरे पर ज़रूर फेर लेता जैसे कि

उसका आदी हो जाना चाहता हो। मेडिकल कमीशन ने जांचा तो साधारण सैनिक नौकरी के लिये तो फ़िट ठहराया, पर मोर्चे के लिये नाफ़िट। तब वह जनरल के पास गया और बोला – "मैं दुबारा अपनी रेजीमेन्ट में जाना चाहता हूं, कृपया अनुमति दीजिये।" जनरल ने कहा – "परन्तु, आप तो पंगु हैं।" लेफ़्टिनेंट ने जवाब दिया – "नहीं, ऐसा कुछ नहीं! मेरी सूरत बिगड़ गई है, परन्तु इससे मेरे कर्त्तव्यपालन में कोई बाधा न पड़ेगी।" (येगोर द्रियोमोव ने लक्ष्य किया कि उससे बातें करते समय जनरल उसके चेहरे पर निगाह डालने से बचता रहा। पर वह सीधी फांक जैसे कृत्रिम होठों से केवल मुस्करा दिया।)

येगोर द्रियोमोव को पूरी तरह स्वस्थ हो जाने के लिये बीस दिनों की छुट्टी दी गई। वह अपने माता-पिता से मिलने घर के लिये रवाना हो गया। यह बात इसी साल के मार्च महीने की थी।

सोचा तो उसने यह कि स्टेशन से घर जाने के लिये कोई घोड़ा-गाड़ी किराये पर ले ले, पर हुआ कुछ ऐसा कि पूरे बारह मील का रास्ता पैदल ही तय करना पड़ा।

बर्फ़ अब तक खेतों में जमी हुई थी। नमी थी और था सुनसान। बर्फ़ानी हवा सर्राटे भरती तो येगोर द्रियोमोव के फ़ौजी कोट के सिरे फड़फड़ाने लगते, कानों में सीटी-सी

कूकती, और सीटी की कूक में जाने कैसी उदासी-सी घुली लगती। दिन डूबते डूबते वह गांव में पहुंच गया। वहां उसे कुआं नज़र आया, कुयें का डंडा हवा में लहराता और आवाज़ करता था। यहां से छठा घर उसका है। वह सहसा रुका और उसने अपनी जेबों में हाथ डाले। फिर सिर हिलाया और अपने घर की ओर मुड़ गया। घुटने घुटने तक बर्फ़ में जाकर छोटी-सी खिड़की के अन्दर झांकने लगा। मां दिखाई दी। मेज़ के ऊपर एक लैम्प लगा था जिसकी लौ बहुत धीमी थी। लैम्प की मद्धिम मद्धिम-सी रोशनी में वह शाम का खाना मेज़ पर लगा रही थी। वह हमेशा की भांति अपना गहरे रंग का पुराना शॉल ओढ़े थी, सदा की भांति शान्त थी, इत्मीनान से हिल-डुल रही थी और चेहरे पर उदारता की झलक थी। वह पहले से ज़्यादा बूढ़ी लगती थी, और उसके कंधों की हड्डियां उभरी हुई नज़र आ रही थीं...

येगोर द्रियोमोव ने मन ही मन कहा – "काश कि मैं ऐसा जानता... मुझे हर दिन अपनी ख़ैर-ख़बर देनी चाहिये थी... दो शब्द ही लिख दिया करता..."

मां ने जो खाना मेज़ पर लगाया वह मामूली-सा था – कटोरा-भर दूध, रोटी का टुकड़ा, दो चम्मच और नमकदानी। यह सब कुछ मेज़ पर रखने के बाद वह ज़रा ठिठकी, अपने दुबले-पतले हाथ सीने पर बांधकर खड़ी हो गई, और जाने क्या सोचने लगी... येगोर द्रियोमोव को खिड़की के बाहर

खड़े खड़े सहसा यह ख़्याल आया कि इन्हें परेशान नहीं करना चाहिये, यह उचित नहीं होगा कि इनका बूढ़ा चेहरा दुख और भय से कांप उठे।

बस, तो यही तय रहा! फाटक खोला, छोटा-सा अहाता पार किया और बरसाती की सीढ़ियों पर चढ़कर दरवाज़ा खटखटाया। मां ने अन्दर से आवाज़ लगाई – "कौन है?" उसने उत्तर दिया – "मैं हूं लेफ़्टिनेंट ग्रोमोव, सोवियत संघ का वीर।"

इस बीच दिल इतने ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा कि सीधे खड़ा रहना असम्भव हो गया, और उसे क्षण-भर को दरवाज़े का सहारा लेना पड़ा। लेकिन नहीं, मां ने उसकी आवाज़ नहीं पहचानी। यही नहीं, उसे ख़ुद भी ऐसा लगा जैसे कि वह आवाज़ उसने पहली बार सुनी हो... बहुत-से ऑपरेशनों की वजह से वह बहुत बदल गई थी – आवाज़ फटी फटी, भर्राई भर्राई और बेसुरी-सी हो गई थी।

"बेटे, क्या चाहते हो तुम?" – मां ने पूछा।

"सीनियर लेफ़्टिनेंट द्रियोमोव ने मुझे अपनी माता मरीया पोलिकारपोव्ना तक नमस्कार पहुंचाने को कहा है।"

इसपर मां ने दरवाज़ा खोला और लपककर आगन्तुक के हाथ अपने हाथों में ले लिये – "तो, मेरा बेटा येगोर जीवित है? सही-सलामत तो है? अरे, अन्दर आओ, बेटा, अन्दर आ जाओ!"

येगोर द्रियोमोव मेज़ के सामने की बेंच पर आ बैठा। यही तो वह जगह थी जहां वह अपने बचपन में भी बैठता था, और तब उसके छोटे छोटे पैर ज़मीन तक नहीं पहुंचते थे। मां उसके घुंघराले बाल सहलाती हुई कहा करती थी– "खा ले, बड़ा राजा है बेटा मेरा!"

सो, येगोर द्रियोमोव ने मां से बातें शुरू कीं उसके बेटे के यानी अपने बारे में उसने बतलाया कि बेटा कैसे रहता-सहता है, और क्या खाता-पीता है। बोला–"किसी चीज़ की कमी नहीं है उसे। हमेशा स्वस्थ और प्रसन्न रहता है।" इसने संक्षिप्त रूप से लड़ाई में बेटे के शौर्य और पराक्रम की भी चर्चा की।

"बताओ बेटा कि लड़ाई में डर तो लगता ही होगा?" मां ने बीच में बात काटी। अपनी न देख पानेवाली और न पहचान सकनेवाली धुंधलाई हुई आंखें उसने आगन्तुक के चेहरे पर गड़ा दीं।

"ज़रूर लगता है–पर, आदमी उसका आदी हो जाता है, मां!"

इसी समय पिता येगोर येगोरोविच ने घर में प्रवेश किया। पिछले कुछ वर्षों में वे भी काफ़ी ढल गये थे। उनकी दाढ़ी आटे से नहाई-सी लगी। उन्होंने आगन्तुक को देखा तो ड्योढ़ी में फटे-पुराने नमदे के जूते उतारे, इत्मीनान से मफ़लर खोला, भेड़ की खाल का कोट उतारा और मेज़ की

ग्रोर बढ़ते हुए ग्रागन्तुक की ग्रोर हाथ बढ़ाया। येगोर ग्रपने पिता के इस चौड़े ग्रौर सच्चे हाथ से ग्रच्छी तरह परिचित था!

पदकों वाले इस फ़ौजी के ग्राने का कारण बिना पूछे ही स्पष्ट था। इसलिये पिता ने किसी तरह के कोई सवाल-जवाब नहीं किये। वे पास ही बैठ गये, ग्रौर ग्रधमुंदी ग्रांखों से उनकी ग्रोर देखते हुए ख़ुद भी ध्यान से बातें सुनने लगे।

लेफ़्टिनेंट द्रियोमोव सारी बातें ग्रपनी ही करता रहा, पर इस तरह जैसे कि किसी ग्रौर की बातें कर रहा हो। ज्यों ज्यों इन बातों का सिलसिला बढ़ता गया, त्यों त्यों उसका ग्रसली रूप में सामने ग्राना दुश्वार होता गया। उसका हिग्राव न रह गया कि वह खड़ा हो जाये ग्रौर कह दे – "यह भद्दी सूरतवाला मैं ग्रापका ही बेटा हूं – ग्राप मुझे नहीं पहचानते... मेरे माता-पिता!" इस समय खाने की मेज़ पर मां-बाप के पास बैठना उसे बहुत ग्रच्छा भी लग रहा था ग्रौर दुख भी हो रहा था।

"ग्रच्छा, तो खाना खा लिया जाये ग्रब... घर में जो कुछ है मेहमान के लिये ले ग्राग्रो," – येगोर येगोरोविच ने कहा, ग्रौर सामानवाली पुरानी ग्रालमारी खोली। इसी ग्रालमारी में बाईं ग्रोर दियासलाई की डिबिया में मछली फंसाने की बंसियां रखी रहती थीं, वे वहीं रखी थीं। पास ही टूटी टोंटवाली एक चायदानी भी होती थी, वह भी ग्रपनी जगह पर क़ायम थी। ग्रौर रोटी ग्रौर प्याज़ की महक भी उसमें

ज्यों की त्यों बसी हुई थी। येगोर येगोरोविच ने आलमारी से शराब की एक बोतल निकाली। शराब बहुत थोड़ी थी... बस, दो जाम। उन्होंने आह भरी कि और शराब नहीं मिल सकती। इसके बाद सब लोग खाना खाने बैठ गये... बिल्कुल वैसे ही जैसे वे सदा बैठा करते थे।

खाना खाते समय सीनियर लेफ़्टिनेंट द्रियोमोव का ध्यान इस तरफ़ गया कि मां उसके हाथ में चमच लेने के ढंग को बहुत ध्यान से देख रही है। द्रियोमोव ने यह बात लक्ष्य की और छिपे छिपे मुस्करा दिया। मां ने आंखें उठाईं, उसका चेहरा संताप की अनुभूति से कांप रहा था।

फिर तमाम इधर-उधर की बातें होती रहीं। मिसाल के तौर पर यह कि इस बार वसन्त कैसा होगा, लोग बोआई कर सकेंगे या नहीं? फिर, लड़ाई की चर्चा छिड़ी। कहा गया – आशा है, लड़ाई गरमी तक ख़त्म हो जायेगी।

"पर येगोर येगोरोविच, आप क्यों ऐसा मानते हैं कि लड़ाई गरमी तक ख़त्म हो जायेगी?"

येगोर येगोरोविच ने जवाब दिया – "लोग तंग आ चुके हैं। सिर पर कफ़न बांध कर निकले हैं। अब वे ठहर नहीं सकते। उन जर्मनों की चटनी बनाकर रख देंगे।"

मरीया पोलिकारपोव्ना बोलीं –

"आप ने यह नहीं बताया कि मेरे बेटे को छुट्टी कब मिलेगी? घर आये, थोड़ा-बहुत हम लोगों के साथ भी रहे...

तीन साल हो गये सूरत देखे... अब तो ख़ूब बड़ा हो गया होगा... मूंछें आ गई होंगी... दिन-रात मौत का सामना करता है। मेरे ख़्याल में अब तो उसकी आवाज़ भी भारी-भरकम हो गई होगी..."

"जी हां, वह आये तो शायद आप उसे पहचान भी न पायें"—लेफ़्टिनेंट बोला।

येगोर द्रियोमोव का बिस्तार तन्दूर पर लगाया गया। यहां की हर ईंट उसकी जानी-पहचानी थी। लकड़ी की दीवार का हर छेद उसका देखा-समझा था, और छत के तख़्तों की हर गांठ उसकी समझी-बूझी। भेड़ की खाल और तन्दूर की रोटी की महक नाक में भरने लगी... यानी, अपने घर का वह सुख जिसकी याद आदमी की आख़िरी सांस तक चेतना के आंचल में बंधी रहती है।

मार्च की हवा छत पर सीटियां बजाती रही। पिता बाड़ के दूसरी ओर हल्के हल्के खर्राटे भरते रहे। मां की आंखों में नींद न थी। वह आहें भरती और करवटें बदलती रही। लेफ़्टिनेंट हथेली पर मुंह रखे, औंधा पड़ा रहा। सोचता रहा— "क्या ऐसा भी हो सकता है कि मेरी मां ने मुझे न पहचाना हो? सचमुच क्या ऐसा हो सकता है? मां... मां..."

दूसरे दिन सुबह हुई और तन्दूर में लकड़ियां चिटचिटाने लगीं तो लेफ़्टिनेंट की आंख खुली। मां बहुत सावधानी से तन्दूर पर काम में जुटी हुई थी। उसकी धुली हुई पट्टियां रस्सी

पर सूख रही थीं और साफ़ किये हुए बूट दरवाज़े के क़रीब रखे हुए थे।

"तुम्हें गेहूं के मीठे पराठे पसंद हैं?"—मां ने पूछा।

लेफ़्टिनेंट ने इस बात का तत्क्षण कोई उत्तर न दिया। वह कूदकर तन्दूर से नीचे आया। उसने अपनी फ़ौजी क़मीज़ पहनी, पेटी कसी और नंगे पैरों बेंच पर आ बैठा। बोला—

"सुनिये, मुझे यह बतलाइये कि अन्द्रेई स्तेपानोविच मालिशेव की बेटी कात्या मालिशेवा यहीं, आप ही के गांव में रहती है?"

"हां, उसने अभी पिछले साल ही अपनी पढ़ाई ख़त्म की है। आजकल स्कूल में पढ़ा रही है। क्यों, तुम उससे मिलना चाहते हो क्या?"

"आपके बेटे ने कहा था कि ज़रूर उसे उसकी याद दिला दूं।"

मां ने पड़ोस की एक लड़की को कात्या को बुलाने भेजा। लेफ़्टिनेंट अपने बूट भी न चढ़ा पाया कि वह दौड़ती हुई आ पहुंची। उसकी बड़ी बड़ी, भूरी आंखें ख़ुशी से लौ-सी दे रही थीं, भौंहें विस्मय से चढ़ी हुई सी थीं और उसके गालों पर प्रसन्नता के गुलाब-से खिले हुए थे। और, जब कात्या ने रूमाल सिर से कंधों पर खींच लिया तो लेफ़्टिनेंट का मन एकदम कचोट-सा उठा। हाय! इन प्यारे प्यारे बालों को चूम लेता! अपनी प्रेयसी का ऐसा चित्र ही तो सदा उसके

अन्तरतम में रहा था – ताज़गी लिये हुए, कोमल, हंसमुख, उदार और सुन्दर इतनी कि जिस क्षण कमरे में क़दम रखे, उसी क्षण सारा घर सुनहरे उजाले से नहा उठे...

लड़की बोली –

"आप आये हैं येगोर के पास से मेरे लिये उनका स्मरण लेकर?"

लेफ़्टिनेंट रोशनी की ओर पीठ कर खड़ा था। वह मुंह से कुछ न कह पाया उसने सिर्फ़ गर्दन हिला दी।

लड़की कहती हुई – "कृपया उनसे कह दीजियेगा कि मैं उनकी राह देखती रहती हूं... और, दिन रात उनकी राह में पलकें बिछाये रहती हूं..."

वह लेफ़्टिनेंट के पास आई, पर चेहरे पर निगाह पड़ते ही इस तरह डरकर पीछे हट गई, जैसे कि किसी ने उसके सीने पर घूंसा जमा दिया हो।

और, इस घटना के बाद ही लेफ़्टिनेंट ने वहां से चले आने का पक्का इरादा कर लिया, और, सो भी उसी दिन।

मां ने मीठे पराठे और गरम दूध उसके सामने रखा। लेफ़्टिनेंट ने एक बार फिर लेफ़्टिनेंट द्रियोमोव की चर्चा छेड़ी, इस बार उसने लड़ाई के कारनामों का वर्णन किया। उसने भयानक घटनाओं का बयान किया, मगर सिर झुकाये ही झुकाये। कात्या के प्यारे प्यारे-से चेहरे पर छननेवाली, अपनी कुरूपता की परछाईं से आंखें मिलाने का साहस उसे न

हुआ। येगोर येगोरोविच ने उन्हें पहुंचाने के लिये सामूहिक फ़ार्म की घोड़ा-गाड़ी प्राप्त करने की बात कही, पर लेफ़्टिनेंट जिस राह आया था उसी राह पैदल ही लौट चला। घर में जो कुछ बीती थी, उसने उसे जैसे बुरी तरह कुचल दिया था। वह रास्ते में बार बार ठिठका, उसने अपना मुंह पीटा और रुआंसी आवाज़ में ख़ुद से पूछा – "अब भला क्या करूंगा मैं?"

अंत में वह अपनी रेजीमेन्ट में लौटा। यह मोर्चे से बहुत पीछे ठहरी हुई थी। हताहत सैनिकों की पूर्त्ति के लिए उसके सहयोगियों ने उसका ऐसा खुले दिल से स्वागत किया कि लेफ़्टिनेंट के मन का बोझ जो उसे आराम से सोने, खाने-पीने और सांस तक नहीं लेने देता था, जैसे उतर गया, मन हलका हो गया। उसने मन ही मन निश्चय किया – "यथासम्भव पूरी चेष्टा करूंगा कि मेरे दुर्भाग्य की कथा मां को न मालूम हो। जहां तक कात्या का सवाल है, इस फांस को तो अब दिल से निकाल ही फेंकूंगा।"

कोई दो सप्ताह बाद मां का पत्र मिला –

"मेरे दुलारे बेटे। तुम्हें एक बात और लिखती हुई डर रही हूं। तुम्हारा सन्देश लेकर एक सज्जन मिलने आये थे। आदमी बड़े अच्छे थे। केवल चेहरा भद्दा था। पहले तो लगा कि वे कुछ समय तक ठहरेंगे, पर फिर पता नहीं क्या हुआ कि वे एकदम तैयार हुए और चल दिये। तब से

अब तक एक भी रात ऐसी नहीं गुज़री जब मेरी पलक झपकी हो। मुझे ऐसा लगता है जैसे कि और कोई नहीं, स्वयं तुम ही आये थे। येगोर येगोरोविच तो उस बात पर बिगड़ते भी रहते हैं। कहते हैं – 'तुम्हारा दिमाग़ बिल्कुल ख़राब हो गया है। सठिया गई हो। अरे, हमारा बेटा आता तो हमसे बतलाता नहीं, यह कैसे हो सकता है? फिर, अगर वह होता तो इस तरह अपने को छिपाता क्यों? उस आदमी का जैसा चेहरा था, उसपर तो किसी को भी अभिमान होना चाहिये...' मैं येगोर येगोरोविच की बात की सच्चाई तो समझती हूं, पर मेरा दिल नहीं मानता – बराबर कहता है 'नहीं, वह तो वही था! कोई और नहीं!' यह आदमी रात को तन्दूर पर सोया और जब वह सो गया तो मैं उसका फ़ौजी कोट साफ़ करने के लिये बाहर ले गई। सच मानो, मुंह कोट में छिपाकर जो रोने लगी तो आंसू थमने को ही न आये – 'यह तो वही है... यह कोट तो उसी का है!' येगोर, मेरे बेटे, भगवान के लिये लिखो, लिखो कि हक़ीक़त क्या है? कहीं सचमुच तो मेरा दिमाग़ ख़राब नहीं हो गया..."

येगोर द्रियोमोव ने यह पत्र मुझे दिखलाया और कहानी बताते समय उसने आस्तीन से आंसू पोंछे। मैंने कहा – "देखो तो कैसी ग़ज़ब की बात हुई है! तुम बेवक़ूफ़ हो... बेवक़ूफ़... मूर्खराज, मां को पत्र तुरन्त ही लिखो और उनसे क्षमा मांगो। बेचारी चिन्ता में घुलते घुलते पागल हो जायेगी।

क्या महत्त्व है उसके लिए तुम्हारी शक्ल-सूरत का! देखना वह तुम्हें और भी ज़्यादा प्यार करेगी।"

और येगोर ने उसी दिन पत्र लिखा – "प्यारी मां, मरीया पोलिकारपोव्ना और प्यारे पिता, येगोर येगोरोविच, मेरी बेवक़ूफी के लिये मुझे क्षमा कीजिये। वह सचमुच मैं ही था, आपका बेटा..." आदि आदि। बारीक लिखाई से चार पन्ने भर दिये उसने। यदि सम्भव होता तो वह तो बीस पन्ने भर देता।

इस घटना के थोड़े समय बाद हम लोग एक दिन चांदमारी के मैदान में थे कि एक फ़ौजी भागा भागा येगोर द्रियोमोव के पास आया और बोला – "कॉमरेड कप्तान, कोई आपसे मिलना चाहता है..." – वैसे तो फ़ौजी ने क़ायदे से सलूट मारी, पर उसके चेहरे से ऐसा लगा जैसे कि पीने की बिल्कुल तैयारी में हो।

हम गांव के लिये रवाना हुए और जब अपने घर के पास पहुंचे तो मैंने येगोर द्रियोमोव की ओर देखा। वह मुझे बहुत ही घबड़ाया हुआ लगा, रह रहकर अपना गला साफ़ करता जा रहा था। मैंने सोचा – "है तो बड़ा टैंकबाज़, पर फिर भी भावुक हो उठा है।"

मैं उसके पीछे पीछे कमरे में गया तो स्वर मेरे कानों में पड़े – "मां, यह मैं हूं... मैं!" – और, छोटे क़द की एक बुढ़िया को मैंने उसे हृदय से लगा हुआ देखा। मुड़ा तो एक

दूसरी औरत भी वहीं खड़ी नज़र आई। वैसे तो स्त्रियां दुनिया में एक से एक सुन्दर हो सकती हैं, पर, विश्वास कीजिये कि मैंने ऐसा रूप अपने जीवन में आज तक कभी नहीं देखा।

मां की बांहों से अलग होकर वह उस लड़की की ओर बढ़ा। यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं कि अपने डील-डौल के कारण येगोर रुद्र-देवता जैसा लगता था। सो, बोला—"कात्या, तुम क्यों आईं, कात्या? तुमने तो किसी दूसरे येगोर की राह देखने का वायदा किया था, इस येगोर का नहीं..."

मैं ओसारे में आ गया था। पर उस सुन्दर लड़की की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी—"येगोर, मैं केवल तुम्हारे साथ जीवन बिताना चाहती हूं। मैं तुम्हें ईमानदारी से प्यार करूंगी... मैं तुम्हें बहुत प्यार करूंगी... मुझे अब अपने से दूर नहीं करना..."

हां, ऐसे होते हैं रूसी लोग! देखने-सुनने में आदमी बहुत सीधा-सादा और साधारण लगता है, परन्तु किसी भयानक संकट के सामने आते ही उसमें जाने कहां की शक्ति और जाने कितनी शक्ति लहरें लेने लगती है। यही है मानवीय सौन्दर्य।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।